मूक तपस्वी

भेंट

जिसे पत्नीत्व का गहन गम्भीर और जीवन पर्यन्त बना रहने वाला अधिकार ले कर गिरीश के जीवन में एक दिन आ ही जाना था वही उन दिनों उसकी कल्पना की एक मात्र केन्द्र बनी हुई थी। किसी भी कुमारी को देखते ही उसे जान पड़ता था कि उसकी कल्पना में भी एक चित्र अंकित है और फिर वह तुरन्त ही उस लड़की के साथ अपने कल्पित चित्र का मिलान करने लगता। कभी कल्पना-स्थित सुन्दरी अधिक आकर्षक जान पड़ती और कभी वह जीती-जागती चलती-फिरती प्रतिमा। किन्तु इस बार तो मानो कुछ बात ही और थी। गिरीश के मित्र ने कुछ चुटकी-सी लेते हुए कहा—"यार, काश कि यही तुम्हारी प्रेयसी होती।" गिरीश चुप ही रहा किन्तु मन ही मन एक बार कह उठा "काश कि ऐसा होता।"

उस दिन नगर में अत्यन्त समारोह के साथ "स्वतन्त्रता-दिवस" मनाया जा रहा था। पार्क में विद्यार्थियों की ओर से एक सभा का आयोजन किया गया था। उसी सभा में वह कविता पाठ कर रही थी। जान पड़ता था कि रूप और गुण की साक्षात् प्रतिमा स्वर्गलोक से इस धरती पर उतर आई है। परीक्षा के झंझट में लगे रहने के कारण इधर कितने ही दिनों

से गिरीश ने घर से बाहर पग नहीं धरा था। परीक्षा समाप्त हो गई। यहाँ तक कि स्वतन्त्र रूप से काम चलाने से पूर्व के कुछेक निश्चित मास किसी अनुभवी डाक्टर के साथ काम करके अभ्यास करते हुए भी बीत गये। अब तो केवल अपनी स्वतन्त्र रूप से प्रेक्टिस ही आरम्भ करनी थी। फिर भला गिरीश इस उत्सव मे आज क्यों न आता! यों तो चाहे न भी आता पर जब हरीश उसके कमरे में सीधा जा धमका और ले चलने की प्रतिज्ञा सी ही कर बैठा तो गिरीश को हरीश का साथ देना ही पड़ा। उन दिनों "स्वतन्त्रता-दिवस" पर भीड़ नहीं होती थी। वक्ता भी गिने-चुने ही होते थे। गिरीश को तनिक भी आनन्द नहीं आ रहा था। महिलाओं की संख्या तो अँगुलियों पर गिनी जा सकती थी। जितनी लड़कियाँ वहाँ उपस्थित थीं उन सब ही पर दृष्टिपात कर चुकने के पश्चात् गिरीश ने ज्यों ही हरीश को हलका-सा धक्का दे कर कहना चाहा—"अरे यार, चलो, यहाँ क्या रक्खा है?" कि मंच पर संयोजक ने आ कर कहा—"अब आपको कुमारी नन्दिनी एक कविता सुनायेंगी।" लगभग शब्दों के साथ ही साथ एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की बालिका खादी की स्वच्छ श्वेत साड़ी, जिस पर गहरे लाल रंग की किनारी थी, पहने हुए मंच पर आ कर खड़ी हो गई। बालिका ने बिना ही किसी भूमिका के दृष्टि को तनिक ऊँचा उठा कर आरम्भ कर दिया स्वर गुंजार···शब्द थे :—

"देश के प्रहरी अनोखे·····"

गिरीश ने पहली पंक्ति भली प्रकार सुनी। एक-एक शब्द धीमी-सी स्वर-लहरी मे गुँथे हुए उन पतले गुलाबी होठो से

निकल रहा था। गिरीश मानो दसों इन्द्रियों से वातावरण को पी जाना चाहता था। तनिक सी देर में गिरीश कविता की पंक्तियों में खो गया। इस बार उसने भावी पत्नी की काल्पनिक प्रतिमा के साथ इस जीवित मूर्ति की तुलना नहीं की ''आगे के शब्द भी नहीं सुन सका। जो कुछ सुना उसी में मानो मन प्राण से खो गया। शब्द और शब्दों में लिपटी-लिपटाई ध्वनि कई मिनट तक बहती रही और गिरीश उसे चुपचाप उस प्रतिमा के मुख पर दोनो आकुल नयन जमाये हुए पीता रहा। कविता पाठ समाप्त हो गया। बालिका मंच से उतर गई। दूसरे वक्ता महोदय ने मंच पर आ कर अपना भाषण भी आरम्भ कर दिया, फिर भी गिरीश उसी प्रकार स्वप्नाविष्ट-सा बैठा रहा। यहाँ तक कि सभा समाप्त हो जाने पर जब हरीश ने उसे घर लौट चलने की याद दिलाई तो वह चौंक पड़ा।

"भाई साहब, यह दिवास्वप्न देखने कब से आरंभ कर दिये ?"

"जब से तेरा साथ हुआ हरीश।"

"मेरा या किसी और का ?"

"और किसे लाऊँगा भाई ?"

"क्यों ? रायबहादुर साहब की पुत्री तो सुना जाता है बहुत ही अच्छी मित्र और समाज-प्रिय जीव हैं। उन जैसा साथी और कहाँ मिलेगा ?"

"यह बात आज रहने दे। अब चलें, देर भी हो रही है। माँ घबरा रही होंगी।"

अन्यमनस्क-सा गिरीश हरीश के साथ बाहर आ गया। कार चलाई गई और दोनो उसके भीतर बैठे ही बैठे विचारमग्न हो

गये। घर लगभग सात मील दूर था। मार्ग भी कुछ बहुत प्रशस्त न था। भीड़ की भी कमी न थी अतः गिरीश बड़ी सावधानी से गाड़ी चलाने लगा। चार मील चल चुकने पर हरीश चिल्ला उठा—"देखो गिरीश, आज की कवयित्री तो वह खड़ी है।"

"कहाँ ?"

"वह सामने।"

अब ये लोग शहर से कुछ दूर आ गये थे। भीड़ भी इतनी अधिक न थी। सामने कुछ ही दूर पर एक घोड़ा पृथ्वी पर पड़ा था। सम्भवतः कवयित्री अपनी माता आदि के साथ सभा समाप्त होने से कुछ पूर्व ही ताँगे पर बैठ कर घर की ओर चल दी थीं। कोचवान घोड़े को सँभालने का प्रयत्न कर रहा था। कुछ ही दूर पर दो महिलाओं के साथ, जिनमें से एक सम्भवतः उसकी माँ रही होगी, वही कवयित्री खड़ी थी। वही शान्त मुखमुद्रा, वही सलोना सुन्दर चेहरा, वही खादी की श्वेत साड़ी ··।

"ठहरो, ज़रा पूछूँ तो कि क्या हुआ है ?" हरीश कहता ही गया। गिरीश ने महिलाओं के पास पहुँच कर कार रोक दी। अत्यन्त शिष्टता से नीचे उतर कर वयस्का महिला से पूछा— "आप क्या इसी ताँगे पर जा रही थीं ?"

"जी हाँ।"

महिला अत्यन्त सभ्य जान पड़ी। इसी समय बालिका ने मुख उठा कर प्रश्नकर्ता की ओर देखा। उस दृष्टि-विनिमय से गिरीश का अन्तर तक झनझना उठा, फिर भी उसने सँभल कर

कहा—"आप लोग कहाँ जायेंगी ?"

"मौडल टाउन।"

"मैं भी वहीं जा रहा हूँ। चलिये आपको पहुँचा दूँ," गिरीश ने सभ्यतापूर्वक कहा—"इस ताँगे की आशा छोड़िये।"

"माँ, इन्हे कष्ट न दो, अभी घोड़ा खड़ा हुआ जाता है, नहीं तो कोई न कोई और ताँगा इधर से आता ही होगा।" बालिका ने कहा।

गिरीश ने बेबसी से बालिका की ओर देखा किन्तु उत्तर दिया हरीश ने—"आप चिन्ता न करें, आप के कार में बैठते ही पैट्रोल की टंकी का मुख कुछ विशेष चौड़ा नहीं हो जायेगा और न कार ही अधिक तेल पीने लगेगी।"

सब हलकी-सी हँसी से भर उठे। गिरीश ने कहा—"मुझे तनिक भी कष्ट न होगा। मुझे भी तो उधर ही जाना है।"

"तुम भी मौडल टाउन में ही रहते हो भाई ?" माता ने पूछा।

"जी हाँ, मैं 'ई' ब्लाक मे रहता हूँ। आप चलिये न।"

"हम तो 'सी' ब्लाक मे १७ नंबर कोठी मे सेठ ईश्वर दास के घर जावेंगे। आपको व्यर्थ में ही कष्ट होगा।"

"कष्ट की बात आपने खूब कही। 'सी' ब्लाक तो हमारे मार्ग में ही पड़ता है। भला वहाँ तक जाते मुझे कौन-सा कष्ट हो जायेगा। संकोच छोड़िये, यहाँ तो रात तक कोई ताँगा दीख पड़ेगा नहीं।"

माँ ने बेटी की ओर देखा। कुछ विशेष संकेत न पा कर भी माँ ने बेटी से कहा—"चलो, आज इन्हे ही कष्ट दे।" तीनों

महिलायें मोटर के पिछले भाग में बैठ गई। गिरीश ने ड्राइवर का स्थान यथापूर्व लिया और हरीश उसके पास आ बैठा। शब्दहीन व्यक्तियों को हृदय में समेटे शब्द करती हुई कार चल दी। गिरीश ने इसी बीच कई बार ड्राइवर के सम्मुख लगे हुए दर्पण में पीछे बैठे हुए व्यक्तियों के दर्शन किये। गिरीश भाग्य-वादी था। जीवन के पिछले आठ वर्ष तो उसने केवल मात्र भाग्य पर ही विश्वास करके व्यतीत किये थे। उस दिन भी उसे जान पड़ा मानो वह सन्ध्या भी उसके लिये कुछ भाग्य का ही खेल ले कर आई थी। वह खेल क्या था? कैसा था? और कितना था? यह गिरीश उस दिन समझ नहीं पाया। अपनी कोठी के द्वार पर उतर कर उस महिला ने, जो कि सम्भवतः कवयित्री की माता थी, शिष्टाचार के नाते फिर भी दर्शन देने का अनुरोध किया। "मुझे आज्ञा नहीं दी गई माता जी!" हरीश ने कुछ ऐसे ढँग से कहा कि सब हँस दिये। उस महिला ने हँसते-हँसते कहा—"जो सहज ही हृदय की आनन्दमयी आत्मीयता का सुख सब को दे पाते हैं उन्हे भी निमन्त्रण की बाट देखनी पड़ेगी क्या?"

हरीश ने फिर भी हँस कर कहा—"सो तो आज ही समझ पाया माता जी!" दूसरी महिला और बालिका ने भी इन लोगों को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। बालिका की दृष्टि में भले ही कुछ न रहा हो पर गिरीश और हरीश दोनों को ही जान पड़ा मानो वह स्वच्छ नेत्र कह रहे हों "हम सरल हैं, स्वच्छ हैं, हमें किसी की भी न तो प्रतीक्षा ही रहती है और न चिन्ता ही।"

लौटते समय मार्ग में हरीश ने गिरीश से बहुत कुछ कहना-सुनना चाहा। वक्ता के लिए निःशब्द गिरीश भले ही लोभ की वस्तु हो पर श्रोता के लिए तो वह नितान्त शून्य ही था। यहाँ तक कि घर आ जाने पर भी उसने हरीश से केवल मात्र यही कहा—"खाना खा कर जाना हरीश।"

"इतनी सुविधा कहाँ है गिरीश। यहाँ से खाना खा जाने पर भाभी न जाने कितना बिगड़ेंगी। पहले भी वह कितनी ही बार कह चुकी हैं कि घूमो चाहे तुम रात भर, पर भोजन घर पर ही करो।" गिरीश लंबा भाषण सुनने को तत्पर न था। "अच्छा" कह कर उसने तुरन्त ही हरीश को बिदा कर दिया।

खाना खा-पी कर रेशमी लिहाफ मे लेट कर गिरीश देख रहा था दो आँखें और दो जुड़े हुए हाथ। न जाने क्यो आज उसकी राय बहादुर की लड़की, अपनी मँगेतर, की काल्पनिक तस्वीर खींचने की ओर प्रवृत्ति ही नहीं हो रही थी। कभी-कभी शून्य में उसके कान में गूँज उठती थी स्वर लहरी "देश के प्रहरी अनोखे···।"

दूर स्थित "सी" ब्लाक की एक कोठी के भीतर एक चौड़े पलँग पर लेटी हुई एक बालिका भी उसी रात बार-बार मन में दोहरा लेती थी "कितने सभ्य हैं··कितने शिष्ट···बोलते भी कितना कम हैं और बस··।"

दूसरे दिन प्रातःकाल माँ ने गिरीश से कहा—"फिर बेटा, लड़की जा कर देख आओ न, कितने महीनो से तो उन्हें अटकाया हुआ है।"

गिरीश ने टालने के से भाव से कहा—"अम्माँ, जल्दी क्या

है, किसी दिन देख आयेंगे। गति को भी आ जाने दो। अकेले जाना क्या अच्छा लगेगा ?"

"गति का क्या ठिकाना है। ससुराल वाले आने देंगे तब ही तो आयेगी। तू देख आ न। विवाह तेरा होगा या गति का ?"

"गति का विवाह तो हो चुका। अब तो विवाह की मेरी ही बारी है। पर सम्बन्ध तो तुम लोगों का भी होगा।"

"और तुमसे तो कोई संबंध होगा ही नहीं; क्यों ?"

सब हँस पड़े। बात उड़ गई, पर गिरीश का जाना फिर भी न हो सका। दो दिन बाद भी नहीं, चार दिन बाद भी नहीं, दो मास बाद भी नहीं, दो वर्ष बाद भी नहीं। कौन कह सकता है कि यह भी भाग्य का ही खेल न हो ! मानव अपने आसपास के वातावरण को अपने अहम् से दबा कर ढक देना तो चाहता है, वैसा अभिमान भी किया करता है; किन्तु वह स्वयं विश्व ब्रह्माण्ड मे कितना ओछा, कितना तुच्छ और कितना नगण्य है, यह वह स्वयं सोच कर भी नहीं सोच पाता है और जान कर भी विस्मरण कर देना चाहता है। यही तो है विधि की विडम्बना।

चित्र

विवाह की बात सुनते ही लड़का हो या लड़की हो उसके सम्मुख कुछेक चित्र आ खड़े होते हैं। प्रायः गृहस्थ की सीधे-साधे ढंग से पाली गई लड़की विवाह के साथ एक छोटी-सी गृहस्थी की कल्पना करती है, जिसमें सास-ससुर की सेवा से ले कर पति की मनुहार और नन्हे कोमल बच्चों की किलकारियाँ तक अपना स्थान रखती हैं। सब कुछ होते हुए भी उसकी कल्पना में एक प्रकार का भय-सा होता है। काल्पनिक चित्र की वास्तविक जगत से मेल न खाने की आशंका-सी होती है, और होती है सर्वोपरि सम्भव और असम्भव के बीच में झूलने वाली एक कँपकँपी-सी। जब कि पुरुष की कल्पना में होता है विश्वास, उन्माद और निश्चय। हिन्दू-समाज में विवाह योग्य होते ही युवक देखने लगता है आज्ञाकारिणी, सुशील, सरल-स्वभाववती किन्तु चतुर एक नारी मूर्त्ति। यह नारी प्रतिमा सुनहरी अवश्य होनी चाहिए, किन्तु उसमें सुरा की सी मादकता न भरी हो 'प्रेमिका भले ही कैसी भी क्यों न हो, पत्नी···सन्तान की माता··गृहस्थी की शृंखलामूल घर की बहू उमर खय्याम की साकी न हो कर देवी सीता, शिव-प्रिया पार्वती के ही अनुरूप होनी चाहिए। उसमें सरलता अवश्य हो, किन्तु मूर्खता नहीं। आज्ञाकारिणी तो वह हो ही, साथ ही साथ विचारशील भी ' मित्र अतिथि के आने पर वह उनकी सेवा भी करे, आदर सत्कार भी करे और इधर-उधर कभी कहीं भी पति के मन में अनुचित सन्देह को न आने दे··

और न जाने क्या क्या। जो भी हो, संक्षेप में विवाह से पूर्व युवक यह अवश्य चाहता है कि कहीं विश्व का कोई गुण उसकी पत्नी मे स्थान पाने से छूट न जाय।

स्वभाव से ही पुरुष मध्य में ही चल पाता है और मध्य में ही चलना भी चाहता है। सम्भवतः समाज में भी वह बीच में चलता रह कर ही जी सकता है। अन्य पाँच-सात लड़कों की भाँति महेश ने भी आयु के बीसवें वर्ष में पग धरते ही हाट-बाट चलते-फिरते एक पूर्ण नारी-प्रतिमा की कल्पना करना आरम्भ कर दिया। अभी विवाह का समय नहीं आया था। बड़े दोनों भाई कुमार थे। एक की सगाई-शादी की बात चल रही थी। अतः महेश पत्नी की कल्पना नहीं किया करता था। वह कल्पना करता था केवल मात्र एक साथिन की जो कि उसके साथ हँस दे और उसके नेत्रों में उदासी की झलक देखते ही कह उठे—"यह क्या? प्रियतम, आज तुम्हारे नेत्रों में अरुण आशा की किरणें न देख कर मटियाली उदासी भरी झलक क्यों पा रही हूँ?" महेश कवि नहीं था। किसी दिन भी कवित्व उसके जग में कहीं दूर निकट भी नहीं आया था। फिर भी वह चाहता था कवित्वमयी प्रेयसी······भावना - कल्पना - भरी नारी जिससे वह खेल सके, जिससे वह आँखमिचौनी सी कर सके, जिसे वह पा कर भी न पा सके और खो कर भी न खो सके।

उस दिन सुबह से ही कुछ बूँदाबाँदी हो रही थी। कमरे की खुली खिड़की से कुछेक बूँदें महेश पर गिरीं। उनींदी आँखों से महेश बिस्तर पर उठ कर बैठ गया। रात्रि में अपने मित्रों के साथ देर तक जिस चित्रलेखा को ले कर वाग्युद्ध होता

रहा था आज सुबह भी उसकी स्मृति मस्तिष्क में शेष थी। महेश को जान पड़ा चित्रलेखा का कोमल हाथ उसके हाथों से छू गया। "कौन" कह महेश भरी आँखों से गरदन घुमा पीछे की ओर देखने लगा।

"तेरा काल, और कौन होगा ?"

"मेरा काल तो बिचारा न जाने कहाँ भटक रहा होगा, मैं शीघ्र ही तो उसके हाथ आने वाला हूँ नहीं।"

"अच्छा यों ही सही, न हाथ आ, पर कुछ चाय वाय तो पिला। देखता नहीं तीन मील चल कर तेरे पास आया हूँ।"

"और सो भी दिन निकलने से भी पूर्व इतना और जोड़ दे तो कैसा रहे ?"

"बहुत सुन्दर। अच्छा, अब उठते हो या मैं चलूँ ?"

"लो भई उठ ही गया" कह कर महेश बिस्तर छोड़ कर जमीन पर खड़ा हो गया।

"पर यार इतनी सुन्दर सुबह क्या उठने के लिए होती है।"

"निश्चय ही नहीं, पर याद है डाक्टर सहाय ने आज तलब किया है ?"

"ओह, सो तो मैं भूल ही गया था। आज ही तो वह केस देखना है। भई खूब हूँ मै भी।"

"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। अरे साढ़े सात ही तो बजे हैं। दस मिनट में तैयार हो कर बस एक प्याला चाय पी, दो पैडल मारे और पहुँच गये लेबोरेटरी में।"

"दस मिनट में आया" कह कर महेश कमरे के बाहर चला गया। महेश का सहपाठी रविदत्त महेश की चारपाई के निकट

रखी हुई कुर्सी पर बैठ गया। रविदत्त महेश का सहपाठी भी था और कुशाग्रबुद्धि मित्र भी। किन्तु विधाता ने जहाँ उसे रूप और बुद्धि देने मे कृपणता नही की थी वही उसके कपाल मे चुपचाप धीरे से नन्हे से कोने मे लिख दिया था अपनी लेखनी से "घोर दारिद्र्य"। विश्व मे प्रथम पग रखने के साथ ही साथ रविदत्त ने अपने पिता को खो दिया था। बुढ़ापे की सन्तान था। न जाने कितने दिन तक व्रतादि करके माता ने पुत्र-रत्न प्राप्त किया था, किन्तु जन्म लेते ही पिता ने साथ छोड़ दिया। माँ ने पति को मूर्ति हृदय मे धारण कर के पुत्र को साहस कर के गोद में लिया। ज्यों-त्यों पुत्र का पालन करने लगी बिचारी विधवा। पर वह भी तो न हुआ। नगर मे प्लेग फैली और विधवा भी एक वर्ष के अनाथ बालक को छोड़ कर चल बसी। घर मे प्लेग के कीटाणु हों या न हों यह तो सब ही को ज्ञात था कि विधवा के पास पुत्र के अतिरिक्त सेरों चाँदी और सोना भी है। अचानक एक दिन कोई एक मामा आ कर एक वर्ष के रविदत्त को पड़ोसियो की गोदी से छीन कर छाती से लगा, लगे जोर-जोर से रोने। उनके रोने के स्वर से विचलित हो कर ही सम्भवतः पड़ोसियों ने सोने चाँदी का एक बड़ा भाग उनके हवाले कर दिया। माल मत्ता सम्हाल कर बहन का ज्यों-त्यों श्राद्ध कर बालक को गोद में ले कर रविदत्त के मामा कहाँ चले गये इसका पता गाँव भर मे किसी को नहीं लगा। जो हो, मामा के घर ही रविदत्त ने एक दिन एक पुरानी नौकरानी से यह कथा सुनी थी। वहीं उसका अध्ययन हुआ। वहीं वह इतना बड़ा हुआ और मामा के शब्दो में वहीं पल कर मनुष्य हुआ। मामा की फटी हुई धोती, मामा के

पुत्रों के फटे-टूटे जूते, और मामी की मीठी कड़वी गालियों के साथ एक दाल या तरकारी के साथ लगा लगा कर खाई जाने वाली रोटियों और परिश्रम से प्राप्त की गई छात्रवृत्तियों के बीच चल कर ही वह डाक्टरी के तीसरे वर्ष मे पहुँच गया था। मामी की इच्छा तो थी कि रविदत्त अब कहीं नौकरी कर ले, पर मामा उसे डाक्टर ही बनाना चाहते थे। इच्छा तो उनकी अपने पुत्रो को भी डाक्टर बनाने की थी किन्तु बार-बार एफ-एस० सी० मे बैठने पर भी जब किसी दिन पास होने की बारी नहीं आई तो मामा निराश हो गये थे। पर अभी उन्हे रविदत्त से आशा थी। वह सरकारी अस्पताल के एक बहुत बड़े डाक्टर के सरकारी क्लर्क थे। उनकी बड़ी प्रबल इच्छा थी कि उनका पुत्र उनके आफिस की कुर्सी पर एक दिन बैठे। पुत्रों से निराश होकर उन्होंने दृष्टि सुयोग्य भानजे की तरफ फेरी, यद्यपि मामी को इसमें पूर्ण संदेह था कि उनका भानजा योग्य है। उन्हें न जाने क्यो सदा यही जान पड़ता था कि रविदत्त उनके हरीचंद की नकल कर के उसे अनुत्तीर्ण करा देता है और स्वयं उत्तीर्ण हो जाता है। लाख बहस करके भी वह पति को अपनी बात समझा नहीं सकी पर पति भी उसे उसके विश्वास से परे न ले जा सके। जो हो रविदत्त "घोर द्रारिद्रय" को ले कर इसी परिवार का एक सदस्य था। महेश उसका अभिन्न मित्र था। स्वभाव, रंग-ढंग और रहन-सहन में कहीं भी तो एक दूसरे से मेल नहीं खाता था, फिर भी वह थे अभिन्न ही। यही तो सब कालेज स्कूल मे सब कहीं कहा करते थे।

महेश कमरे से बाहर चला गया। रविदत्त सोचने लगा "ऐसा

क्यों ? महेश अभी तक बिस्तर में सुख स्वप्न का आनंद उठा रहा है और मैं इस समय तक हैंड-पम्प पर से लगभग बीस वाल्टी पानी खींच कर एक पूरे परिवार को नहला कर बाजार से तरकारी खरीद कर दे कर तीन-चार आदमियों के धोती-कपड़े छाँट कर स्वयं अपना आज दिन का पाठ तैयार करके यहाँ पहुँच गया हूँ। यह सब क्या है ? परीक्षा मे खूब आदर पा कर भी भरपेट खाना नहीं पाता और यह लड़का कभी पास होने योग्य नम्बर भी सरलता से प्राप्त नहीं कर सका फिर भी अंडो से, मक्खन से, सेबो से खेलता है।" महेश के पिता, सुना जाता है कि किसी बड़ी स्टेट के दीवान है। उसकी बहन तो अक्सर एक बड़ी सी मोटर मे बैठ कर, गोद का बालक साफ कपड़ो वाली आया की गोद मे कार मे ही छोड़ कर, महेश से मिलने होस्टल में आती है। उसकी चौड़े ज़रीदार किनारे की बढ़िया बंगलौरी साड़ी, गले के चारो ओर लिपटी बारीक सुनहरी जंजीर और उसके साथ लटकता हुआ पेंडैंट, उसके गोरे हाथों मे दो-दो नगीने के काम की दो दो सुन्दर चूड़ियाँ, उसके पैरों पर सजे हुए ज़रीदार अथवा स्वेड के अथवा साम्हर के रंग-बिरंगी चप्पल, सैंडल अथवा जूते बहुत बार रविदत्त को घंटों सोचने की सामग्री दे जाते थे। महेश अमीर है, बहुत धनी है । रविदत्त गरीब है, उसके जगत मे अभाव का ही एकान्त साम्राज्य है। फिर भी दोनों मे घनिष्ठ मित्रता है। किस आधार पर वह मित्रता चलती है, यही एक बात कभी कोई समझ पाता नहीं; यहाँ तक कि रविदत्त कभी-कभी कई-कई दिन महेश के कमरे में नहीं आता, उससे कालेज मे भी बात नहीं करता, मिलने पर भी

कतराता ही है, फिर भी महेश बुरा नहीं मानता, क्रोधित भी नहीं होता, यहाँ तक कि रूठता भी नहीं; वरन रविदत्त को प्रसन्न करने का ही प्रयत्न करता रहता है। कालेज भर को आश्चर्य होता है। कभी-कभी फबतियाँ भी दोनों पर कसी जाती हैं। फिर भी प्रेम बढ़ता ही है, घटता नहीं। रविदत्त शून्य में बैठा शून्य पर विचार कर ही रहा था कि महेश सजा बना लौट आया।

"लो देर तो नहीं हुई। देखो कितनी जल्दी लौटा हूँ तैयार हो कर। चलो चाय कालेज टक-शाप पर ही पी जायेगी।

"चलो।"

रविदत्त उठ खड़ा हुआ। इस समय उसका मन भारी था। रह-रह कर न जाने क्यों उसकी दृष्टि महेश के चमकते हुए बूट पर से फिसल कर अपने फटे-टूटे जूते पर आ ठहरती थी। फिर भी वह चुप था, शान्त था। कालेज निकट ही था, दो-चार ही मिनट मे दोनो कालेज मे पहुँच गये। पर पहुँच कर ज्ञात हुआ कि डाक्टर सहाय आज छुट्टी पर है।

"चलो, तब तक अपने वार्ड का एक चक्कर ही लगाता चलूँ। तुम चलते हो महेश!"

"ज़रूर, पर पेट भी कुछ माँग रहा है रवि!"

"वहाँ से फिर पेट की ओर चलेंगे" प्रकट रूप से कहा रवि ने। मन ही मन कह उठा "यहाँ अक्सर ही पेट कुछ माँगता रहता है किन्तु उसकी माँग को सुनने का अवकाश और सुन कर भी उस ओर ध्यान देने की सुविधा ही किसे है?" उसकी आँखें एक बार जल कर मानो बुझ सी गईं।

"सो ही सही।" कह कर महेश भी पीछे चल दिया। रवि-

दत्त सोच रहा था···पेट पेट···क्या पेट ही विश्व भर में एक मात्र निरंकुश···शासक है ? क्या पेट की ज्वाला ही विश्व भर के मानव को कर्म-अकर्म करा सकती है··हाय रे पेट···इसी को ले कर मानव की अधिकांश विपत्तियाँ खिलवाड़ किया करती हैं। कैसी विचित्र है यह पेट की ज्वाला और कैसा विचित्र है यह पेट ···उसे जान पड़ा कि कोई जलती हुई सी वस्तु उसके सिर पर से हो कर पैरों तक उसे भस्म करती हुई निकल गई।

भावना

"सचमुच नन्दी तू ऐसी है ?"

"कैसी हूँ, यह नहीं जानती; किन्तु जी चाहता है कि ऐसी ही होती।"

"मै कहती जो हूँ कि तू बिलकुल ऐसी ही है।"

"उहुँ, मेरी तो सहमति प्राप्त की ही नहीं...मै कहती हूँ कि नन्दी ऐसी कभी नही है।" पीछे से गम्भीर मुख बना कर कहा चित्रा ने। सब लड़कियाँ खिलखिला कर हँस पड़ीं। नन्दिनी स्वयं भी खिलखिला कर हँस दी।

"कुछ सुना भो है कि मत ही देने लगी।"

"क्या सुने बिना मत नहीं दिया जा सकता ?"

"वह दिया जाता है हिन्दू घर की कन्या द्वारा विवाह के विपय मे, अन्य किसी भी विषय में नहीं।"

"ओह, तो यहाँ क्या विवाह की बातचीत हो रही है ? कौन मिठाई खिलायेगा ? भई, इसी शनिवार को पार्टी रही।" बड़ी उतावली से कहा चित्रा ने।

"इतनी व्याकुल क्यो हो रही हो ? शायद तुम्हारी ही बारी हो। भला कुछ सुन तो लिया करो, बिना-सोचे समझे ही हाँके जाती हो।" किसी ने छेड़ दिया।

"भई, बात यह है कि हम सब भावना खेल खेल रहे थे। नन्दिनी के विषय में भावनाओ की जाँच हो रही थी। सरला है

न नन्दिनी की रूम-मेट। इसने अपनी नन्दी के विषय मे भावना लिखवाई 'रहस्यमयी कलिका', और नन्दी ने आते ही ठीक-ठीक पहचान लिया। इसी पर सब को आश्चर्य हो रहा था।"

"ओह, यह बात है, खोदा पहाड़ निकला चूहा। तो आप रहस्यमयी हैं यह तो हमने आज ही जाना।"

"प्रत्येक मनुष्य अपनी एक विशेष विचारधारा रखता है। दूसरे की विचारधारा से यदि उसकी विचारधारा मेल नहीं खाती है तो वह कह उठता है अवश्य इसमे कहीं रहस्य है। भले ही उसमें नवीनता न हो, पर वैचित्र्य अवश्य रहता है। और यही उसकी पूँजी है।"

"यही तो उसका रहस्य है।" इस बार सरला ने कहा।

"नहीं, ठीक यही बात नहीं है। उसकी अपनी विचारधारा से किसी के विचार मेल खायें अथवा न खायें समझ मे तो आ जाने चाहिए। हो सकता है कि मै नन्दी के ढंग से न सोच पाती हूँ, पर क्या इसी कारण मैं उसकी बातें समझ भी नही पाऊँगी।" सुषमा ही भला क्यो चुप रहती।

"मनुष्य परिचित को समझता है, अपरिचित की ओर से उदासीन हो जाता है; किन्तु वास्तव में उसे रहस्यपूर्ण तो वही वस्तु लगती है जिसकी ओर आकर्षित हो कर भी वह उसके निकट नही पहुँच पाता है?"

"पर नन्दी न तो अज्ञेय ही है और न पहुँच के बाहर ही। फिर वह रहस्यमयी कैसे बन गई?" नन्दी ने तनिक सा मुसकरा कर कहा। इसी समय घंटी बजने का शब्द सुन कर लड़कियाँ उठ खड़ी हुईं। चित्रा ने हँसते हुए कहा—"न होगा, इस विषय

पर किसी दिन कुमारी सभा मे वाद-विवाद-प्रतियोगिता ही रख लेगे। तब भली प्रकार निर्णय हो सकेगा कि रहस्यमयी नन्दी है अथवा सरला। इस समय तो भोजन की घंटी सुनाई दे रही है।"

नन्दिनी भी अन्य लड़कियो के साथ-साथ कुछ दूर तक गई। फिर कुछ ठिठक कर लौट आई। लड़कियाँ "भावना" खेल बाग मे हरी-हरी घास पर बैठ कर खेल रही थीं। नन्दिनी इस बार अकेली ही घास पर बैठ कर सोचने लगी। चित्रा भी मानो कहीं आसपास ही थी। नन्दिनी को बैठे अभी कुछ ही देर हुई थी कि चित्रा सम्मुख आ गई।

"नन्दी, तू दो-तीन दिन से इतनी चुप क्यों रहती है? जान पड़ता है हर समय कुछ सोचती-सी रहती है?"

"——"

"मुझसे तो कुछ कह। सचमुच ही मैं बहुत बेचैन हूँ तुझे चुप देख कर—मौसी जी ने तो कुछ नहीं लिख लिखा दिया?"

"माँ कभी भी कुछ कहती हैं चित्री? वह विचारी कुछ कह सकती हैं क्या?"

"सो तो मैं जानती हूँ, फिर बात क्या है बता तो?"

"माँ मेरा विवाह कर देना चाहती हैं चित्री।"

"तो मुँह क्यों लटकाये है? ला मिठाई खिला?"

चित्रा खिलखिला कर हँसने लगी।

"तू तो हँसती है।"

"बिदा होने पर रोऊँगी। खूब तसल्ली रख। अभी से तो रोना आवश्यक भी नहीं है और शुभ भी नहीं।"

"पर मै तो अभी विवाह नहीं करना चाहती हूँ।"

"क्यों ?"

"चित्रा, तू तो जानती ही है माँ का विवाह बारह वर्ष की आयु में हुआ। चौदह वर्ष की अवस्था मे रूप, यौवन और वैधव्य का भार सँभाले पिता के घर लौट आईं। मेरी जननी का विवाह चौदह वर्ष की अवस्था मे कर दिया गया। वह एक सन्तान को गोदी ले कर विधवा का वेश धारण किये अठारह वर्ष की आयु मे अपने पुराने घर आ गईं।"

"तो इससे क्या ?"

"मै इतनी जल्दी विवाह नहीं करना चाहती।"

"माँ से कहा था ?"

"मै तो उनसे कुछ भी नहीं कह सकूँगी। उनकी उमंगभरी आशाओं से ओत-प्रोत बातें सुन कर मुझे तो कुछ आशंका सी होती है।"

"इसी से तो मैं कहती हूँ कि लड़कियों को कविता-अविता नहीं करने देना चाहिए। देखो भला इसकी बातें···अरी पगली, इतनी भावुकता से कहीं काम चलता है। मेरे पिता जी तो भीष्म पितामह की तरह जान पड़ता है कोई प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि चित्रा को बी० ए० उत्तीर्ण करवाये बिना ब्याहेंगे ही नहीं, अन्यथा मैं तो आज विवाह कर डालती।" बड़ी गम्भीरता से पुरखिनों की तरह चित्रा ने कहा।

"चित्रा, मुझमें और तुझमें बड़ा अन्तर है। तू पाँच भाइयों की एक ही लाड़ली बहन है, घर भरा-पूरा है। पर यहाँ तो दो विधवा नारियों का एक ही आशा दीप है··घर बार बेच कर भी वे मेरा विवाह शान-बान से करेंगी और फिर·· अपनी बात नहीं

सोचती, केवल उनकी ओर देख कर ही दुःख से मन भारी हो उठता है।"

"भविष्य की विधाता तो तू है नहीं।"

"इसी से तो अपने आपको किसी प्रकार के परीक्षण की वस्तु बनाना चाहती नहीं हूँ। तू नहीं जानती किस प्रकार इन दो विधवा बहनों ने मुझ एक लड़की को पाला है। मेरी माँ तो कुछ ऐसी आदर्शवादिनी कभी भी नहीं थीं, पर जिन्हें मैं माँ कहती और मानती हूँ उनके स्वप्न तो मुझे और भी भय दिलाते हैं।"

"तो माँ तेरी माँ नहीं है ?"

"नहीं, यह मेरी मौसी हैं। यह तपस्विनी बाल-विधवा मेरी पालिका हैं। इन्हीं की गोद मे खेल कर, इन्हीं के आँचल मे छिप कर, इन्हीं के आदर्शों को ले कर मैं इतनी बड़ी हुई हूँ। भय लगता है कि कहीं कोई झंझावात आ कर माँ की आशाओं के नींवरहित मन्दिर को ढा न दे।"

"ऐसा होगा ही क्यों नन्दी ?"

"न हो सो ही तो चाहती हूँ—चित्रा, कभी कहीं माँ को, उनकी उच्च अभिलाषाओं को, उनके दिवा-स्वप्नों को, तनिक सी भी ठेस न लगे यह सोच कर कि नन्दी कुशाग्र बुद्धि नहीं है, इसी कारण अस्वस्थ होने पर भी मैं परिश्रम करके सदैव कक्षा में प्रथम आती रही हूँ। कहीं कभी और किसी कारण भी माँ को यह सन्देह न हो जाय कि मैं उनके आदर्शो का पालन नहीं करती इसीलिए इच्छा न होने पर भी नियमित रूप से खान, पान, व्यायाम आदि किसी भी नियम में किसी दिन भी

व्यतिरेक नहीं होने देती... " नन्दिनी की आँखो में आँसू छलक आये थे।

"ओह, किस प्रकार कोई दूर बैठा-बैठा भी किसी के मन प्राण पर शासन कर पाता है, सो ही देख रही हूँ। यहाँ तो माँ आँखो से ओट हुई तो होस्टल मे कौन परवाह करता है उनके आदर्शों और उनके आदेशो की।"

"यही तो मै कर नही पाती हूँ चित्रा! माँ की प्रसन्नता के लिए ही यह विवाह करना पड़ेगा। इसी से तो मन इतना भारी हो उठा है।"

"आज न भी करे तो क्या सदा ब्रह्मचारिणी ही रहेगी?"

"कौन जाने?"

"तभी तो सरला तुझे रहस्यमयी कलिका कहती है। चल, उठ, अब खाना खाने चलें।"

"तू जा, मुझे भूख नहीं है।"

"हाँ भूख क्यो होगी? चलती है सीधे से खाना खाने अथवा डाइनिंग रूप में जा कर कह दूँ कि नन्दी तो दिवास्वप्न देखने मे मग्न है, उसे भूख कहाँ?"

"चलती हूँ, बाबा चलती हूँ, तू यह गजब न करना। होस्टल मे किसी से कहना भी नही।"

खाना खाने के पश्चात् नन्दी कमरे मे नहीं गई। बाहर ही आ गई। सब लड़कियाँ थोड़ी देर टहल फिर कर कमरो मे अध्ययन करने चली गई पर नन्दिनी बाहर ही टहलती रही। उसके मन मे हलचल सी मची हुई थी। उसका मस्तिष्क खौल सा रहा था। आज ही माँ की आदेश-पत्रिका आई थी जिसका

एक-एक शब्द नन्दिनी को कण्ठस्थ हो गया था। नन्दिनी बार-बार मन ही मन दोहरा रही थी :—

"प्रिय नन्दी,

सुखी रहो !"

नन्दिनी आज इसी 'सुखी रहो' को अपने अखण्ड विश्वास का केन्द्र बना लेना चाहती थी। माँ ने लिखा था :—

"हमारे स्वप्नों को, बेटा, अब तो साकार हो जाने दो। जीवन क्षणिक है, कल की बात कौन जानता है। जिस आज की प्रतीक्षा हम जीवन भर करते ही रहे उस आज को हम दोनो के जीवन में अब आ जाने दो रानी.....।"

"तब यही हो ··तब यही हो···" नन्दिनी मन ही मन दोहरा रही थी। "और···और···गिरीश···नहीं ··वह मेरा कौन है·· किसी दिन बातचीत भी नहीं हुई। कभी विचार-विनिमय भी नहीं हुआ, फिर भी वही क्यों मेरे मन-प्राण पर इतना बड़ा अधिकार किये बैठा है ··नहीं नहीं ··सो कुछ नहीं···माँ लिखती है 'मुझे पूर्ण आशा है कि तुम मेरी इच्छाओं पर 'नहीं' कह कर तुषारपात नहीं करोगी।' सचमुच ही नहीं करूँगी, किसी दिन कभी और किसी कारण से भी नहीं करूँगी।" न जाने क्यों जीवन में पहली ही बार नन्दिनी को जान पड़ा कि उसके जीवन मे कहीं कुछ कमी है, कुछ अभाव-सा खटक रहा है। उसके मन मे बिजली की तरह एक इच्छा कौंध गई ···"काश कि मेरे·· जीवित होते··' माँ और मौसी के सिन्दूर-सज्जित भाल पर सजी हुई ज़रीदार किनारी को साड़ी उसकी कल्पना में चमक उठी। अभिशाप और वरदान, इनके बीच कितना अन्तर है;

यही सोच रही थी नन्दिनी। 'माँ के लिए भी एक दिन'''सिन्दूर दान'' सिन्दूर ग्रहण और फिर सुहागरात वरदान में अभिशाप भर कर लाये थे। नन्दिनी सिर से पैर तक काँप उठी'''न जाने क्यो उसकी कल्पना मे क्षणेक को गिरीश का मुख चमक उठा''' उसकी दृष्टि मे उज्ज्वल हो उठा कार के चालक-चक्र पर हाथ रक्खे हुए एक नवयुवक का मुख'''नन्दिनी ने तुरन्त ही उस काल्पनिक चित्र को बरबस ठेल ठाल कर दृष्टि-पथ से दूर कर दिया। उसके विचार तक को मन से निकाल कर सोचने लगी केवल मात्र माँ की अपरिसीम प्रसन्नता की बात, उनके आदर्शों की बात, किन्तु न जाने किस तरह इन सबके बीच वह एक मुख बीच-बीच मे चमक उठता था और नन्दिनी मिटा कर भी उस चित्र को मिटा पाती नहीं थी। फिर भी वह छिप अवश्य गया। नन्दिनी के मन के प्रकाशपूर्ण भाग में उसकी छाया तक भी दूसरे दिन प्रातः काल शेष नहीं रह गई थी।

सन्देश

"भाभी, सदा सारी बातें क्या कह कर ही जताई जाती हैं ?"

"न कह सकने पर जताने का क्या और भी कोई तरीका शेष रह जाता है हरीश ?"

"अवश्य, और उस तरीके को जान बूझ कर तुम लोग देख नहीं रही हो ?"

"सो कैसे ? भैया, मैं तो तुम लोगों की तरह बहुत ज्यादा पढ़ी हूँ नहीं और माँजी तो यों भी बहुत ही सीधी-सादी हैं, फिर इन नवयुग के लड़को के तरीके कौन पढ़े ?"

"तुम्हीं पढ़ोगी भाभी और यदि तुम न पढ़ पाईं तो कोई भी पढ़ सकेगा नहीं, यह निश्चय ही है।"

"अच्छा, बात क्या है ? कुछ कहो भी सही। रायबहादुर की लड़की को मैं स्वयं सुगति के साथ जा कर देख आई हूँ। लड़की सुन्दर है, पढ़ी-लिखी है, गाना-बजाना भी जानती है। अब नवाब साहब और क्या चाहते हैं सो ही मैं समझ नहीं पाती हूँ।"

"नवाब साहब वहाँ विवाह नहीं करना चाहते हैं, समझीं भाभी ?"

"सो क्यों ? भीष्म पितामह की तरह डाक्टर साहब ने कोई व्रत ले लिया है अथवा विचारी उस कुमारी में कुछ दोष आ गया है ?" भाभी ने इस बार कुछ चिढ़ कर कहा।

"सो नहीं कह सकता, किन्तु विवाह इस जगह न होगा।"

"शायद कहीं और करने का निश्चय हो ?" जिज्ञासा भाव से भाभी ने प्रश्न किया।

"हो सकता है।" उदासीन भाव से हरीश ने उत्तर दिया।

भाभी सन्तुष्ट न हो सकीं, किंतु मुख का प्रश्न मुख में ही रह गया। माँ जी ने कमरे के भीतर आ कर कहा—"अरे, तो क्या बहू, बातों से ही पेट भर दोगी ? हरीश को कुछ नाश्ता-वाश्ता नहीं कराना है ?"

"गिरीश बाबू तो आ जायें माँ जी, उनके साथ ही ये नाश्ता करेंगे। ऐसा किये बिना दोस्ती थोड़े ही निभती है।" अन्तिम वाक्य भाभी ने धीरे से कहा।

"माँ जी, गिरीश भाई आते ही होंगे। आज तो अपनी भाभी से नाश्ता ही क्यों रात के खाने की भी छुट्टी ले आया हूँ। सो खा कर तो जाऊँगा ही।"

"ओह, हरीश यहाँ है और मैं भाई तुम्हारे घर से हो कर आ रहा हूँ।" कहते हुए गिरीश कमरे के भीतर आ गया।

"और ये न जाने कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं यहाँ बैठे-बैठे।" भाभी ने मुसकराते हुए कहा।

"ओह ! माँ, मैं और हरीश आज एक नाटक देखने जायेंगे। शायद देर तक लौटें। तुम लोग इन्तजार न करना।"

"सो आना चाहे जब, पर इस समय तो बिचारे पेट के साथ कुछ न्याय होना ही चाहिए।" हरीश कह उठा।

"अच्छा, तुम लोग तब तक बैठे गपशप करो, बिचारे पेट की व्यवस्था मैं ही किये देती हूँ।" कह कर माँ जी उठ खड़ी हुईं। पर इससे पूर्व ही बड़ी बहू कमरे से बाहर जा चुकी थीं।

"गिरीश भाई, यह सब क्या कुछ अच्छा हो रहा है ?"

"क्या ?"

"यही, घर भर तो रायबहादुर की लड़की को इस घर में लाने के लिए इतना अधिक उत्सुक और तुम इस ओर ध्यान ही नहीं देते।"

"हरीश, वहाँ विवाह न होगा।"

"तब कहाँ होगा ?"

"यह नहीं कह सकता, पर वहाँ न होगा, यह निश्चित ही समझो।"

"जानते हो इससे माँ को, भाभी को और सुगति को कितना बुरा लगेगा ?"

"हूँ।"

"वह क्या ठीक होगा ?"

"बुरा लगेगा...जीवन में न जाने कब कितने व्यक्ति किन-किन घटनाओं को ले कर प्रसन्न और अप्रसन्न होते रहते हैं, इसका क्या कुछ हिसाब है ?"

"किन्तु इन लोगों की गिनती तो 'कितने व्यक्तियों' में नहीं है।"

"हरीश, मैं सदा से ही भाग्यवादी हूँ और आज भी भाग्य के भरोसे ही मन के संकेत पर चलता जा रहा हूँ।"

"पर मन के संकेत का कोई कारण भी तो स्पष्ट होना चाहिए।"

इस बार कुछ मजाक के ढंग से गिरीश ने उत्तर दिया—"यदि उस लड़की के लिए तुझे इतनी चिन्ता है तो तेरा विवाह वहाँ करवा दूँ ?"

"बात कुछ ऐसी मज़ाक की नहीं है गिरीश।"

इसी समय नौकर नाश्ते का सामान ले कर आ गया। तश्तरियाँ मेज पर सामने रख दी गईं। बात उड़ाते हुए गिरीश ने कहा—"लो, अब पहले पेट के साथ न्याय कर लो, फिर और कुछ बातचीत की जायेगी।"

हरीश स्पष्ट रूप से समझ गया कि लहजे मे मजाक होने पर भी गिरीश का कण्ठ स्वर कुछ भीगा-सा है; मन भी कुछ अव्य-वस्थित-सा ही लगता है। हरीश ने चाय प्याले में डालनी आरम्भ की।

"अभी रहने दो हरीश बाबू यह काम। जब मेमसाहब आ जायेंगी तब करना। तुम्हारे नौसिखिये हाथों की बनी हुई चाय उन्हे खूब भायेगी। स्वयं तुम्हे अच्छी लग सके इसकी तो कोई आशा नहीं है।"

"लो भाभी तुम्हीं बनाओ। भला अपना यह जन्म-सिद्ध अधिकार तुम क्यों छोड़ने लगीं।" गिरीश ने कहा।

गिरीश अपने बड़े भाई उमेश से पाँच-छः साल ही छोटा था, किन्तु बचपन से ही वह पिता से भी अधिक भाई को मानता था। उमेश भी बचपन में गिरीश की शरारत अपने ऊपर ओढ़ कर दंड पा लेना बहुत पसन्द करता था। यहाँ तक कि भाई के लिए बड़े से बड़ा त्याग कर डालना भी उसे सुगम जान पड़ता था। पिता की मृत्यु अभी पार साल ही हुई थी। उन्होंने मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए केवल यही कहा था—"गिरीश अभी पढ़ ही रहा है फिर भी मुझे उसकी ज़रा भी चिन्ता नहीं है। उमेश की माँ! उमेश गिरीश के लिए जो कुछ कर सकता है वह शायद मैं

भी न कर सकूँ। चिन्ता तो मुझे उमेश की है जिसने सदा सब की केवल सेवा करना ही जाना। उसका तुम सदा मन रखना।"

पिता की मृत्यु भी हो गई। आमदनी भी कम हो गई। खर्च उतना का उतना ही बना रहा। सब ओर से खर्च की मद में कमी करने की बात सोची जाने लगी, किन्तु किसी भी तरह उमेश ने गिरीश के खर्च मे तनिक भी कमी करना स्वीकार न किया। गिरीश अपनी छोटी मोटर बेच डालना चाहता था, पर उमेश ने यही कहा—"गिरीश, मेरे सामने फिर इस तरह की बात न करना।" गिरीश भली प्रकार जानता था कि भइया किसी तरह भी गिरीश को कष्ट देना स्वीकार न करेगे। भाभी ने सुनने पर हँस कर यही कहा था—"अरे बाबूजी के सामने गिरीश के पास अलग अपनी मोटर थी और दोनों बाप बेटों के लिए एक, तो अब भला भइया कभी दो की एक कर सकते है। इससे तो यही अधिक सरल दीखता है कि वह अपनी ही कार बन्द कर दे।" जो हो दोनों ही कारे चलती रहीं। भाभी का भी गिरीश पर सहज स्नेह था। यों कभी-कभी पति के देवर पर अत्यधिक स्नेह को ले कर पति-पत्नी मे कहा सुनी हो जाया करती थी, फिर भी भाभी गिरीश को स्वयं भी कुछ कम स्नेह की दृष्टि से नहीं देखती थीं। खलता तो उन्हे यही था कि उनके पति को किसी भी प्रकार यह विश्वास नहीं हो पाता था कि उनसे अधिक अथवा उनके सा ही कोई अन्य व्यक्ति भी गिरीश को प्रेम कर सकता है। उस दिन तो बात वहीं तक रही। गिरीश के भाई इंजीनियर थे। दूसरे दिन सुबह ही दौरे से लौटे। सन्ध्या समय गिरीश की पुकार हुई। गिरीश ने चरण छू कर प्रणाम किया।

"क्यों गिरीश, यह क्या सुन रहा हूँ ? अब तू क्या ऐसी मनमानी करने लगा है ?"

"मैंने क्या किया भइया ?"

"जानता तो है कि पिछले तीन वर्षों से तेरी शादी की बात-चीत इन्हीं रायबहादुर साहब की लड़की के साथ लगभग तय ही है। हर प्रकार से योग्य है। तेरी भाभी और सुगति देख सुन आई हैं। तू भी जा कर देख आ और क्या चाहता है ?"

"भइया, सदा सब व्यक्ति विवाह करें ही ऐसा तो कोई नियम है नहीं, और मैं अभी कुछ करने तो लगूँ फिर देखा जायेगा।"

"हूँ, तू बहुत अधिक बुद्धिमान हो गया जान पड़ता है। जा, जा विवाह तो यहीं होगा।"

गिरीश ने फिर कुछ भी न कहा, किन्तु एक मास के अन्दर ही अन्दर रायबहादुर साहब के घर से सम्बन्ध तोड़ दिया गया।

नन्दिनी की माँ ने भी क्लब में एक दिन मिसेज उमेशाचन्द से कहा—"क्यों भई गिरीश का विवाह यहाँ नहीं करना है क्या ?"

"अभी तो यही निश्चय किया है।"

"पर उस घर में कुछ बुराई तो है नहीं। लड़की भी अच्छी है।

"सो तो है, पर यदि मैं तुमसे अपने गिरीश के लिए नन्दिनी की माँग करूँ तो ?..."

"अरे भाई क्यों गाली देती हो ? हमारी और तुम्हारी समता

क्या ? तुम लोगों के घर के लड़के तो जजों की लड़कियों तक को बरसों टालते रह कर भी ठुकरा देते है। नन्दिनी तो हमारी भला बेबाप की लड़की है।"

"हँसी नहीं कर रही हूँ। सचमुच क्या हमारा प्रस्ताव तुम्हे स्वीकृत होगा ?"

"अच्छा बहन, सोच देखूँ। और फिर नन्दिनी की असली माँ तो उसकी मौसी ही है। उनसे भी सलाह कर लें। हम तो नन्दिनी को ऐसे घर देना चाहते हैं जहाँ उसकी चाह हो, फिर भी बहन से पूछ देखूँ।"

"हाँ · हाँ···जरूर···"

बात यहाँ तक रह गई। उधर नन्दिनी की मौसी सुन कर तनिक सा हँस दीं।

"मैं नन्दिनी को दूँगी भला उस घर में ?"

"क्यों बहन, घर वर तो अनुपम है।"

"लो कैसी है तुम्हारी बुद्धि ! गिरीश के पिता जब बीमार थे तो देखा नहीं था कैसे बहू रगड़ी जाती थी रात दिन। एक तो यों ही उन्हें तपेदिक, उस पर आठों पहर बहू ही सेवा करे। उस घर की रीति ही निराली है । इतना रुपया पैसा है फिर भी न जाने क्यो चौबीसों घंटे बहू को ही पीसे डालते हैं। मेरी नन्दिनी ऐसे घर मे जा कर क्या सुखी होगी ? मैंने तो कभी उससे तिनका भी नहीं उठवाया और वहाँ जा कर वह रोगियो के पैर दाबे यह मैं कैसे देख सकूँगी भला ?"

"और कौन जाने उस घर के और लोगों में भी तपेदिक के कीटाणु आ गये हो। ना बहन, तुम ठीक कहती हो। वहाँ लड़की

देना ठीक नहीं है। मैं तो इसीलिए टाल आई थी।"

इधर बहू ने जब सास से आ कर कथा सुनाई तो उन्होंने मुँह बना कर कहा—"अरे उस बिना बाप की लड़की का उद्धार करने के लिए क्या हमारा लड़का ही रह गया है। भई तुम लोग जानो, मेरी राय तो रायबहादुर की लड़की के लिए ही है।"

पत्नी ने पति से जब यही बात कही तो उन्होंने भी बेमन से यही कहा—"जहाँ गिरीश सुखी हो, उसे पसन्द हो वहीं, विवाह करो।"

भाभी निरुत्साह तो हो गई, किन्तु सम्भवतः उनसे अधिक यह कोई जानता भी नहीं था कि गिरीश की प्रसन्नता किसमें है। उस समय भी गिरीश चाँद की किरणों के साथ खेलती हुई रजनी को नन्दिनी की हाल ही प्रकाशित एक कविता की पंक्तियाँ सुना रहा था—

"निशि तुम सो जाना मैं गीत सुनाऊँ।
निशि प्रिया खो जाना जब तुम्हें बुलाऊँ॥"

खुली छत पर एक बड़े से पलँग पर माँ के साथ ही लेटी हुई नन्दिनी सम्भवतः स्वप्नों के जगत में चन्द्र, रजनी और किरणों से ही बातें कर रही थी। कौन जानता है उन्हीं मीठे स्वप्नों में अचेतन मन की कई सुषुप्त इच्छायें भी निज मार्ग खोज रही हों।

खोज

"हो सकता है कुछ व्यक्ति अपने को ही न समझ पाते हों।"

"हो सकना असम्भव नहीं, किन्तु ऐसे व्यक्ति आदर्शवादी अथवा कल्पना-प्रधान ही होते होंगे। वास्तविक जगत में उनका क्या स्थान होगा सो ही कहना कठिन है।"

"पर यह देखो हमारे डाक्टर गिरीश तो आदर्शवादी भी नहीं हैं और कल्पना-प्रधान भी नहीं, फिर भी क्या यह अपने आपको कभी समझ सके हैं अथवा समझ सकेंगे ?" कहा शालिनी ने।

उस दिन कालिज में अन्तिम वार्षिक प्रीति-भोज दिया जा रहा था। यों तो गिरीश और हरीश दोनों ही को मेडिकल कालिज छोड़े एक वर्ष हो गया था फिर भी पुराने साथी उन्हें भूले नहीं थे और हरीश तो भला अपने मधुर कण्ठ से वर्षों उन्हें मनोरंजन देता आया था। उसकी उपस्थिति तो अनिवार्य ही थी। मित्रों के बहुत आग्रह करने पर यह जोड़ी आ ही गई। शालिनी गिरीश से एक वर्ष पीछे थी। उसने इसी वर्ष एम० बी० बी० एस० की परीक्षा दी थी। कालिज यूनियन की उपप्रधाना शालिनी कुमार अथवा मिस कुमार अत्यन्त उज्ज्वल प्रकृति की लड़की थी। भगवान ने रूप तो विशेष नहीं दिया था पर शालिनी को इसकी विशेष चिन्ता भी न थी। उसके साँवले मुख पर कुछ ऐसा मीठा-सा भाव हर समय रहा करता था जो कवि-वर्णित रूप की कमी को कभी किसी की भी दृष्टि में आने नहीं देता था। इसके अतिरिक्त शालिनी की अभिरुचि बहुत ही उच्चकोटि की थी।

उसके वस्त्रादिक, उसकी साज-सज्जा उसे बहुत ही आकर्षक बनाये रखती थीं। मस्तिष्क की शक्ति भी कम न थी। बोलचाल का ढंग और जज पिता के साथ हर प्रकार के सभा-समाज मे आने-जाने से उठने-बैठने की रीति-नीति से भी शालिनी का अच्छा परिचय था। सुन्दर न होते हुए भी शालिनी सहज ही आकर्षक थी। कुशाग्र बुद्धि न होते हुए भी शालिनी कभी किसी परीक्षा मे अनुत्तीर्ण नहीं हुई। ज्ञान-भण्डार बहुत विस्तृत न होते हुए भी शालिनी हर प्रकार की बातचीत में आराम से भाग ले सकती थी।

उत्तर दिया हरीश ने—"जान पड़ता है मिस कुमार गिरीश को उनसे भी अधिक अच्छी तरह समझती हैं।" शालिनी हार मानने वाली जीव तो थी ही नहीं। कुछ हँस कर बोली—"नब्ज देख सकने योग्य हो गई हूँ हरीश बाबू। इस बार ही तो डिप्लोमा मिल जायेगा मनुष्य के शरीर पर छुरी चला सकने का अधिकार लिये हुए।"

"शरीर-विज्ञान के धरातल पर काम करते-करते सम्भवतः आप मनोविज्ञान के आकाश को भी छूने लगी हैं।" इस बार कहा महेश ने। उसके स्वर मे कुछ झुँझलाहट भी थी। शालिनी का मुख उस ओर न था। उसने मुख उधर घुमा कर कहा—

"रसगुल्ले की प्लेट ज़रा इधर तो करना महेश।"

"यह भी मनोविज्ञान का ही एक ढंग है।" हरीश ने कहा।

सब खिलखिला कर हँस पड़े। महेश कुछ अप्रतिभ-सा हो गया। रविदत्त ने गिरीश से पूछा—डाक्टर गिरीश, आपके क्लीनिक का क्या हाल है?"

"अच्छा ही है भाई। तुम्हारा अब क्या करने का विचार है ?"

"मै तो इसे यही सलाह दे रहा हूँ कि एक दो वर्ष वियाना में रह आये। मनुष्य बन जायेगा मनुष्य। पर यह मानता ही नहीं है। कहता है यहीं कहीं नौकरी करूँगा।" महेश के मुख पर विजय-गर्व था। रविदत्त ने एक क्षण के लिए महेश के मुख की ओर देख कर कहा सहज भाव से, सहज स्वर में—"गिरीश दादा, महेश वियाना जा रहे हैं। मुझे भी ले जाना चाहते हैं। किन्तु मुझे तो वैसी सुविधा है नहीं, अतः मै कहीं नौकरी ही करूँगा, थोड़ी या बहुत जैसी मिल जाये. पेट तो भरना ही है।" अन्तिम वाक्य स्वयं रविदत्त के अपने ही कानों में बड़ा हीन-सा प्रतीत हुआ। महेश को भी अच्छा नही लगा। हरीश ने झटपट महेश और रविदत्त की ओर देख कर भाँप लिया कि विषय अरुचिकर होता जा रहा है। इस बार वह विषय बदलने की इच्छा से शालिनी की ओर देख कर बोला—"और आप तो शायद मातृ केन्द्र खोलेंगी ?"

शालिनी अकारण ही बड़ी जोर से हँस दी मानो हरीश ने कोई बड़ी भारी हँसी की बात कह दी हो। और फिर हँसते-हँसते ही कहने लगी—"क्यों, मै क्या ऐसी दीखती हूँ कि अपना कोई स्वतन्त्र काम चला सकूँ ? न होगा आप लोगों मे से ही किसी के केन्द्र या क्लीनिक या हस्पताल मे जा कर नौकरी कर लूँगी। क्या विचार है। रख तो लेंगे ना ?"

"ऐसा अवसर यदि किसी दिन आन ही पड़े तो मुझे न भूलियेगा मिस कुमार।" हरीश ने उसी लहजे मे उत्तर दिया।

चारों ओर जोर-जोर से हँसने और बातचीत करने का शब्द हो रहा था। उसमें हरीश का उत्तर कुछ दब-सा गया। पर हरीश की ओर गिरीश की कुछ क्रोधभरी-सी दृष्टि पड़ी। हरीश की किसी दिन भी शालिनी पर कृपा नहीं रही थी। यहाँ तक कि जब पिछले वर्ष शालिनी गिरीश को बरबस नौका-विहार-पार्टी के साथ ले गई थी और वहीं पर सिनेमा जाने का प्रोग्राम भी बन गया था जिसमें गिरीश को भी घसीटा गया था तब सारे दिन का कार्य-क्रम पूरा हो चुकने पर लौटते समय हरीश ने कहा था गिरीश से—"गिरीश, इस लड़की से सदा सावधान रहना।" सीधे-सादे गिरीश के इस प्रश्न पर "क्यों? शालिनी तो बहुत ही भली लड़की है। तुझे उसके सम्बन्ध में सावधान रहने के लिए चेतावनी क्यों देनी पड़ी?" हरीश ने इतना ही कहा था—"जो हो, इतनी चञ्चलता हिन्दू घर की कुमारी को शोभा नहीं देती है?"

"पर हमें उससे क्या?"

"हमें उससे कुछ भी न हो यही तो चाहता हूँ।"

फिर गिरीश ने कुछ नहीं कहा। वह अकारण बोलता भी अधिक नहीं था। यद्यपि हरीश अपने मित्र दल में 'बातूनी' के नाम से ही अधिक परिचित था, फिर भी दोनों की मित्रता अटल थी। उसके बाद ज्यों-ज्यों शालिनी गिरीश के अधिकाधिक निकट सम्पर्क में आने लगी हरीश का क्रोध शालिनी कुमार के प्रति बढ़ता ही गया। गिरीश सदा ही शालिनी को मित्र भाव से देखता रहा, किन्तु हरीश किसी दिन भी इस मित्रता को अच्छी दृष्टि से न देख सका। यहाँ तक कि जब कभी और लोग गिरीश

और शालिनी की मित्रता पर कटाक्ष करते तो हरीश क्रोध से जल उठता। यही कारण था कि हरीश और शालिनी की लगती ही रहती थी, यद्यपि गिरीश किसी का भी पक्ष नहीं लेता था। आज प्रायः एक दूसरे को देखा भी कोई छः मास पश्चात् था, अतः नोकझोंक भी होना आवश्यक था। रविदत्त इसी बीच में अचानक अत्यधिक उदास हो गया। महेश ने परिस्थिति की कटुता हलकी कर दी, शालिनी से एक गाना गाने की प्रार्थना करके।

"कौन-सा गीत गाऊँ महेश ?"

"वही, 'कौन जाने प्यार मेरा ?' "

"वह तुम्हें, जान पड़ता है, बहुत ही अच्छा लगता है।"

"बहुत ही अधिक और फिर आपके कण्ठ स्वर में तो साक्षात् सरस्वती का ही वास है।"

"महेश, डाक्टरी के साथ यह कविता निभेगी नहीं।" हरीश भला चुप थोड़े ही रह सकता था।

"निभेगी, खूब निभेगी। गिरीश के दार्शनिक मूड से यह कोमल मानसिक वृत्ति कुछ अधिक भयंकर नहीं है।" इस बार उत्तर दिया शालिनी ने।

"सो तो आप ही अधिक अच्छी तरह समझ सकती हैं।"

"हूँ।" शालिनी की इच्छा हुई कि इस अजेय दंभी युवक को बड़ा ही कठोर-सा, कड़वा सा, उत्तर दे; पर न जाने क्यों उपेक्षाभरी एक दृष्टि हरीश पर फेंक कर इस बार उसने महेश से कहा—"यह गीत मेरी एक सखी की कविता है। आयु में बिलकुल एक सी न होते हुए भी हम लोग बड़ी ही प्रिय मित्र हैं। किसी समय तो पड़ोसी भी थे। वह कविता बनाया करती थी

और मे गाया करती थी। सचमुच बड़ा ही अच्छा लिखती है नन्दिनी।"

"सुनाइये तो सही।" कण्ठ-स्वर मे बहुत ही अधिक आग्रह लिये गिरीश ने कहा। ऐसा स्वर कम से कम गिरीश के कण्ठ से तो शालिनी ने कभी भी नहीं सुना था। आश्चर्य से उसने गिरीश की ओर देखा जो कि बड़ी उत्सुकता से शालिनी के मुख पर दृष्टि जमाये हुए था। गिरीश ने झेंप कर दृष्टि नीची कर ली मानो चोर चोरी के माल सहित रँगे हाथों पकड़ लिया गया हो। शालिनी की पैनी दृष्टि उचटती हुई लौट आई। उसने गीत आरम्भ कर दिया। गिरीश दत्तचित्त हो कर सुनने लगा।

(स्थायी) कौन जाने प्यार मेरा ?

(अन्तरा १) जानती कुछ भी नहीं हूँ, जान पाती ही नहीं हूँ।
विश्व की कटु सी गति, पहचान पाती ही नहीं हूँ।

गीत के स्वर गूँज रहे थे, विभिन्न मानव-कानो से टकरा रहे थे; पर गिरीश के हृदय मे गहरे, गहरे, बहुत ही गहरे, उतरते जा रहे थे। शालिनी गाये जा रही थी।

(अन्तरा २) कीट-संकुल, कौन जाने मार्ग में मेरे पड़े हैं।
मैं उन्हे हूँ चुन न सकती, त्याग पाती भी नहीं हूँ॥

न जाने गीत कब समाप्त हो गया। गिरीश मौन ही रहा। उसके अतिरिक्त और सब ही ने शालिनी के कण्ठ-स्वर और गीत की भूरि-भूरि प्रशंसा की। महेश तो प्रशंसा करते-करते थकता ही नहीं था। हरीश तक कह उठा—"खूब गाती हैं आप मिस कुमार।" किन्तु गिरीश चुप ही रहा। शालिनी ने भी गिरीश से कुछ नहीं कहा, हरीश से ही बोली—"और आप

क्या कुछ कम गाते हैं। मै तो इस प्रीति-भोज मे थी ही, फिर भी सब को आप की ही आवश्यकता अधिक प्रतीत हुई। इससे यही तो प्रमाणित होता है कि संगीत में आपको परास्त कर सके ऐसा कण्ठ-स्वर मेरा नही है।"

"यह आपकी अतिशय शालीनता ही है।" हरीश ने शिष्टाचार के नाते कहा।

महेश ने भी कुछ गम्भीरता से कहा—"सचमुच ही मिस कुमार हरीश से अच्छा गाती है।"

मिस शालिनी कुमार उत्तर मे मुसकरा भर दी। अलग-अलग मेजो पर जो लोग शालिनी का गीत सुनने के लिए चुप हो गये थे फिर बोलने लगे। किन्तु गिरीश उसी प्रकार चुप बैठा रहा। शालिनी ने ही उसका ध्यान आकर्षित करने के लिए कहा—"गिरीश जी, आपकी चाय बिलकुल पानी ही हो गई है।" स्वर मे व्यंग्य था।

"बहुत ही सुन्दर गीत था।" रुँधे से स्वर मे इस बार गिरीश ने कहा और फिर चाय का प्याला उठा लिया। शालिनी को जान पड़ा कि इस स्वर, इस ध्वनि, की सी प्रशंसा उसने और कभी और कहीं नही सुनी थी। यों प्रशंसा सुनना तो शालिनी का नित्य कर्म था ही और अब तो डाक्टरी की अन्तिम परीक्षा दे कर उसे केवल मात्र पार्टी आदि मे जा कर प्रशंसा सुनना भर ही शेष कार्य रह गया था। पार्टियो में न प्रशंसा की कमी थी और न उसके प्रशंसको की ही; फिर भी यह नवीन ही ढंग की प्रशंसा थी।

"रवि भाई, तुम्हे कैसा लगा शालिनी जी का गीत?"

हरीश ने रवि को छेड़ा; वह भी अभी तक सर्वथा मौन था।

"बहुत ही सुन्दर गाती हैं, पर स्वर और ध्वनि से भी अधिक मैं तो सुन रहा था गीत मे उस हृदय की कातर वाणी जो कि निरन्तर चिल्ला कर कह रहा है "कौन जाने प्यार मेरा।"

"यह संगीत की प्रशंसा नही है, उसका अपमान है रवि जी। मैं जब संगीत सीखती थी तो मास्टर जी कहते थे कि जिस संगीत के शब्द श्रोतागण के कानो में स्वर और ध्वनि मे खो नहीं जाते है वह संगीत नहीं, संगीत का उपहास भले ही हो ? तुमने कविता पाठ सुना है, शालिनी का गाया हुआ गीत नहीं।"

"मै अरसिक हूँ, संगीत-मर्मज्ञ भी नहीं पर मुझे तो गीत मे यह विश्वव्यापी वेदना ही सुन पड़ी है जो खोजती है अपने आपको समझने वाला अपना पारखी, किन्तु वह पारखी, वह जौहरी कहीं मिलता नहीं है।"

"और वह खोज ही तो चिरजीवी है, पा जाना नही। पाने मात्र से ही तो खोज समाप्त हो जायेगी रवि भाई।" इस बार गिरीश बोल रहा था।

"यही तो कह रहा हूँ गिरीश दादा। स्वर साधना और स्वर की सरसता से मेरा विशेष परिचय नहीं है; किन्तु विश्व मे न पहचाना जाना और फिर उस न समझे जाने की असीम वेदना को लिये दिये किसी पहचानने वाले की खोज मे निकलना, निराश होना और निराशा की वेदना को हृदय मे ही धर कर उसे भारी करते जाना मेरा अपरिचित नही है। यही सब तो विश्व का यथार्थ व्यवहार है। इसी व्यापार को ले कर तो कवि-हृदय रो उठा है यह कह कर 'कौन जाने प्यार मेरा'।"

"बड़ी सुन्दर व्याख्या कर डाली रवि भाई।" हरीश कह रहा था।

"अरे यह तो पूरा फिलॉसफर है।" महेश ने कहा।

"और भी ··खुद ही न जानने में छिपा हुआ भोलापन कवि के निश्छल हृदय को कितना स्पष्ट कर देता है", रविदत्त कहता गया "विश्व की निर्मम गति को न पहचान सकना ही कवि के निष्कपट होने का प्रमाण है ?" हरीश कुछ कहना चाहता था पर शालिनी उठ खड़ी हुई—"क्षमा करना, अब मुझे ज़रा अपना ऐड्रेस पढ़ने उधर मंच की ओर जाना पड़ेगा ?" चाय समाप्त ही हो गई थी। गपशप भी काफी देर हो चुकी थी। अब बिदाई के भाषणों की बारी थी। इस वर्ष जो छात्र अन्तिम परीक्षा दे चुके थे उनकी ओर से मिस शालिनी कुमार को भाषण देना था। अतः वह चली गई। शालिनी के जाने के बाद सभा फिर नहीं जम सकी। घर लौटते समय हरीश ने गिरीश से मज़ाक के से लहजे में पूछा—"गिरीश दादा, तुम तो साधु सन्त हो, पर भई मैं तो मानव ही हूँ। ज़रा अपने विचारों से तुम्हारे विचारों का मिलान तो कर देखूँ। भला बताओ तो सही आज दिन की गायिका इस शालिनी में और उस दिन की कवयित्री उस लड़की में कितना सा अन्तर है ?"

"वह लड़की ही आज दिन की गायिका द्वारा गाई हुई कविता की निर्मात्री है, जानते हो हरीश ?"

"ओह, तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ ?"

"कान मूँदे न होते तो तुम भी सुन लेते। अस्तु··"

हरीश समझ गया कि गिरीश उससे कुछ छुपा रहा है, कुछ

दबा सा रहा है ? हरीश और गिरीश छः वर्ष की आयु से साथ ही साथ खेले, पढ़े और बड़े हुए थे। दोनों में गहरा स्नेह भी था। हरीश को कुछ भला न लगा, फिर भी वह यह जानता था कि गिरीश का हृदय बहुत ही गहरा और मन बड़ा ही कोमल है। हरीश ने विषय बदल दिया। गिरीश भी इस परिवर्तन से बहुत कुछ मुक्त सा अनुभव करने लगा। उस रात बिस्तर मे लेटते ही हरीश के मस्तिष्क मे बिजली की तरह गिरीश का मौन, "कौन जाने प्यार मेरा" और एक भोली सी सुन्दरी का कविता-पाठ घूम गया। हरीश को जान पड़ा कि रहस्य स्पष्ट हो गया है, गुत्थी सुलझ गई है। पर उसी रात मिस शालिनी कुमार ने अपनी डायरी में लिखा—"गिरीश मेरा कोई भी नहीं है फिर भी मैं उसे समझना चाहती हूँ और ज्यों-ज्यों मै उसे समझना चाहती हूँ त्यों-त्यों वह और भी अधिक उलझी हुई सी पहेली बनता जाता है। क्यों ? और मै उसे समझना ही चाहती हूँ क्यो ? क्यों ?? आज वह मेरे गीत से इतना अधिक प्रभावित हो उठा सो क्यों ? क्यो ?? क्यो ??? रमा से गिरीश की सगाई बहुत दिनो से प्रायः पक्की सी ही थी। डाक्टर बनते ही गिरीश ने वह सगाई तोड़ दी क्यों ???? पर मुझे क्या ? मुझे गिरीश से क्या ? क्यो मुझे गिरीश से कुछ क्यों नहीं ? वह मेरे साथ चार वर्ष पढ़ा है, मेरा सहपाठी रहा है, भले ही एक वर्ष आगे हो। पर क्या यही कारण है जो मुझे इन क्यों ? के पीछे दौड़ाता है, क्यों ????? शायद नहीं, पर गिरीश मेरा कौन है ? गिरीश अच्छा है, बहुत अच्छा है।

उसी रात महेश के मस्तिष्क में एक सलोना चंचल मुख बार-

बार घूम उठता था। महेश भी उसे अधिकाधिक स्पष्ट करके कल्पना मे देखना पढ़ना चाहता था, मिटा-मिटा कर वही रेखा-चित्र कल्पना नेत्रों में देखना चाहता था। उसे ही सुख स्वप्न का आधार बनाना चाहता था। सम्भवतः उस सन्ध्या की घटना के प्रभाव से दो ही व्यक्ति अछूते रहे—एक तो गिरीश और दूसरा रविदत्त।

ओफ !

"डाक्टर साहब, इसे बचा दीजिये, जीवनभर आपकी गुलाम बनी रहूँगी।"

डाक्टर के माथे पर पसीने की असंख्य बूँदे थीं। चेहरा लाल सुर्ख हो रहा था। आँखों में भी थकान थी, फिर भी उसने शान्ति पूर्वक कहा—"इसे अन्दर ले आओ, अभी देखता हूँ।" कह कर डाक्टर साहब कमरे के भीतर चले गये। पीछे-पीछे वह स्त्री भी ज्यों-त्यों अपने बच्चे को जो कि शायद आठ या दस वर्ष का रहा होगा, बड़ी कठिनाई से गोदी में लिये कमरे के अन्दर चली गई। डाक्टर ने बालक की शरीर-परीक्षा की। लगभग आधे घंटे के पश्चात् डाक्टर साहब परीक्षा-भवन से बाहर निकले। स्त्री कुम्हलाये हुए मुख से डाक्टर की प्रतीक्षा कर रही थी। रोगियों का ताँता लगा हुआ था। डाक्टर साहब ने स्त्री से आ कर कहा—"बहन, इसे भुवाली ले जाना होगा।" स्त्री ने आँखे फाड़-फाड़ कर डाक्टर की ओर देखा। किन्तु डाक्टर तुरन्त उस कमरे के भीतर चले गये जो कि उनका परीक्षा-भवन था। स्त्री पहले कमरे में बैठे हुए भुवाली शब्द की मन ही मन उधेड़बुन करती रही। रोगी बालक पास ही लड़की के बेंच पर लेटा था। पौने दो बज गये। रोगी भी सब चले गये। डाक्टर साहब भी अपने सहकारी सहित बाहर निकले।

"बहन, तुम घर नहीं गईं।"

"आपही ने तो कहा था भुवाली ले जाना होगा।"

"सो क्या भुवाली यहाँ रक्खा है। अरे भाई वहाँ तो जाने मे भी दो दिन लगेंगे।"

"भुवाली एक पहाड़ है, वहाँ पर इस रोग का इलाज होता है, वहीं इस बालक को ले जाना होगा।" डाक्टर साहब के सहकारी ने समझाया।

"ओह!" स्त्री कुछ और न कह सकी। डाक्टर साहब भी स्त्री की फीकी दृष्टि देख कर कुछ ठिठक गये। पैर न बढ़ा सके।

"चिंता न करो, तुम्हारा बच्चा अच्छा हो जायगा। कुछ खर्च की ही तो बात है, कोई सौ रुपया मासिक लगेगा। दो साल मे बच्चा ठीक हो जायेगा।" सहकारी ने इस बार फिर कहा।

"और कोई उपाय नही है?"

"सम्भवतः नहीं।" कहते-कहते डाक्टर साहब का कण्ठ-स्वर काँप उठा।

"कल फिर आना। डाक्टर साहब बड़े डाक्टर के नाम हस्पताल चिट्ठी लिख देंगे, वहाँ जा कर दिखा लेना; फिर वह भुवाली के लिए सिफारिश कर देंगे।"

"डाक्टर साहब!" स्त्री का कण्ठ रुँध-सा गया—आँखें भीगी थीं, जिन्हे वह बार-बार अपनी अधमैली धोती के सिरे से पोंछ लेती थी।

"डाक्टर साहब, भुवाली हमारा जाना न हो सकेगा।"

"क्या काम करती हो तुम बहन।"

"वैधव्य के भार को ले कर नन्हे-नन्हें बच्चों को पढ़ाती हूँ। तीस रुपया मासिक मिलता है। अब एक-दो महीने से चार

रुपया मँहगाई भत्ता भी मिलने लगा है। किसी तरह माँ-बेटे गुजर करते थे कि इसे बुखार आने लगा।"

"कल आप ग्यारह बजे के लगभग आये तो इसका कुछ प्रबन्ध किया जायेगा।" डाक्टर साहब दूसरे ही क्षण कार मे थे। उनका सहकारी लौट आया। महिला उस समय भी बीमार बच्चे को लिये चुपचाप बैठी थी।

"कब तक बैठी रहोगी ? घर नही जाना है क्या ?"

"घर तो मेरे साथ ही है डाक्टर साहब !" डाक्टर रविदत्त को पहली ही बार जान पड़ा कि वह स्त्री सुसंस्कृत है, सभ्य है, और है शिक्षित भी।

डा० रविदत्त स्वयं दरिद्रता के भयंकर थपेड़ो में से निकल कर आज एक सौ अस्सी रुपये कमाने लगा था। इस एक सौ अस्सी रुपये की पूँजी मे भी उसके कई साझीदार थे। सरकारी रुपये पर दृष्टि डालने के अपराध में मामा की नौकरी छूट गई थी। उनकी अपने भानजे को अपने आफिसर की कुर्सी पर बैठा हुआ देखने की अभिलाषा भी सो गई थी। हरिश्चन्द्र तो नालायक था ही। घर और पूरी लम्बी चौड़ी गृहस्थी का भार मामा सुयोग्य भानजे पर छोड़ कर निश्चिन्त मन से राम-भजन करने लगे। भानजा डा० रविदत्त भी प्रतिदिन धार्मिक पाठ की तरह यह समझ चुकने पर कि वह केवल अपना ऋण ही चुका रहा है मामा पर कुछ अहसान नही कर रहा, चार रोटी किसी प्रकार गले से उतार कर मामी के दो-चार ताने सुन कर हस्पताल चला आता था। दिनोंदिन डा० रविदत्त दुःख, क्लेश, काया-कष्ट और घर के ताने सुन-सुन कर कठोर, शुष्क और कठिन होते

जा रहे थे। नारी के नाते उनका परिचय अपनी मामी से ही था? डाक्टर ने कुछ कठोर स्वर में कहा—"सो सब कविता की सी बातें यहाँ न चल सकेंगी। घर जाओ। यहाँ अभी चपरासी आ कर कमरा बन्द करेगा।"

"तब सड़क पर जा कर बैठ जाऊँगी।" इस बार भी स्त्री के स्वर में उदासीनता ही अधिक थी। डा० रविदत्त एक क्षण के लिए चुप हो गये। स्त्री के मुख की ओर देखा। अवस्था अधिक न थी। रूप भी कुछ न कुछ अच्छे दिनों में रहा ही होगा। मुख पर फैली हुई उदासी घनी हो रही थी। इस बार कण्ठस्वर कुछ नरम कर के डा० रविदत्त ने कहा—"यहाँ आप नहीं ठहर सकतीं, ऐसा नियम नहीं है। आपको जाना ही होगा। कल आने पर ही कुछ प्रबन्ध हो सकेगा।"

"कल क्या आयेगा डाक्टर साहब! स्कूल के बोर्डिङ्ग हाउस में रहती हूँ; सो मुख्याध्यापिका की ओर से उत्तर मिल गया है, अतः बीमार बालक को ले कर वहाँ न रह सकूँगी। सरकारी हस्पतालों में कोई लेता नहीं। यहाँ आप कहते हैं कि नियम ही नहीं है। अब बीमार बच्चे को ले कर कहाँ जाऊँ डाक्टर साहब?" सचमुच ही स्त्री ने प्रश्न भरी आँखें रविदत्त के मुख पर गड़ा दीं। डा० दत्त की इच्छा हुई कि कह दे—"जहन्नुम का मार्ग आज भी दरिद्रों के लिए सर्वथा सुरक्षित है", किन्तु कह न सका। कुछ उत्तर देने की इच्छा भी नहीं हो रही थी। समस्या का कोई हल भी नहीं था। कुछेक क्षण सिर झुकाये खड़े रहने के पश्चात् डा० दत्त अपनी साइकिल उठा कर हस्पताल से बाहर हो गये। स्त्री की आँखें भर आईं। बालक ने कष्ट से कराहना आरम्भ कर

दिया। कराहने का शब्द सुन कर माँ की चेतना मानो लौट आई।

"बेटा।"

"माँ, घर चलो भूख लगी है।" माँ ने हाथ रख कर देखा, देह गरम थी, आँखे चढ़ी थी, लकड़ी सा शरीर कुछ-कुछ काँप रहा था।

"चलो, आज फिर उनके हाथ पैर जोड़ूँ, शायद एक आध दिन की मोहलत और मिल जाये।" स्वयं ही अपने आपसे कहते-कहते स्त्री की आँखों के सामने वह दिन भूल गया जिस दिन वह नव वधू बन कर एक आलीशान कोठी के भीतर गई थी और फिर वह दिन जब कि पुत्रोत्पत्ति पर पुत्र के पिता ने पुत्र की आया के लिए कोठी के दक्षिण भाग मे एक सुन्दर-सा कमरा छोटे-से गुसलखाने सहित बनवाया था, और फिर वह दिन जब कि उसी पिता के अनाथ पुत्र को विधवा माँ की झोली मे डाल कर उसे उसके पिता की कोठी से निकाल दिया गया था, केवल इसलिए कि कानून की दृष्टि से वह कोठी न जाने किस अनजाने क्षण में उसके किसी एक रिश्ते के जेठ ने खरीद ली थी। जो हो विधवा के पास सिवाय आभूषणो के और कुछ भी सम्बल न था, न तो धन का ही और न मानव शक्ति का ही। सद्गृहस्थ की वधू अदालत का न तो मार्ग ही जानती थी और न उतनी आर्थिक शक्ति ही थी। दो-तीन वर्ष तक हिन्दू विधवा की क्षण भर मे अचानक परिवर्तित होने वाली परिस्थितियो का अनुभव कर चुकने के पश्चात् उसने पर्दे का बन्धन तोड़ ही दिया। आज वह समाज मे बहुत ऊँची दृष्टि से न देखी जाने वाली मास्टरनी है। उसी मास्टरनी का एकमात्र पुत्र रोगी है। रोगी के लिए न

रहने का स्थान है और न पथ्य पाने के लिए धन। यहाँ तक कि सर्दी-गर्मी से बच सकने के लिए काफी कपड़े भी नहीं। बच्चा इलाज के अभाव में मरता है तो मर जाये, उससे सिवाय उसकी माता के और किसी को हानि भी क्या होगी और उसकी माता, एक अनाथिनी विधवा, तो कोई ऐसा व्यक्ति है नहीं जिसकी हानि पर कोई आँख दे सके···यही तो···

विधवा भले ही कुछ सोचती रही हो; किन्तु डा० रविदत्त उस दिन घर जा कर भी मामी के ताने तो पी गये पर किसी प्रकार भी दो चार सूखी ठंडी रोटियाँ गले से नीचे न उतार पाये। बार-बार विधवा का, उसके रोगी पुत्र का और उनके दुर्भाग्य का भयंकर-सा चित्र डा० रविदत्त के नेत्रों के सम्मुख आ कर उसे पीड़ित करने लगा। कल्पना में उसने वर्षों पूर्व अपनी माता, विधवा माता, को अपने एक मात्र पुत्र का सहारा लिये जीवन नौका खेते दर-दर भटकते और रोते पाया। अभागिनी माँ···डा० रविदत्त मामी के साथ अपनी माँ को कल्पना में खड़ा करके देखने लगा। डा० दत्त को जान पड़ा कि इसके जीवन में एक अभाव है, बड़ा भारी अभाव है, जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। कभी भी नहीं होगी, किसी प्रकार भी नहीं होगी। हो सकेगी ही नहीं।

उसी समय नन्दिनी अपने शीतल कमरे में बैठी हुई उस विधवा स्कूल मास्टरनी की अवस्था का ध्यान कर रही थी जिसे उसने आज ही दो रुपये दे कर डा० गिरीश के पास अपने बच्चे को दिखाने के लिए भेजा था। उसे मुख्याध्यापिका ने तो कमरा खाली कर देने का नोटिस दे ही दिया है; उसका क्या

होगा···कहाँ रहेगी ? यही आज नन्दिनी की एक मात्र चिन्ता का विषय था···डा० गिरीश तो बड़े दयावान हैं। वही कुछ प्रबन्ध न कर देंगे क्या ?

विचारी विधवा उसी समय कड़कड़ाती धूप मे रोगी बालक को किसी प्रकार घसीटती जा रही थी। उसके पास दो रुपये थे, मास का अन्त जो था। यह दो रुपये भी बी० ए० की एक छात्रा ने उसे स्नेह से दिये थे। इनसे रोगी के लिए दूध और फल जो तीन दिन तक लेने थे। वेतन मिलने में तो अभी तीन दिन की देर है ना !

———

रूप

"परिवर्तन ही सम्भवतः जीवन का दूसरा नाम है किन्तु परिवर्तन का अर्थ सदा सर्वदा न तो आनन्द है और न शान्ति ही ··फिर भी जीवित रहना है तो परिवर्तन को हँसते-हँसते ही तो लेना होगा।" डायरी में लिख कर नन्दिनी ने सिर उठाया। सामने ही खड़ी थी उसकी बडी ननद सुचित्रा।

"यह क्या भाभी, तुम्हें तो लिखने-पढ़ने से कभी अवकाश ही नहीं मिलता है।"

"कहाँ बहन जी ? इस समय कोई था नहीं तो जरा ··"

"अच्छा-अच्छा रहने दो। अब उठो, तुम्हारे बाल तनिक ठीक कर दूँ, महेश आता ही होगा।" सुचित्रा को बहुत दिनों से चाव था कि उसकी भाभी, सुन्दर सी भाभी, आये और वह उसका विविध प्रकार से शृंगार करे। सुचित्रा शृंगार करने में चतुर भी बहुत थी। नन्दिनी पर उसका विशेष प्रेम था। वह स्वयं उसे देख पसन्द करके इस घर में लाई थी। नन्दिनी भी सुचित्रा को बहुत मानती थी। कहीं तनिक सा भी आज्ञा-उल्लंघन करने का अवसर नहीं आता था, यहाँ तक कि कभी-कभी सुचित्रा उसके शान्त और सरल स्वभाव से ऊब भी उठती थी। उस दिन सुचित्रा ने नन्दिनी का बहुत ही परिश्रम से शृंगार किया। संध्या समय सुचित्रा भाई और भाभी के साथ कार मे सैर करने गई तो, किन्तु मार्ग में ही आवश्यक काम का बहाना

करके अपने घर चली गई। 'महेश नन्दिनी को ले कर चादनी रात में फिसलती हुई कार मे बैठे हुए आगे बढ़ने लगा।

"नन्दिनी जीवन कितना सुन्दर है ?"

"हाँ और सौन्दर्य की व्याख्या कैसी अपरिमित है।"

महेश ज़ोर से हँस पड़ा।

"कवयित्री जी, साधारण बात-चीत में भी कविता ही होती रहती है क्या ?"

नन्दिनी झेंप गई, फिर मुसकरा कर बोली—

"आप तो बनाते हैं, मै क्या कविता कर पाती हूँ ?"

"नन्दिनी, मैं यदि कवि होता तो इस चाँदनी रात में तुम्हे सम्मुख बिठा कर रात भर कविता करता रहता। तुमसे ही तो मुझे भी उत्तेजना मिलती है एक बारगी कवि बन जाने की, और तुम कहती हो कि तुम कविता नहीं कर पाती हो।"

"आप बाते बनाना बहुत जानते है।" नन्दिनी की कभी किसी ने इस प्रकार प्रशंसा नहीं की थी। माँ ने स्नेह किया था, मौसी को उस पर गर्व था; किन्तु नन्दिनी को स्वयं ही अपने रूप और गुण का यथार्थ ज्ञान न था। नारी के लिए, जीवन के प्रथम चरण मे पग धरती हुई नालिका के लिए, रूप की प्रशंसा बड़ी ही प्रलोभनीय वस्तु होती है। महेश ने इस बार एक क्षण को नन्दिनी की ओर देख कर कार रोक दी। सम्मुख गुलाब के फूलो से भरा हुआ उपवन था। दोनो कार से उतर कर क्यारियो की ओर चले। उस समय एक-दो और भी जोड़े बगीचे में इधर-उधर घूम रहे थे। महेश ने फिर नन्दिनी की ओर देखा। नन्दिनी आज गहरे नीले रंग की मद्रासी ज़री पाड़ की चौड़े पल्लेदार

साड़ी पहने हुए थी। माथे पर बड़े यत्न से सुचित्रा ने कई रंगों का सम्मिश्रण करके अम्बिका के आकार की बिन्दी बनाई थी। नन्दिनी साक्षात् रति जान पड़ती थी।

"जान नहीं पाता नन्दिनी, कि विधाता ने तुम्हे बनाने में सारी कारीगरी खर्च कर ही दी अथवा कुछ रख भी ली।"

नन्दिनी समझ कर भी समझना नहीं चाहती थी। उसने अल्हड़पन से पूछा—"क्यों?"

महेश ने उत्तर न दे कर कहा—"कितनी सुन्दर हो तुम!"

"आपकी दासी हूँ।"

"हृदय-मन्दिर की रानी हो और रहोगी नन्दिनी।"

क्षण भर के लिए नन्दिनी के प्राणों में डायरी में आज ही लिखी हुई पंक्ति जाग उठी "परिवर्तन ही सम्भवतः जीवन का दूसरा नाम है···" उसने पूछा—"यह कृपा क्या सदा ही बनी रहेगी?"

"तुम्हे सन्देह क्यो होता है नन्दिनी?"

"सन्देह नहीं होता। तुम पर सन्देह करूँगी क्या देवता? अपने इतने अधिक सौभाग्य-भरे क्षण कंजूस के धन की नाईं छिपा रखना चाहती हूँ।"

"नन्दिनी, सोचा था विवाह से पूर्व कि हिन्दुओ के दकिया-नूसी नियमों के अनुसार किये हुए विवाह की पत्नी को प्रेम कैसे करूँगा? पर जान पड़ता है तुमसे अधिक प्रेम करने योग्य विश्व में कुछ है ही नहीं।" न जाने क्यों महेश के मन मे उसी समय हस्पताल की युवती नर्स क्लैरा की याद हो आई, रोगिणी कुमारी हरिप्रिया का भोला मुख भी उसके मन मे चमक उठा,

पर दूसरे ही क्षण उसने नन्दिनी ''साक्षात् पास खड़ी हुई नन्दिनी की ओर देख कर पहले दो मुख पीछे धकेल दिये। नन्दिनी ने मन ही मन कहा—"नारायण, रूप, यौवन और सौन्दर्य के नष्ट हो जाने पर भी इन्हीं देवता के चरणों में इनके प्रेम-भरे हृदय को लिये दिये प्राण दे दूँ, इससे अधिक सौभाग्य और नहीं चाहती हूँ।"

"यह रूप तो सदा रहेगा नहीं।"

"दार्शनिकता की बातें न करो नन्दिनी।" महेश ने नन्दिनी का हाथ पकड़ कर अपने पास एक बेंच पर बिठा लिया। सामने गुलाब के अनेकों फूल मुसकरा रहे थे। श्वेत चाँदनी में धुले हुए उनके लाल-लाल ओंठ और भी भले प्रतीत होते थे।

"आज का दिन, यह खिली चाँदनी रात, हमारा तुम्हारा जीवन भर का साथ, यह क्या कुछ दार्शनिकता की बातों में गूँथ डालने के लिए हैं। आज यौवन है यही याद रखो, कल जो होगा वह आज नहीं मेरी नन्दिनी, आज केवल आज ही की बात।" नन्दिनी ने मन ही मन काँप कर कहा—"काश कि यह 'आज' सदा सर्वदा रह सकता!"

ग्यारह बजे के लगभग जब पति-पत्नी घर पहुँचे तो महेश की माता प्रतीक्षा ही कर रही थी।

"क्यों, क्या सिनेमा चले गये थे?"

"नहीं, यों ही घूमते-फिरते ज़रा देर हो गई।" नन्दिनी तो शर्म से गड़-सी गई, पर महेश ने उत्तर दे ही दिया। सास ने नन्दिनी से कुछ भी नहीं कहा। सास का नन्दिनी पर विशेष प्रेम था। रूप यौवन और सौन्दर्य के अतिरिक्त नन्दिनी बीस-पचीस

हजार रुपये के आभूषण भी तो उस घर में लाई थी। उस रात सम्भवतः महेश और नन्दिनी सो तो न सके, किन्तु दूसरे दिन सुबह नन्दिनी प्रसन्न थी बहुत अधिक प्रसन्न थी। रह-रह कर गुसलखाने मे गुन-गुना उठती थी—"मैं हो गई किसी की कोई मेरा हो गया।" किन्तु गीत की लय में कहीं खिंचाव सा आन पड़ता था। उसे जान पड़ता था कि कोई एक गम्भीर मुख कहीं हृदय के किसी कोने में मन की किसी अनजानी स्मृति मे लिपटा-लिपटाया चमक-सा उठता है। पर नन्दिनी हिन्दू नारी थी···वह गीत का स्वर और भी ऊँचा कर के उस अनजाने मुख की चमक को दबा डालती थी, और वह छिप जाता था नन्दिनी के कण्ठ स्वर में, उसके मन में उसकी जाग्रति के स्वप्न मे रह जाता था केवल मात्र "मै हो गई किसी की कोई मेरा हो गया···कोई मेरा हो गया।" सम्भवतः 'कोई मेरा हो गया' ही उसका सबसे बड़ा आश्वासन था, जिस पर वह सब कुछ न्योछावर करने को तैयार हो जाती थी। फिर भी रह-रह कर उसके मन की भीतरी तह में कसक उठते थे उसकी अपनी ही डायरी के पन्नो मे बिखरे हुए शब्द "परिवर्तन ही सम्भवतः जीवन का दूसरा नाम है, किन्तु परिवर्तन का अर्थ सदा सर्वदा न तो आनन्द ही है और न शान्ति ही··"रात्रि में उसने उस वाक्य की स्मृति मन से सर्वथा मिटा पाने के लिए अपनी डायरी का वह पृष्ठ जिस पर प्रातः वह वाक्य लिखा गया था फाड़ डाला कुचल दिया और फिर खिड़की की राह बाग में उसके नन्हे नन्हे टुकड़े बिखेर दिये। वह निश्चिन्त हो गई। उसने बरबस विश्वास करना चाहा कि जो आज है वह अमर है, उसके जीवन का वह अध्याय चिरन्तन और

स्थायी हो कर उसके जीवन को आनन्द रस से भरा-पूरा रक्खेगा। उसी समय विधना किसी अज्ञात कोने में बैठा-बैठा मुसकरा उठा।

सम्भवतः उसी समय गिरीश भी एक कोठी के एकान्त कोने मे बैठे सोच रहे थे "मेरा जो और जैसा जीवन आज है वह वैसा ही रहेगा, सदा सर्वदा रहेगा।"

कौन कह सकता है कि क्या रहेगा और क्या न रहेगा ? किन्तु इसी रहने और न रहने के प्रश्न को ले कर मानव मन किस प्रकार क्षण-क्षण व्याकुल हो उठता है यही समझ नहीं पड़ता···समझा जा सकता भी नहीं है ?

पुनर्मिलन

"कई दिन से आपको खोज रही थी डा० गिरीश, आखिर आज पकड़ ही लिया न ?

"खोज रही थीं ? इन्हे ?? डा० शालिनी कुमार ???" बड़े आश्चर्य से उत्तर दिया हरीश ने। शालिनी सिर से पैर तक जल उठी। "जी हाँ, इन्हे ही, आपको नहीं।" शालिनी ने बड़े ही कठोर स्वर में उत्तर दिया।

गिरीश स्वभाव से ही शान्त-प्रकृति था और हरीश चुल-बुला। तिस पर आज तो गिरीश एक बड़ा भारी असफल आप-रेशन करके आया था। उसका मन भारी था। बड़ा परिश्रम करके भी वह उस रोगी को बचा न सका। रोगी की मृत्यु आप-रेशन की मेज पर ही हो गई। उसकी सद्यः विधवा की चीख पुकार गिरीश के अन्तर को खसोटने लगी। सहकारी डा० रविदत्त ने समझाया—"डा० गिरीश, आपके चिंतित होने की क्या बात है, वह रोगी तो किसी तरह भी बच नहीं सकता था। आपने तो उसके घरवालों की तसल्ली के लिए जो कुछ किया जा सकता था, कर ही दिया।" गिरीश ने दबे स्वर मे इतना ही कहा—"पर उस नारी के माथे की लाली न बचा सका रवि।" किन्तु इसी बात पर डाक्टर को इतना कातर होना चाहिए, यह रविदत्त, डा० रविदत्त की समझ से परे था। न जाने क्यों इधर कुछ दिनों से डा० गिरीश सधवाओ के सौभाग्य की रक्षा जी जान से किया करता था। नगर मे धाक थी। प्रान्त भर से रोगी

डा० गिरीश तक पहुँचने का सतत प्रयत्न किया करते थे। आज उसकी प्रवृत्ति झगड़ने की न थी। वह बहुत ही दुखी था। उसने साधारण से स्वर में कहा—

"बात यह है शालिनी जी कि हरीश मुझे इतना अकर्मण्य समझता है कि किसी को कभी मेरी भी आवश्यकता हो सकती है, इसका इसे विश्वास ही नहीं होता ?"

हरीश खिलखिला कर हँस पड़ा। शालिनी कुछ अप्रतिभ सी हो गई। फिर भी उसने नतमस्तक रह कर ही कहा—"किन्तु जिन कुछेक व्यक्तियों को आपकी आवश्यकता हो सकती है उन्हीं में मेरा नाम भी लिख लें।"

"किन्तु आज्ञा क्या है ?"

"विशेष कुछ नहीं, यों ही देखने को जी चाहता था। देश भर में डा० गिरीश की प्रशंसा हो रही है। चाहती थी इस विख्यात डाक्टर को, अपने मित्र को देख लूँ, उससे मिल लूँ। क्या यह अनुचित है ?"

"नहीं-नहीं, अनुचित क्यों होगा। तुम जैसे मित्रों की शुभ-कामनाएँ मेरे लिए एकमात्र पूँजी हैं।"

डा० शालिनी प्रसन्न हो उठी। उसने बेयरर को बुला कर तीन कप आइसक्रीम और कुछ पेय लाने को कहा। थोड़ी देर में सामान उपस्थित हो गया। शालिनी सोडे मे बियर डालने लगी तो गिरीश ने टोक दिया।

"भूल गई डा० कुमार, मैं बियर नहीं पीता। हरीश भी नहीं पियेगा।"

"अरे अभी तक तुम साधु ही हो गिरीश। सचमुच मैं बहुत

सी बातें भूल गई हूँ। आज मिले भी तो हम लोग तीन वर्ष बाद हैं।"

"और इसी बीच में आप इंग्लैंड और वियाना की दो चार परीक्षाएँ पास कर के विख्यात डाक्टर मित्र के विषय की बातें मस्तिष्क मे रखने मे असमर्थ हो गई।"

हरीश की चोट कठोर थी, पर शालिनी इस बार पी गई। केवल हँस भर दी।

"मैं तो पियूँगी, मुझे क्षमा करना हरीश, तुम्हारे लिए काफी आर्डर कर दूँ?"

"नहीं, सोडे से ही काम चल जायेगा।"

कुछ सोच कर शालिनी ने कहा, गिरीश की दृष्टि पर दृष्टि जमाते हुए, "यदि तुम कहो तो न पियूँ · आज ही क्यों, सदा के लिए छोड़ दूँ।"

गिरीश अन्यमनस्क था। उसने वैसे ही उत्तर दिया—"मुझे आपके पीने मे कोई आपत्ति नहीं है शालिनी जी।"

"और शायद मुझे हो।" हरीश ने जान बूझ कर छेड़ा।

"अवश्य होगी।" कह कर शालिनी ने गिलास हाथ मे ले लिया और पीना आरम्भ कर दिया।

"इसके बिना तुम दिन मे अस्सी नब्बे तक आपरेशन कैसे कर लेते हो गिरीश, यही मैं सोच पाती नहीं हूँ।"

"पी कर तो शायद जमीन पर ही लोटने लगूँगा, फिर भला आपरेशन कैसे कर सकूँगा?"

"यह बात तो नहीं है, मै तो जब तक दो-चार पेग न चढ़ा लूँ थकान ही नहीं उतरती। खैर तुम तो साधु-सन्त ठहरे।

आश्चर्य तो यह है कि मेजर हरीश भी इससे परहेज़ करते हैं।"

हाल ही मे वियाना से लौटी हुई शालिनी का स्वास्थ्य पहले से अधिक सुन्दर हो उठा था। वेश-भूषा पहले भी सुरुचिपूर्ण थी, अब तो और भी अधिक सुन्दर हो उठी थी। मेकअप मे भी कुछ अधिकता ही थी। यद्यपि इस बार वह अधिक दत्त हाथो से किया गया था। डा० शालिनी अपने साथ एक विदेशी नर्स अपनी सहायिका का कार्य करने के लिए लाई थी। यह नर्स मेकअप के काम मे दक्ष थी और यह डा० शालिनी के लिए तो एक वरदान सा ही था। गिरीश की दृष्टि उस ओर न थी, किन्तु मेजर हरीश ने भली प्रकार देखा। उससे न रहा गया। कह ही तो दिया—"डा० शालिनी वियाना ने आपको अत्यधिक सुन्दर बना दिया।" इस बार फिर ऊपरी हँसी हँस दी शालिनी—"और वह सौन्दर्य पड़ा भी तो केवल आपकी ही दृष्टि मे।"

"मै जौहरी हूँ डाक्टर साहिबा।"

"किन्तु मैं तो जौहर हूँ नहीं।"

"जौहर स्वयं तो अपने आपको पहचान पाता है नहीं।"

शालिनी जानती थी कि हरीश उसे बना रहा है, किन्तु वह भी हारने वाली नहीं थी, हँस कर बोली—

"कई बार जौहरी भी पहचानने मे भूल कर जाते हैं हरीश।"

गिरीश प्रायः चुप ही थे। इसी समय मेजर हरीश उठ खड़े हुए। "अच्छा अब चलता हूँ गिरीश दादा, कल सुबह मिलूँगा नमस्ते डा० कुमार।"

"मैं भी चलता हूँ हरीश।"

"नहीं, आप आज बहुत दुःखी से हैं; कुछ देर क्लब में ही

रहिये। डा० शालिनी, गिरीश भाई से आज एक आध सेट खेल लो न-टैनिस का। मुझे एक सरकारी सभा में जाना है, नही तो मै भी रहता।"

"नमस्ते" कहा शालिनी ने। हरीश चला गया। डा० शालिनी ने शान्ति की साँस ली।

"आज आपको जल्दी छुट्टी नही दूँगी। कौन कोई एक घर पर प्रतीक्षा करती होगी!"

"सो बात नही शालिनी जी। माँ से कह कर नही आया था। कोई रोगी बैठा प्रतीक्षा ही न करता रहे।"

"मै अभी टेलीफोन कर देती हूँ। रोगी तो प्रतिदिन मिलेगे आज आपको उनके पास नही जाने दूँगी।" शालिनी ने कुछ ऐसे अधिकारपूर्ण स्वर मे कहा कि गिरीश कुछ कह न सका। गिलहरी की तरह छलाँग मारती शालिनी टेलीफोन-रूम मे चली गई। गिरीश सोचने लगा—"कैसी थी नन्दिनी, कैसी है यह शालिनी ' कैसी होती है विश्व ब्रह्माण्ड की नारियाँ '' वह नन्दिनी ''यह शालिनी'''" एक क्षण को गिरीश को जान पड़ा कि नन्दिनी सम्मुख खड़ी हो कर कह रही है "देखो गिरीश, हम तो छलना हैं, कभी किसी की पकड़ मे नही आती, किन्तु सब ही को छलती रहती हैं।" शालिनी लौट आई। आज वह अत्यधिक प्रसन्न जान पड़ती थी। कुर्सी पर बैठ कर वह मेज़ पर कोहनियाँ टेक कर कुछ गिरीश की ओर झुक गई; फिर बहुत ही संयत स्वर मे उसने पूछा—"गिरीश, मै सोचती थी कि तुम विवाह कर चुके होगे। घर लौटने पर गिरीश और मिसेज़ गिरीश को साथ ही देखूँगी। पर तुमने विवाह क्यो नही किया?

गिरीश हलकी सी हँसी हँस उठा। उस हँसी में आनन्द से दर्द ही अधिक था। शालिनी ने भी उस पीड़ा को पढ़ा तो, पर समझा नहीं।

"इच्छा ही नहीं हुई शालिनी।"

"और तुम्हारी मँगेतर? उसका क्या हुआ?" शालिनी ने उत्सुकता से पूछा।

"उनका विवाह श्रीधर आई० सी० एस० से हो गया।"

शलिनी कुछ देर चुप रही। उसका जी चाहा कि कह दे, उसने बहुत बुरा किया। कहाँ तुम और कहाँ श्रीधर?" पर वह कुछेक क्षण चुप ही रही। इस बीच बेयरर आ कर स्क्वैश के दो गिलास नालियों सहित रख गया। टेलीफोन रूम से लौटते समय शालिनी आर्डर देती आई थी। शालिनी ने एक गिलास में से एक घूँट पिया और गिलास मेज़ पर रख कर मुँह पोंछ कर गिरीश की ओर देखने लगी। गिरीश शान्त था, सदैव का ही गिरीश शान्तप्रकृति था।

"हरीश का विवाह तो हमारी सहपाठिनी सुवीरा के साथ हो गया है ना?" छेड़ा शालिनी ने।

"हाँ, उसका विचार तो प्रैक्टिस करने का भी है पर हरीश आज्ञा नहीं देता। यो मुझे मेरे क्लीनिक में आ कर प्रतिदिन दो घंटे सहायता पहुँचाती है।"

"अच्छी लड़की थी सुवीरा। पढ़ाई मे भी तेज़ थी पर थी बड़ी ही चुपचाप। हरीश तो इतना चुलबुला है। कैसे निभती होगी?"

"दोनो में बड़ा घनिष्ठ स्नेह है, बड़ी अच्छी निभती है।"

बात कुछ उखड़-सी गई।

शालिनी की इच्छा हो रही थी कि आज इस एकान्त मिलन के अवसर का लाभ उठा कर गिरीश से बहुत कुछ कह डाले... सब कुछ कह डाले; किन्तु न जाने क्यों बात कुछ जम ही नहीं रही थी।

गिरीश ने अन्यमनस्क भाव से कहा—"शालिनी, कुछ दिनों से मेरी भी विदेश जाने की इच्छा हो रही है। सोचता हूँ बाहर जा कर कुछ अनुभव ही प्राप्त कर लूँ।"

"इस बार मैं तुम्हारे साथ भी चलूँगी? पापा तो कहते थे कुछ दिन और घूम फिर आ। कौन जाने फिर अवसर मिले या न मिले।"

"हूँ", कह कर गिरीश चुप हो गया। शालिनी की इच्छा चुप रहने की न थी। वह कहती गई—"तुम महेश को तो जानते हो ना गिरीश, वह कैप्टन हो गया है। अभी हाल ही मे उसे ईरान भेज दिया गया है। उसने मुझे लिखा है कि ईरान बहुत ही सुन्दर देश है। मेरी तो इच्छा इस बार ईरान जाने की हो रही है। तुम भी उधर ही चलो न।"

"हाँ, उधर भी जा सकता हूँ।"

दोनो वहीं मेज पर बैठे रहे। मेज रैस्टोरैंट के ऐसे कोने में थी जहाँ से आने जाने वाले प्रायः दीख नहीं पड़ते थे। इसी कारण किसी की दृष्टि इन पर नहीं पड़ी। ये दोनो खेल के मैदान मे भी नहीं गये। इधर कुछ संध्या की कालिमा भी भरने लगी। एकाएक गिरीश ने कहा—"अब चलो शालिनी!"

"अभी से? आपने तो मेरे साथ टैनिस खेलना स्वीकार

किया था।" कभी-कभी शालिनी आदर भाव से भर कर गिरीश को 'आप' कह दिया करती थी, अन्यथा प्रिय सम्बोधन 'तुम' तो था ही।

"ओह, भूल ही गया, पर अब रात जो होने लगी है।"

"अच्छा तो आज घर ही चलिए ?"

यौवन के प्रारम्भ मे कालिज जीवन मे एकाध बार गिरीश शालिनी के घर गया था। स्नेह के विशेष आमन्त्रण पर नही, किसी कार्यवश। कुछ दिनो बाद स्नेहामन्त्रण भी मिलने लगे, किन्तु फिर भी गिरीश का जाना न हो सका। आज इस अचानक मिले हुए निमन्त्रण की अवहेलना गिरीश न कर सका।

"जो आज्ञा, आप अपनी कार पर चलें, मै अभी पहुँच जाऊँगा।" मेज़ पर से उठते हुए गिरीश ने कहा।

"सो नहीं होगा। ड्राइवर कार लौटा ले जायेगा। मैं आपके साथ ही चलूँगी।"

और बाहर निकलते ही शालिनी अपने ड्राइवर को आदेश दे कर गिरीश की कार मे ड्राइवर के स्थान के पास वाले स्थान पर बैठ गई। इसी समय गिरीश का एक साथी डाक्टर गिरीश से कहने लगा सीढ़ियो से उतरते हुए, "सोचता था आपके साथ घर चला जाऊँगा, पर आपके साथ तो डा० कुमार जा रही हैं।"

"आप चलिए, आपको पहले उतार दूँ।" विनम्र भाव से गिरीश ने कहा।

"नहीं, नहीं, आप चिन्ता न करें। मै वर्मा के साथ चला जाऊँगा।" कह कर डाक्टर हँसता हुआ चला गया। गिरीश

थका हुआ-सा शालिनी के पास ड्राइवर के स्थान पर कार में आ बैठा।

मिस्टर और मिसेज कुमार रात्रि नृत्य में गये हुए थे। घूम फिर कर शालिनी गिरीश सहित जब आठ बजे घर पहुँची तो घर में था केवल मात्र नौकरों का साम्राज्य।

खाने के कमरे में प्रतीक्षा करते हुए स्टुअर्ट को दो रात्रि-भोजन की आज्ञा देती हुई शालिनी गिरीश को अपने कमरे में ही ले गई। बढ़िया गलीचे पर सुन्दर ढंग से लगी हुई तीन-चार कुर्सियों में से एक पर गिरीश को बिठा कर शालिनी स्वयं दूसरी पर बैठ गई।

"गिरीश, भोजन में अभी कुछ देर है, कहो तो तब तक तुम्हें प्यानो पर कुछ सुनाऊँ।"

"क्या सुनाइयेगा ?"

"जो कुछ कहो, ईस्टर्न या वेस्टर्न ?"

"कोई हिन्दी कविता सुनाइये।"

"वही सुनें", कह कर शालिनी गुनगुनाने लगी। प्यानो के स्वर बोल उठे और शालिनी के कंठ से भी स्वर फूटे। गिरीश ने सुना ···मानो दूर से बहते हुए किसी झरने की मधुर झंकार का मीठा स्वर ···गान मेरे मिट ही जायें···प्राण के स्वर सुप्त होवें··· गीत मेरे लुप्त होवें···विश्व से मैं खो ही जाऊँ···। गिरीश की इच्छा हुई कि वह भी स्वर में स्वर मिला कर बोल उठे— "विश्व से मैं लुप्त होऊँ···।" शालिनी गीत समाप्त करके गिरीश की ओर देखने लगी। गिरीश दूर दीवार पर चाँदी के सादे चौखटे में लगी हुई एक साधारण-सी तस्वीर को देख रहा था।

शालिनी चुप हो गई। कुछ देर चुप ही रही। फिर प्यानो पर से उठ कर गिरीश के पीछे जा कर खड़ी हो गई। कुछ देर तक चुपचाप चित्र को देखती रही और फिर बोल उठी—"गिरीश यह उसी मेरी सखी की तस्वीर है जो कविताएँ बनाती थी। इसी की कविताओं को मैं अब तक गाती हूँ। यह उसी की कविता थी।" गिरीश में कुछ कह सकने की क्षमता न थी किन्तु न कहना कहने से कहीं अधिक भयंकर होता; अतः बहुत प्रयत्न करके कह पाया—"आप सुन्दर गाती हैं।"

"वह गीत भी सुन्दर है गिरीश!" शालिनी गिरीश के मुख पर अंकित भावों को ले कर उसका अन्तर पढ़ डालना चाहती थी उसी क्षण। गिरीश स्वयं अपने को अपने से ही छुपा डालना चाहता था।

"इसका विवाह अपने कालिज के साथी डाक्टर, ओह, कैप्टन डा० महेश से हुआ है गिरीश!"

गिरीश काँप उठा। संयत स्वर में उसमें इतना ही कहा—

"अच्छा।"

"महेश उसके योग्य न था गिरीश। महेश पक्का स्वार्थी और रूप-लोलुप है। जानते हो न? बिचारी का भविष्य कौन जाने कैसा हो।"

गिरीश के लिए यह आघात बहुत भारी था, किन्तु मितभाषी गम्भीर गिरीश संयमी भी था। उसका अन्तर किसी अज्ञात भार से दब उठा। इसी समय नौकर ने भोजन तैयार होने की सूचना दी। गिरीश ने शान्ति की साँस ली और शालिनी ने गिरीश की ओर देख कर दृष्टि नीची कर ली। फिर कुछ सोच

कर उसने गिरीश का हाथ पकड़ कर कहा—"तुम इस लड़की को जानते हो गिरीश!"

"शायद हाँ और शायद नहीं।"

"यह क्या? तुम्हारा इसका परिचय था क्या?"

"परिचय नहीं था, किन्तु एक बार इनकी कविता एक जलसे मे सुनी थी।"

शालिनी हँस पड़ी। उसने हाथ छोड़ कर कहा—"चलो भोजन कर लें। माता जी को मैंने टेलीफोन पर कह दिया था कि तुम घर पर भोजन नहीं करोगे।"

"कितनी सतर्क है और कितनी चतुर यह शालिनी"—सोचा गिरीश ने।

घर लौटते समय गिरीश मन ही मन कह रहा था—शालिनी कितनी सभ्य है और कितनी ममतामयी। मेरी उपेक्षा का उत्तर वह सरल अपनत्व से ही देती है। कितना मीठा है उसका स्वर। किन्तु गीत के वे शब्द—विश्व मे मैं खो ही जाऊँ… नन्दिनी… नन्दिनी…। मन ही मन गिरीश ने दो-चार बार दोहराया मिसेज़ महेश…मिसेज महेश…मन पर न जाने क्यों घनी चोट सी लगी। अज्ञात पीड़ा सी हुई। कहीं कुछ छूटता सा, खिचता सा और छिनता हुआ सा जान पड़ा। रात को गिरीश ने स्वप्न मे देखा शालिनी प्यानो के पास ही रक्खे हुए स्टूल पर बैठी हुई कह रही है—"गिरीश सब भ्रम है, सब मिथ्या है, देखो मुझमें और नन्दिनी मे भेद ही क्या है।" और सचमुच चित्र की नन्दिनी उतर कर शालिनी मे समा गई। नन्दिनी और शालिनी एकाकार हो गई। शालिनी ही तो नन्दिनी है।

डा० शालिनी कुमार उस रात बहुत प्रसन्न थी। "मेरे मन में तुम वास करो ' प्रिय वास करो" गुनगुनाती जब वह सो गई तो उसने स्वप्न देखा कि गिरीश सम्मुख खड़ा कह रहा है— "शालिनी देखो, मेरी ओर देखो, मैं युगों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ 'तुम्हे ही खोज रहा हूँ।" कौन कह सकता है कि रात्रि मे देखे हुए स्वप्न मन की, अचेतन मन की, सुप्त इच्छाओं के ही प्रतीक नहीं है ? सम्भवतः स्वप्न-द्रष्टा भी नहीं जान पाता कि वह क्या है। फिर भी वह उन्हे देखता है, वह उनका जनक है, वह उनका आनन्द भी लेता है और उनसे भय भी खाता है, फिर भी वह उसके लिए कितने क्षणिक हैं और कितने पराये—यही सोचता रहा डा० गिरीश रात के बीत जाने पर दिन भर। डा० शालिनी प्रसन्न थी, न जाने क्यों।

यह क्या ?

"दूर जा रहा हूँ, बहुत दूर, शालिनी! कौन जानता है फिर कभी भेंट भी हो सकेगी या नहीं।"

"इतने अधिक निराश होते हो तो भला यह काम किया ही क्यों था महेश ?"

"तब क्या यह जानता था कि इतनी जल्दी 'फ्रंट' पर भेज दिया जाऊँगा ?"

"आखिर कैप्टन का मान और लम्बी-चौड़ी वेतन रूप में धनराशि यूँ ही तो कोई दे नहीं देता है।"

"सो ही तो।" कह कर महेश अत्यधिक उदास हो गया ? आज वह बहुत दिनों बाद क्लब आया था। शालिनी भी बहुत दिनों पश्चात् दीख पड़ी थी। महेश ने शालिनी से अपने साथ नृत्य करने की प्रार्थना की। शालिनी ने स्वीकार कर लिया। दोनों नाचे और देर तक नाचे। यहाँ तक कि शालिनी थक गई और दोनों ने एक एकान्त कोने मे बैठ कर पान आरम्भ कर दिया। शालिनी ने आज सुबह निराशा, गम्भीर निराशा, से भेंट की थी। बात यूँ थी कि शालिनी इधर कुछेक दिनों से गिरीश से खूब हिल मिल रही थी। गिरीश भी कुछ शालिनी की ओर से विशेष उदासीन सा तो जान पड़ा नहीं। शालिनी ने गिरीश के क्लीनिक को भी अवैतनिक सेवा अर्पित की। सुवीरा से अधिक परिश्रम से काम किया। गिरीश की दृष्टि में अपना मूल्य श्रीमती सुवीरा से अधिक सिद्ध कर दिया। सारा नगर आश्चर्य-चकित था, किन्तु शालिनी उस ओर ध्यान भी नहीं देती थी। वह तो

एकान्त लग्नता से रोगियों की सेवा किये जा रही थी। उसने मन प्राण से काम किया था। क्यों ? डा० गिरीश को प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए ही तो ! पर यह क्या ? आज सुबह जब कि उसने डा० गिरीश से इस रात्रि-सभा मे सम्मिलित होने की प्रार्थना की तो गिरीश ने सूखा सा उत्तर दे दिया—"डा० कुमार, जिन तिलों मे तेल हो नहीं है उन्हे व्यर्थ में पीसने से क्या होगा ?"

शालिनी, आत्माभिमानी डा० शालिनी कुमार एम० बी०, बी० एस० चुपचाप चली गई किन्तु उसका मन प्राण घोर निराशा से भर उठा। गिरीश क्या मेरा मन रखने को भी निमन्त्रण स्वीकार नहीं कर सकता था। माना उसे 'बॉल डान्स' पसन्द नहीं है, पर क्या यहाँ केवल मात्र "बॉल डान्स" ही है ? और यदि यह भी पसन्द नहीं था तो यही मुझसे कह देते, मैं उन्हें कहीं और ही ले चलती । उस व्यक्ति में तो नारी के सस्नेह निमन्त्रण की रक्षा करने की सभ्यता भी नहीं है। रूखा है, सदा का रूखा। शालिनी मन ही मन चिढ़ रही थी। इसी समय उसे दीख पड़ा कैप्टन डा० महेश। शालिनी के मन मे बदला लेने की सी भावना जाग उठी। वह भूल गई कि गिरीश न तो उसके आस-पास ही कहीं है और न उसने कभी शालिनी के किसी से मिलने-जुलने पर प्रतिबन्ध ही रक्खा है। इसी बीच महेश ने उसे नाच का निमन्त्रण दिया। शालिनी ने स्वीकार कर लिया । एक या डेढ़ घंटे तक नाचते रहने पर भी शालिनी के शरीर मे थकान तो जान पड़ने लगी पर मन शान्त नहीं हुआ। मन की ज्वाला को शान्त करने के लिए उसने पीना आरम्भ किया। उत्तरोत्तर जलन बढ़ने ही लगी । कण्ठ सूखने लगा। सम्मुख

बैठा हुआ महेश गिरीश जान पड़ने लगा और डा० शालिनी की आँखें मुँदने-सी लगी।

"देखो शालिनी, यही सम्भवतः हमारी अन्तिम भेंट है।"

"सो ही तो।" चिढ़ाने के से स्वर में शालिनी ने कहा।

"क्या आज एक बार भी तुम न कह सकोगी कि तुम मेरी हो ?" महेश ने रुक-रुक कर किन्तु स्पष्ट शब्दों में कहा।

शालिनी को जान पड़ा कि वह आकाश से गिर पड़ी है। उसने महेश को सदा ही एक खिलौना जाना था जो प्रिय है किन्तु आधिपत्य सहने के लिए ही बनाया गया है आधिपत्य जमाने के लिए नहीं। आज उसे जान पड़ा कि कहीं कोई सेंध सी रह गई है। यह सेंध उसे अच्छी नहीं लगी। फिर भी वह उसे आज अप्रसन्न करना नहीं चाहती थी। कुछेक क्षण चुप रह कर उसने कहा—

"महेश किस किस को अपना बनाओगे ? नन्दिनी क्या पसन्द नहीं आई ?"

अब महेश के चौंकने की बारी थी, पर वह सँभल गया। उसने धीरे से कहा—"नन्दिनी पति के घर सम्मान की रक्षा करने के लिए आई है। उसका कर्तव्य है खानदान के गौरव की रक्षा, महेश की प्रसन्नता नहीं।"

शालिनी खिलखिला कर हँस पड़ी। आस-पास की मेजों पर बैठे लोग इधर ही देखने लगे, पर शालिनी हँसती ही रही। महेश अप्रतिभ-सा हो गया। कुछ देर दिल खोल कर हँस चुकने पर शालिनी ने कहा—

"महेश, कुल-गौरव की रक्षा के लिए एक नारी-जीवन का

बलिदान कर डालना क्या उचित है ?"

"क्या उचित है और क्या अनुचित, मैं नहीं जानता। जानना चाहता भी नहीं। मैं तो यही एक बात जानता हूँ शालिनी, कि, मैंने सदा से एकमात्र पूजा की पात्र तुम्हे ही समझा है।"

शालिनी के मस्तिष्क में, विकृत मस्तिष्क मे, घूम उठा—"डा० कुमार, जिन तिलो मे तेल ही नही है उन्हे व्यर्थ में पीसने से क्या होगा ?" क्या यह जीवन है ··नहीं···नहीं, यह जीवन नहीं है। एक दिन सुदूर विदेश में उसके एक फ्रेंच मित्र ने कहा था—"डा० कुमार, जीवन क्षणिक भले ही हो, यौवन नश्वर भले ही हो, किन्तु इनकी मस्ती चाहे एक पल भर ही रहने वाली हो, वह अपनी पूर्णता के गर्व से सिर ऊँचा किये हुए स्वयं अनश्वरता और अमरता को भी ललकार सकती है।" यहाँ तो यही तो ·· यही तो जीवन है। अन्यथा जीवन है ही क्या ? गिरीश मृत है, मृत है, सौ बार मृत है। महेश जवित है, जीवित है, सदैव जीवित है। मुझे जीवित साथी की आवश्यकता है, मृत की नहीं। मुझे जीविन चाहिए, जीवन चाहिए, मृत्यु नहीं। मृत्यु के विचार से ही शालिनी सिर से पैर तक काँप उठी। उसने आज दिन तक अनेको मानव-शरीरों को प्राणहीन होते देखा था। वह सारे ही दृश्य उसके मस्तिष्क में घूम उठे—यह सुन्दर कोमल कमनीय कान्तिवान शरीर·· निष्प्राण···चिता·· ज्वाला नहीं·· नहीं·· ··· शालिनी को जान पड़ा कि बरबस उसके शरीर को कोई चिता मे झोंकना चाहता है। वह मन-प्राण से काँप उठी।

"महेश·· महेश क्या तुम मुझे सचमुच प्यार करते हो ·· सदा से करते थे ··सदा ही करते रहोगे ?" शालिनी की जिह्वा

लड़खड़ा रही थी। सम्भवतः महेश का मन भी लड़खड़ा रहा था; उसके सम्मुख एक बार, केवल एक बार, छाया की भाँति नन्दिनी का कोमल सुन्दर मुख घूम उठा। नन्दिनी सुन्दर थी, बहुत सुन्दर थी। पर शालिनी जीवित थी, बहुत अधिक मस्ती लिये हुए। महेश तौलने लगा नन्दिनी के सौन्दर्य को शालिनी की मस्ती से। सौन्दर्य में पवित्रता थी, तृप्ति थी और थी अनन्त शान्ति। मस्ती मे चाह थी, तृषा थी और थी अनन्त प्यास। महेश को अतृप्ति चाहिये, प्यास चाहिये, उसे शान्ति नही चाहिये, उसे पवित्रता की चाह नही है, वह तृप्त हो कर समाप्त नही हो जाना चाहेगा। वह जलना चाहता था, भस्म हो जाना चाहता था, तड़पना चाहता था और तड़पाना चाहता था। किन्तु कहाँ! नन्दिनी तो तड़पती भी न थी और तड़पाती भी नहीं थी। यहाँ तक कि वह रूठती भी नहीं थी, मनुहार करने की उसकी सम्भवतः चाह ही नही थी। महेश ने सामने मेज पर रक्खा हुआ गिलास उठा कर होठो से लगा लिया। एक ही घूँट में समाप्त करके उसे स्फूर्ति सी अपने भीतर जान पड़ी। उसने शालिनी का दाहिना हाथ पकड़ कर तनिक सा दबा दिया।

"शालिनी, आज से नहीं वर्षो से तुम्हे ही, केवल तुम्हें ही, प्यार करता रहा हूँ।"

शालिनी ने हाथ खींचा नही, हिली भी नहीं, डोली भी नहीं। उसे तीव्र इच्छा हो रही थी उसी समय गिरीश को दिखाने की कि शालिनी मरती नही है, वह तो हलाहल है जो औरो को मार कर भी स्वयं अछूता ही रहता है। बिजली की तरह उसी समय शालिनी के मन मे कोई कह गया "किन्तु शंकर तो हला-

हल को भी गले के नीचे उतार गये थे।" शालिनी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। उसका कंठ सूख रहा था। उसने धीरे से बायें हाथ से उठा कर गिलास में से दो घूँट भर लिये और फिर गिलास मेज पर रख दिया।

इसी समय शालिनी का हाथ पकड़े ही पकड़े महेश उठ खड़ा हुआ। शालिनी भी उठ गई। महेश शालिनी को लिये हुए बाहर निकल गया। शालिनी मे यह पूछने की भी क्षमता नहीं रह गई थी कि वे लोग किधर जा रहे हैं। फिर भी दोनों को हृदय में लिये हुए महेश की विशालकाय मोटरकार एक ओर चल दी। मार्ग चिर-परिचित था। अभ्यस्त हाथ कार के चलाने वाले पहिये को सँभाले हुए थे और शालिनी सोच रही थी—"यह क्या ? मै किधर जा रही हूँ ? हम किधर जा रहे है ? मेरे पास बैठा हुआ यह व्यक्ति गिरीश क्यों नहीं है ? क्यो नहीं है ?? क्यो नही है ???" शालिनी ने आँखें पूर्णतया खोल कर पास बैठे हुए व्यक्ति की ओर ताका। वह तो डा० महेश था, महेश ही रहा। न उसे गिरीश होना था और न गिरीश हुआ। शालिनी झुँझलाहट से भर उठी। किन्तु उपाय ही क्या था ? रात्रि को एक बजे जब शालिनी घर पर पहुँच कर अपनी थकी-थकाई देह को लिये-दिये बिस्तर पर गिर पड़ी तो उसे जान पड़ा कि उसने दिन भर मे कही कोई गलती की है। वह क्या है, कैसी है और कहाँ की है तो वह जान नहीं पाई; फिर भी उसे स्पष्ट ही दीख पड़ा कि कहीं कुछ गलत हुआ अवश्य है।

अन्त का आरम्भ

"तू फिर कालिज आ गई नन्दी ?" चित्रा ने बड़े आश्चर्य से कहा।

"सो तो पूर्वमकल्पयन् ही था।" नन्दी ने उदासीन भाव से उत्तर दिया।

"पहेलियाँ न बुझा। बता बात क्या है ? मैं तो तुझे एम० ए० में देख पाने की आशा नहीं रखती थी, सो भी भला इन दो वर्षों के बाद।"

"तू ही भला क्यों पढ़ने आई है ?"

"अरे, न आती तो क्या करती ? बी० टी० कर के एक वर्ष तो बालिका विद्यालय मे मुख्याध्यापिका का काम करती रही। अब उन लोगों का विचार उसे कालिज कर देने का है। फिर भला मैं पीछे क्यों रहती। छुट्टी ले कर एम० ए० करने चली आई। पर सचमुच तुझे यहाँ देखने की मैंने स्वप्न मे भी आशा नही की थी।"

"सब कुछ वही तो विश्व मे होता है नही जिसकी आशा की जाती है।"

"नही, बात टाल नहीं, सच बता तू क्यों पढ़ने आई है ?"

"अरे भाई, पढ़ने की इच्छा हुई चली आई; और क्या बताऊँ ? जो तू कहे ला भाई वही कह दूँ।"

"तेरी सुसराल वालों ने पढ़ने की आज्ञा दे दी ?"

"दे ही दी।"

"और डाक्टर साहब कहाँ है ?"

"वह फ्रंट पर भेज दिये गये।"

"तो यूँ कहो कि डाक्टर साहब आई०एम०एस० में हो गये।"

"सो ही तो।"

"अच्छा तब ही तुझे यहाँ भेज दिया। चलो अच्छा रहा, साथ भी रहेगा और पढ़ने मे भी सुविधा होगी।"

"क्या विषय लिया है ?"

"अभी तक विशेष रूप से किसी भी विषय की ओर आकर्षित नहीं हूँ। ली तो फिलासफी है, पर तू न पसन्द करे तो बदल लूँ।"

बदलने की आवश्यकता नहीं होगी। मैंने भी फिलासफी ही ली है।"

"ओह, तब तो अपने आप ही सब काम इच्छानुसार हो गये। हाँ यह तो बताओ तुम्हारी सुसराल की डिक्टेटर तुम्हारी ननद ने भला तुम्हे कैसे पढ़ने आने दिया ?" चित्रा ने बड़े मज़ाक के ढंग से मुँह बना कर कहा।

"क्यो ? बहिन जी तो कभी कुछ नहीं कहती। स्वभाव भी उनका बड़ा सरल है।" बड़ी शान्ति से उत्तर दिया नन्दिनी ने।

"हाँ जितनी सरल स्वभाव की वह हैं वह तो मै जानती ही हूँ।"

इसी समय प्रोफेसर साहब कक्षा की ओर जाते दीख पड़े। नन्दिनी ने कहा—"अब चलो, प्रोफेसर घनानन्द की बात तो सुने, अपनी तो फिर भी होती रहेगी।"

चित्रा को इतनी मजेदार बात यूँ ही बीच में छोड़ कर चले जाना कुछ सुन्दर नही लगा, फिर भी कर ही क्या सकती थी। "चलो" कह कर दोनो सखियाँ कक्षा मे चली गई। नन्दिनी कुछ उदास थी, पहले से अधिक गम्भीर और शान्त। चित्रा पहले से भी अधिक चंचल और चपल हो गई थी। कक्षा में प्रो० घनानन्द का भाषण हो रहा था। वह कह रहे थे—"कर्त्तव्य की यथार्थ व्याख्या समझ पाना और उसे मन-प्राण से ग्रहण कर सकना ही मनुष्यता का सबसे बड़ा वरदान है।"

नन्दिनी सोचने लगी—"यह वरदान ही तो मनुष्य-जीवन की सबसे बड़ी उलझन, मानव-जीवन की सबसे जटिल प्रहेलिका है। कर्तव्य ··क्या कर्तव्य है मेरा ? यही ना कि मन-प्राण से पति-पद-पूजा करूँ किन्तु कर पाती कहाँ हूँ·· पति 'पति··· सुदूर विदेश-स्थित एक भवन मे. न जाने वह सुन्दर है अथवा असुन्दर, विशाल है अथवा संकीर्ण, मेरे जन्म-जन्मान्तर के देवता विचरते है···उनका जीवन, उनके प्राण·· उनकी इह लोक की समस्त लीलाएँ, शत्रु की एक गोली अथवा विस्फोटक पदार्थ से भरे हुए एक बम द्वारा किसी क्षण, किसी पल भी समाप्त हो सकती है और मैं ··मै आनन्द पूर्वक यहाँ सुरक्षित बैठी हूँ··· एम० ए० की पढ़ाई कर रही हूँ। भाषण समाप्त हो चुका था। चित्रा ने नन्दिनी के कन्धे छू कर कहा—"यह क्या ? कालिज में दिवा-स्वप्न देख कर परीक्षाएँ पास नहीं की जाती है नन्दो।

"क्या कहा चित्रा ?" नन्दिनी ने यथासम्भव धीरज से कहा।

"अब यहीं बैठी रहेगी ? प्रोफेसर साहब चले गये।"

"सो तो देख रही हूँ। चलो हम भी चलें।" कह कर नन्दिनी खड़ी हो गई।

"नन्दो, चल आज मेरे घर चली चल। संध्या तक छात्रावास में पहुँचा जाऊँगी।"

"क्यों तू छात्रावास मे नहीं रहेगी क्या!"

"रहूँगी तो, किन्तु अभी दो-चार दिन तक तो मासी जी के पास ही रहूँगी। मामा जी कहते हैं कुछ दिन हमारे पास रह कर छात्रावास चली जाना।"

"किन्तु मै तो आज ही छात्रावास मे आई हूँ, अधिष्ठात्री की आज्ञा लिये बिना कालिज से ही तेरे साथ कैसे चल दूँ। न हो तू भी मेरे साथ मेरे कमरे मे ही चल। कुछ देर बैठ कर घर चली जाना।"

"कुछ खिलाये तो चलूँगी। सच बता इस बार खाने-पीने की वस्तुएँ सास ने बना कर साथ रख दी थीं या मौसी जी ने बनाई है।" चित्रा की ध्वनि मे मज़ाक लोट रहा था। पर नन्दिनी को कुछ बुरा सा लगा। मन के साथ किसी प्रकार समझौता करके ही तो वह सास को माता·· देवी·· पूज्या के पद पर आसीन कर पाई थी। अपने इस कृत्रिम विश्वास को अधिकाधिक दृढ़ कर पाने के लिए ही तो उसे आस-पास की सब ही व्यक्त और अव्यक्त ध्वनियों की आवश्यकता थी। वह किसी से भी यह सुनना नहीं चाहती थी कि उसके श्वशुर-परिवार के कोई भी सदस्य देवता से कम हैं। उसका उथला विश्वास कोई न कोई बाह्य सहारा खोजता था और वह उस आश्रय को ले कर ही अपने विश्वास-स्तम्भ को जमाती चली जाना चाहती थी। वह अपने

हृदय की दुर्बलता से पूर्णतया परिचित हो सो बात नहीं थी, फिर भी उससे सर्वथा अपरिचित भी न थी। वह चाहती थी कि उसके भीतरी भ्रम को, इस भ्रम को कि श्वशुरालय के व्यक्तियों का उसके प्रति स्नेह नहीं है, कोई बरबस झकझोर कर हिलाए, नष्ट कर दे। किन्तु कहाँ? यह सामने खड़ी हुई उसकी मित्र तो इस भ्रम को और भी अधिक दृढ़ कर देना चाहती है। नन्दिनी यह नहीं चाहती थी। वह कुछ चिढ़-सी उठी। फिर भी सदा की-सी गम्भीर ध्वनि मे उसने अत्यन्त धैर्य से कहा—"तुझे आम खाने से मतलब है या पेड़ गिनने से? जितना खाते बने खाना। बनाया किसी ने भी हो इससे तुझे क्या?"

"नहीं भई, यों तो मुझसे नहीं खाया जाएगा। मैं तो सारी पृष्ठ-भूमिका पढ़े बिना किसी चीज का आनन्द ही नहीं ले पाती हूँ।" चित्रा ने इस बार कुछ ऐसा मुँह बना कर कहा कि नन्दिनी और चित्रा दोनों हँस पड़ीं।

"सुना है तू साल भर के लगभग मुख्याध्यापिका का कार्य करके आई है। वहाँ भी क्या इसी तरह काम करती थी? भला तुझे कभी गम्भीर होना भी आएगा?"

चित्रा इस बार खिल-खिला कर हँस दी।

"पगली, चित्रा जीवन के आनन्दमय चित्रों को हास्यसूत्र द्वारा एक दूसरे मे गूँथना ही जानती है, उन्हे एकबारगी काली चादर से लपेट कर, गला घोंट कर, मार डालना नहीं। जानती है मेरी लड़कियाँ क्या कहती थीं।"

"कहती होंगी यह बहिन जी बड़ी पागल है।"

"नहीं, कहती थीं हमे यह बहिन जी सबसे अधिक प्रिय हैं क्योंकि यह हँसाती है रुलाती नहीं।" दोनों सहपाठिनी नारियाँ सड़क पर पहुँच गई थीं। न जाने क्यों इसी समय धीरे से चुपचाप नन्दिनी ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ दिया। चित्रा की दृष्टि से वह छिपा न रहा। दोनो कुछ देर चुपचाप चलती रहीं। इस बार चित्रा कुछ चक्कर से मे पड़ गई, नन्दिनी...दीर्घ निश्वास ...। नन्दिनी सोच रही थी... कितना परिवर्तन हो गया है मुझमे इधर दो ही वर्षों मे, और यह चित्रा वही है, बिलकुल वही है, इंच इंच वही है। यह कैसे वैसी ही रह पाई है? बिलकुल स्पष्ट, बिलकुल स्वच्छ और वैसी हो हँसोड़। चित्रा की हँसी फीकी पड़ गई थी, वह कुछ सहम-सी गई थी। उसे जान पड़ा कि नन्दिनी की लम्बी-सी माँग के बीचों-बीच लगा हुआ तनिक-सा सिन्दूर नन्दिनी के भाग्य पर हँस उठा। चित्रा का मन उदास हो गया।

वैराग्य

"हरीश, यह सब क्या है भाई ? मै तो कुछ भी समझ पाती नहीं हूँ ।"

"समझना चाहती ही क्यो हो भाभी ? क्या विश्व की सब ही बाते समझ मे आती हैं अथवा आ सकती हैं ?"

"भले ही न आती हो, किन्तु गिरीश का यह अकारण वैराग्य तो किसी प्रकार भी देखा नही जाता ।"

"अकारण तो नहीं कहा जा सकता भाभी । यदि अकारण ही होता तो तुम स्वयं आगे बढ़ कर क्यो उस मानिनी की मौसी से उसकी भीख माँगने जाती अपने लाड़ले देवर के लिए ।"

"सो तो हो गया । अपनी ओर से प्रयत्न भी किया किन्तु जब वह घमंड के मारे पृथ्वी पर पैर ही नहीं देते तो फिर गिरीश ही क्यों पागल हुआ जाता है । इसे समझाओ ना, सीधी तरह घर बसाये ।"

"जाने दो भाभी, यह सब बाते समझाई थोड़े ही जाती है । और यूँ महेश मे हमारे गिरीश भाई से कौन सा गुण अधिक है सो तो शायद गिरीश के शत्रु भी नहीं बता पायेंगे ।"

"हरीश, एक दिन घर भर का विरोध सिर पर ओढ़ कर, लज्जा अपमान सब कुछ एक घूँट में पी कर भी मैं उस घर में गई थी, केवल गिरीश की प्रसन्नता के लिए ही, किन्तु सो सब कुछ हुआ नहीं । नन्दिनी तो अब पराई हो ही गई । तुम लोग गिरीश को क्यो नही मना लेते अब कहीं घर बसाने के लिए ।"

"यही तो कठिन है भाभी" इस बार भीगे कंठ से कहा सुवीरा ने। मिसेज उमेशचन्द्र—गिरीश की भाभी—ने आश्चर्य भरी दृष्टि से डाक्टरनी सुवीरा की ओर देखा।

आज कितने ही दिनों पश्चात् बहुत सोच विचार करके भाभी ने यह प्रस्ताव हरीश और सुवीरा के निकट रखने का निश्चय किया था। गिरीश का दिन-रात का कठिन परिश्रम, सूखा हुआ चेहरा और शरीर को तिल-तिल करके गलाते जाना, उसकी भाभी को तनिक भी न भाता था। उसे जान पड़ता था कि गिरीश मन ही मन किसी गम्भीर वेदना को लिये फिरता है किन्तु प्रकाश्य रूप से शान्त है। भाभी उस वेदना को जानते हुए भी अनजान थी। इसी दुःख से उसका मातृ-प्रेम-पूर्ण हृदय भर-भर आता था। किन्तु आज सुवीरा के दृढ़ गम्भीर स्नेह-भरे श्रद्धा-विगलित स्वर ने भाभी को चौंका दिया। कुछेक क्षण अवाक् रह कर उसने सहज स्वर से कहा—

"भइ डाक्टरों की बातें डाक्टरनियाँ ही जान सकती हैं।"

"नहीं भाभी, यूँ कहो कि देवताओं के मन की बात सब ही जान पाते नहीं। सच कहती हूँ भाभी, गिरीश भाई जैसा व्यक्ति कभी कहीं देखा नहीं।" सुवीरा के स्वर में इस बार श्रद्धा से कहीं अधिक स्नेह था।

"लो भाभी, यह तो अब हमारे ही मुँह छिपा कर भागने की बारी आई जान पड़ती है।" हरीश ने भाभी की ओर देख कर कहा। भाभी हँस पड़ी।

"भय की कोई वैसी बात नहीं है हरीश, सुवीरा तो बहुत ही सुशील लड़की है।"

"सो तो है ही। असुशील तो मैं ही हूँ भाभी।"

सब हँस पड़े। हरीश ने इस बार गम्भीर मुख से कहा—'भाभी, गिरीश भाई की बात को ले कर तुम चिन्ता करोगी और अवश्य करोगी। किये बिना रह सकोगी ही नहीं, भाभी हो ना। हिन्दू घर की भाभी की पद-मर्यादा स्नेह प्यार यदि विदेश मे कोई समझ पाता तो सम्भवतः विश्व के सारे ही देश सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा की ओर दौड़ पड़ते। पर मै तो यही कहूँगा कि तुम यह चिन्ता मन्दिर के ठाकुर को सौप कर निश्चिन्त हो जाओ। गिरीश भाई विवाह नहीं करेंगे।"

"सो ही तो।" सुवीरा ने चमकती हुई दृष्टि से कहा।

"पर यह सब क्यों? यह तपस्या, यह साधना, एक बिन जानी पहचानी अपरिचिता के लिए ही तो? सो क्यो?" भाभी व्याकुल थी।

"सो सब न पूछो भाभी। सब ही व्यक्ति एक धातु के बने हुए नही होते है जानती हो ना? तुम्हारा यही हरीश है, चाहे सात विवाह कर दो। पर सब कोई गिरीश तो नहीं हो सकते, हरीश चाहे सौ बार हो जाये।"

"मेरा हरीश ही क्या कुछ ऐसा वैसा है।" कह कर भाभी हँस दी और सब भी हँस दिये। इसी समय गिरीश ने कमरे में प्रवेश किया।

"आओ भइया, बड़ी आयु है तुम्हारी।" हरीश ने हँसते-हँसते ही कहा।

"प्रणाम भइया।" सुवीरा ने कहा। स्वर मे असीम श्रद्धा थी।

"गिरीश, सुवीरा तुम्हारी बड़ी भारी भक्त है जानते हो ना ?" भाभी मजाक के से स्वर मे कहती गई—"कितनी बड़ी रिश्वत देनी होती है इतनी श्रद्धा लेने के लिए भाई ?"

"शिष्य बनाना होता है भाभी। सुवीरा मेरी शिष्या है जानती हो ना ?"

सुवीरा की आँखों मे अनजाने ही दो बूँदे आँसू की भर आई। सुवीरा की कल्पना-दृष्टि में जीवित हो उठा वह दिन, जब रात्रि भर कठिन परिश्रम कर के जिस रोगी के प्राण यमराज के हाथों से लौटा लाये थे गिरीश; उसकी पत्नी ने जब प्रातः काल डाक्टर साहब के चरणों पर मस्तक रख कर कहा था—"डाक्टर साहब, इस दुःखिनी के पास आशीर्वाद के सिवा और कुछ भी नहीं है, नारायण आपकी निस्स्वार्थ सेवा का फल देंगे। मुझे तो आप अपने घर मे आजन्म दासी भी बना कर रख लें तो आपके ऋण का शतांश भी उतार सकने के लोभ मे हो मैं जी उठूँ।" और फिर डाक्टर गिरीश, कठोर शत्रु यमराज से धैर्य पूर्वक लड़ने वाले डाक्टर गिरीश, ने शान्ति-पूर्वक कहा था "बहिन, उठो और अपने घर जाओ, यदि हो सके तो नारायण के निकट यही प्रार्थना करना कि मानव मात्र को शान्ति दे।" सुवीरा जानती थी कि यह व्यक्ति मानव का दुर्बल, अत्यन्त दुर्बल, हृदय लिये-दिये मन की वेदनाओं और दुर्बलताओं से निरन्तर दृढ़ता-पूर्वक लड़ रहा है, तब ही तो उसका जी चाहता था कि सफलता-असफलता का विचार छोड़ कर निरन्तर लड़ने वाले इस योद्धा के चरणों पर मस्तिष्क रख कर रो उठे।

"क्यो नहीं भाई, ऐसी शिष्या मिलने पर किसका जी गुरु

बनने को न चाहेगा ?" भाभी हँस रही थी।

"तो आज से मेरी गुरु बन जाओ भाभी, देख लेना सुवीरा से अधिक ही श्रद्धा पाओगी।" हरीश उच्च स्वर से हँस दिया। सुवीरा ने स्नेह भरी दृष्टि से हरीश की ओर देखा। गिरीश ने बड़ी ही निष्कपट, सरल ममता से सुवीरा की ओर देख कर हरीश से कहा—"हरीश सुवीरा ने जो कुछ मेरे लिए आज दिन तक अस्पताल में किया है वह कहा नहीं जा सकता।"

"सुवीरा तो घर की है भइया, बखान करो डाक्टर शालिनी कुमार का, उन्हें तो तुमने तपस्विनी ही बना डाला।'

हरीश ने अनजाने ही गिरीश के बहुत ही अधिक कोमल स्थान पर आघात कर दिया। गिरीश जानता था कि डा० शालिनी कुमार अपने हृदय में उसके लिए बड़ा ही कोमल स्थान रखती है और जान कर भी गिरीश शालिनी को कुछ भी नहीं दे पाता—स्नेह भी नहीं, प्रणय भी नहीं, कोमलता भी नहीं—कभी-कभी यही गिरीश की मर्मान्तक पीड़ा का कारण बन जाता था। इस पीड़ा को समझती थी सुवीरा—नारी। नारी बहुत कुछ जानती है, समझती है, पढ़ती है, और भुला देती है। व्यंग जैसे वाक्य से तिलमिला उठा गिरीश और रक्षा की सुवीरा ने।

"डाक्टर शालिनी कुमार की तुलना थोड़े ही हो सकती है। ऐसी तीव्र बुद्धि पाई है उन्होंने, और कार्यदक्षता भी उनकी असाधारण है। गिरीश भइया उनकी भी तो प्रशंसा करते हैं। करते क्यों नहीं ?" सुवीरा ने ऐसे सहज भाव में कहा कि गिरीश ने मुक्ति की साँस सी ली।

"क्यों भई यह शालिनी कुमार हमारे गिरीश के योग्य

है न ?" भाभी ने तीर इस बार सीधा ही छोड़ा। सुवीरा अभी पहली चोट पर मरहम लगा ही रही थी कि दूसरी चोट पड़ी।

"भाभी, तुम्हारे गिरीश को संसार भर में तुम्हारे सिवाय और कोई पसन्द करता भी है कि यूँ ही योग्य अयोग्य मापने को मापदण्ड लिये फिरती हो ?" गिरीश के स्वर में दर्द था, टीस थी। किन्तु भाभी को यह अच्छा नहीं लगा। उन्हें अपने देवर पर मान था, वैसा ही जैसा माता को सन्तान पर होता है। उन्होंने चिढ़े से स्वर में कहा—

"मेरे गिरीश का मूल्य कोई आँक भी पाये !"

सुवीरा ने दृष्टि से ही भाभी की बात का समर्थन किया। हरीश गिरीश को जानता था, आज से नहीं वर्षों पूर्व से। उसे ज्ञात था कि शालिनी का समस्त रूप, वैभव और चातुर्य गिरीश को उसकी ओर तनिक भी आकर्षित नहीं कर पाया। किन्तु वाद-विवाद करने से लाभ ही क्या था। भाभी की ममता देवर की दृढ़ता को कहाँ समझ पाती थी और देवर की चरित्रबलजन्य दृढ़ता भाभी के सरल स्नेह के निकट भी झुकना कहाँ जानती थी! उसने प्रसंग बदलने की दृष्टि से कहा—"भाभी, बड़ी भारी पक्षपातिनी हो तुम भी। गिरीश तुम्हारे पास ही रहता है फिर भी उसकी ही बात करोगी, उसकी ही बात सोचोगी। किन्तु यह विचारा हरीश वर्षों बाद कभी दीख पड़ता है, किन्तु इसकी कोई चिन्ता ही नहीं। न कोई कचौरी की बात, न मलाई में डाले हुए फलों के नाश्ते की बात। अब क्या कहूँ ?"

"लो तो कोई भागे थोड़े ही जा रहे हो। चाय नाश्ते का समय भी तो होने दो।"

"भला खाने-पीने का भी कोई समय होता है ?" हरीश ने कहा ।

"नहीं भई, यह तो ठीक डाक्टर की सी बात नहीं हुई, हरीश ।"

"हाँ गिरीश भाई जैसे डाक्टर की न होगी । यहाँ तो बन्दा दिन भर खा सकता है, यदि मिले तो ।"

"लो भई, लो, अभी लो, कुछ तुम्हारे लिए कमी थोड़े ही है ।" और भाभी उठ कर बाहर चली गई ।

"हरीश, तू हो तो बड़ा आदमी गया है; पर तेरी आदतें वही रहीं ।" गिरीश ने प्यार से कहा ।

"तुम्हारे लिए तो बड़ा आदमी नहीं हूँ भाई ।" हरीश हँस दिया ।

उसी दिन संध्या समय गिरीश को घेर लिया उमेशचन्द्र ने—

"क्या बात है गिरी, दिखाई ही नहीं पड़ते हो। भला ऐसा भी क्या काम हुआ कि मनुष्य साँस भी न ले ।"

"भइया, कुछ काम ही हो सो तो बात है नहीं । आराम भी करता हूँ । किन्तु जिस समय आप घर होते हैं वही मेरा काम का समय होता है ।"

"अब तो तुम्हारी प्रेक्टिस खूब चल रही है । नगर में जिधर भी सुनो हमारे गिरी की प्रशंसा ही सुन पड़ती है ।" उमेशचन्द्र ने बड़े उत्साह से कह डाला । सुन कर गिरीश ने एक फीकी सी हँसी हँस दी । भाभी भी मुसकरा दी, पर इससे उमेशचन्द्र को सन्तोष नहीं हुआ, उन्हे पूरी बात कहनी थी । कहते ही गये— "पर इतना काम काज यह सब किसके लिए गिरी ? तेरी भाभी

तो तेरी स्त्री का मुख देखे बिना जान पड़ता है जीवित ही नहीं रहेगी।"

"क्यों मेरा मुख अब क्या इतना पुराना हो गया है कि दूसरे नये मुख के देखे बिना भाभी का जीवित रहना कठिन है।" गिरीश ने करना तो चाहा था मजाक, किन्तु वाक्य के अन्तिम छोर तक पहुँचते-पहुँचते स्वर मे हास्य-ध्वनि लुप्त हो गई और रह गई असीम वेदना। मजाक किया उमेशचन्द्र ने—

"अरे भई, तुम्हारे नहीं, हमारे मुख को देख-देख कर ऊब गई हैं अब तुम्हारी भाभी, तब ही तो एक हमजोली सखी की आवश्यकता पड़ी है।" गिरीश की मजाक मे कही हुई बात के वेदना-पूर्ण स्वर ने भाभी को विचलित कर दिया था, किन्तु स्वामी के वाक्य और कहने के ढंग पर खिलखिला कर हँस पड़ी। मुक्त हास्य ने गिरीश को भी पूर्वावस्था मे लाने मे सहारा दिया। तीनो हँस पड़े।

"बात तो असली तुम्हारे भइया ने आज समझी है गिरी भाई, पर यह समझ तो बहुत दिन पूर्व आ जानी चाहिये थी।"

"तो शायद मै तुम्हे किसी दिन भी भला नहीं लगा।"

"बात तो कुछ ऐसी ही है?" भाभी ने कहा।

"लो भाई गिरीश, बात पक्की हो गई। यूँ तो हिन्दू कानून भी कोडीफाई हो रहा है, पर जब तक हो नही जाता और तलाक पाने की सुविधा नहीं हो जाती तब तक तो निस्तार दिखलाने का उपाय तुम्हारे ही हाथ में है भाई। कुछ करो प्रयत्न।"

"लो भाभी, फिर छोड़ो घर बार, आज ही तुम्हे हस्पताल मे ले चलता हूँ। मेरे रोगी तो दिन रात आशीर्वाद दिया करेंगे।"

"यह ठीक, दोनो मिल कर मेरा घर ही उजाड़ दो।"

"लो, कुछ घर से थोड़े ही ऊबी हूँ जो घर छोड़ दूँ। भई अभी संन्यास लेने का समय नहीं आया है।"

"फिर गिरी, जिससे तुम्हारा मन चाहे उसी को बता दो। उससे बात कर लें। पर कहीं हाँ तो करो। भला गृहस्थाश्रम में प्रवेश किये बिना कहीं छुटकारा है?" उमेशचन्द्र ने इस बार अत्यन्त गम्भीर हो कर कहा। डा० गिरीश क्षणेक चुप ही रहे। फिर धीरे-धीरे कह गये—

"भइया, मै तो कामिनी कांचन से पृथक ही रहना चाहता हूँ। श्रीरामकृष्ण परमहंस ..."

"अरे रहने दे अपने श्रीरामकृष्ण परमहंस के वचनो को।"

"अपने भइया को भी शिक्षा दो कि कामिनी कांचन से शीघ्र ही किनारा कर ले।" भाभी ने व्यंग से कहा।

"नहीं भाभी, सो बात नहीं है। तुम तो हो विद्यानारी। विद्यानारी भवबंधन दृढ़ नहीं करती। किन्तु क्या सब ही स्त्रियाँ विद्यानारी होती हैं? अविद्यानारी भी तो होती ही है।" गिरीश ने कहा।

"तो फिर यूँ कहो कि संन्यास साधा जा रहा है।

"ठीक-ठीक ऐसा तो नहीं है भइया, फिर भी..." गिरीश का कण्ठ रुक-सा गया। उसकी लाचारी पढ़ी भाभी ने। उन्होंने मुख उठा कर पति की ओर स्थिर दृष्टि से देख कर कहा—"जाने दो जी इन बातों को। हमारा गिरीश स्वतःपूर्ण है। उसे पूर्ण होने के लिए अर्धाङ्गिनी के आवाहन करने की आवश्यकता नहीं है।"

"सो आवश्यकता किसी दिन भी न पड़े सो ही आशीर्वाद देना भाभी।" कहा भीगे कण्ठ से गिरीश ने।

उमेशचन्द्र इन गहरी भावुक बातों में न तो पड़ते ही थे और न उन्हें समझ ही पाते थे।

"अच्छा भई तुम्हारी इच्छा" कह कर सहज भाव से उठ कर बाहर चले गये। कुछ देर तक सन्नाटा रहा। भाभी ने धीरे से कहा "गिरीश, दर्द कहाँ है सो जानती हूँ, पर उपाय मेरे हाथ में रह गया नहीं है।"

"आवश्यकता उपाय करने की तो है ही नहीं भाभी।" सदा का मितभाषी गिरीश न जाने कैसे कह गया।

भाभी की आँखों मे खारा जल भर आया। किन्तु उन्होने तुरन्त ही छिपा कर आँखें पोंछ लीं।

"सो क्या मैं तुम्हे जानती नही हूँ भाई, पर माँ जी का दुःख देखा नहीं जाता।"

"उन्हें समझा दो भाभी। यह तुम्हीं कर सकती हो। उन्हें भी तो अब नारायण के चरणों में आत्म-समर्पण कर देना ही चाहिये।"

भाभी को याद आ गई सुवीरा की बात "गिरीश भाई जैसा व्यक्ति कभी कही देखा नहीं। यह क्या है? स्नेह, मोह, माया अथवा मृग मरीचिका, भाभी नारी हो कर भी समझ पाई नहीं। डा० गिरीश और अधिक देर तक न रुक सके। भाभी भी उठ कर सास के पास जा बैठीं। उनके अन्तर की अद्भुत उथल-पुथल सँभलने में ही नहीं आती थी। माँ जी के प्रश्न करने पर वह केवल मात्र यही कह पाई—"माँ जी, गिरीश भाई साधारण

व्यक्ति नहीं है। विवाह जैसी तुच्छ बात ले कर उनके पीछे बहुत दिनों तक पड़ी रही, पर अब किसी दिन ऐसी बात छेड़ कर उनका महत्त्व घटा सके सो क्षमता तुम्हारी बहू में नहीं है।" वृद्धा सास कुछ विशेष समझ पाई तो नहीं पर फिर भी इतना समझ गई कि उनका पुत्र गिरीश किसी प्रकार भी विवाह करेगा नहीं। गिरीश ने राजपथ पर कार दौड़ाते हुए उसी दिन प्रश्न किया अपने आप से—वह मेरी कौन थी? कोई भी तो नहीं··· अनजानी अनदेखी और न जाने क्या-क्या? फिर भी उसे जान पड़ा कि वह अपरिचिता ही उसके जीवन के नवविधान की मुख्याधिष्ठात्री बन बैठी है। बरबस ठेल ठाल कर डा० गिरीश ने इन विचारों को मन की एक अँधेरी कोठरी में ठेल देना चाहा। इसमें वह सफल हुआ अथवा नहीं कौन कह सकता है, पर हस्पताल में पैर रखते ही कहा रविदत्त ने—"डाक्टर साहब, नं० १५ रोगी आपको बहुत देर से पूछ रहा है।" सन्तान की पुकार सुन कर व्याकुल हो जाने वाली माता की तरह अधीर हो कर कहा गिरीश ने—"अरे, तो तुम टेलीफोन ही कर देते।"

माया

"डाक्टर कुमार, वार्ड नंबर तीन आपका है ना ?" डा० रविदत्त ने शालिनी से पूछा।

"नहीं, वहाँ सुवीरा काम करती हैं। मैं तो आज से डा० गिरीश के साथ ही काम करूँगी।"

"ऐसी तो उनकी कोई आज्ञा हुई नहीं है।"

"उनकी आज्ञा मेरे लिए ध्रुव आदेश नहीं है," कुछ चिढ़ कर कहा शालिनी ने "आप जानते हैं डा० रविदत्त, मैं यहाँ कुछ वेतनभोगी सेवक नहीं हूँ। मुझे आपरेशन कार्य का अभ्यास करना है। इसीलिए यहाँ काम करने आती हूँ। मैटरनिटी केसेस करना मैंने यूरोप में बहुत सीखा है।"

डा० रविदत्त को करारा आघात लगा था, वह वेतनभोगी सेवक है ना। पर आत्माभिमानी डा० रविदत्त ने हँस कर कहा—"सो सब आप ही कह सकती हैं; आनरेरी वर्कर हैं ना। हम तो आज्ञा की ही प्रतीक्षा करते हैं, वेतनभोगी सेवक हैं ना।"

मानव-स्वभाव विचित्र है। यदि हम किसी पर आघात करें और वह उसका विरोध करे तो आक्षेप को और भी अधिक गहरा रंग देने की स्वभावतः प्रवृत्ति होती है। किन्तु दूसरी ओर यदि कोई व्यक्ति आक्षेप को सिर झुका कर स्वीकार कर ले तो मनुष्य स्वयं झेंप-सा जाता है। यही दशा शालिनी की हुई। वह रविदत्त को "वेतनभोगी सेवक" होने की याद दिला कर नीचा दिखाना भले ही चाहती हो किन्तु उस सत्य की इतने सहज भाव से स्वीकारोक्ति सुनना उसे भला नहीं लगा। उसने

हँस कर कहा—"डा० दत्त मेरा अभिप्राय यह कदापि नहीं था। बात यह है कि मैं डा० गिरीश की कुछ सहायता शल्य कार्य में करना चाहती हूँ और यही मुझे सीखना भी है। मैंने अभी तक उनसे इस विषय मे पूछा नहीं है, पर आज कह दूँगी। वे मेरी बात कभी भी नहीं टालेंगे और तीन नम्बर वार्ड की देख-भाल के लिए डा० सुवीरा काफी है। आवश्यकता होने पर मैं भी जा सकूँगी।" डा० रविदत्त बहुत कुछ सँभल चुका था। यूँ भी शालिनी के मधुर स्वर ने बहुत कुछ शान्त कर दिया। उस दिन वर्षों के सहज परिचय के पश्चात् पहली ही बार शालिनी ने सोचा कि डा० रविदत्त भी एक व्यक्ति है—उसी प्रकार जीवित और जाग्रत जैसे कि वह स्वयं, गिरीश, महेश और अन्य सब है। रविदत्त ने अभावो, घने कठोर अभावो, के बीच ही जीवन की कठिन रेखाएँ खींचना सीखा था। विरोध को जीतना—असम्भव को सम्भव कर दिखाना—ही उसे प्रिय था। आज उसे जीवन मे पहली ही बार शालिनी कुमार की ओर देख कर जान पड़ा कि वह नारी है। रविदत्त के निकट नारी का परिचय मात्र था उसकी मामी'' शुष्क कठोर ''कठिन नारी ''मामी। उसने कालिज मे अपनी अनेकों सहपाठिनी बालिकाओं को देखा था। शालिनी और सुवीरा भी उसकी परिचित थीं, किन्तु वह उन सब को किसी भी अन्य सहपाठी लड़के से अधिक महत्त्व किसी दिन भी नहीं दे पाया था। महेश का शालिनी की ओर आकर्षित होना उसके लिए एक कथा मात्र थी। किन्तु आज उसे एकाएक लगा जैसे कि शालिनी कुछ महत्त्व रखती है। उसका व्यक्तित्व कुछ आकर्षक सी वस्तु है। अभी सात ही बजे थे। डा० गिरीश आठ

बजे आते थे और पूरे बारह घंटे अस्पताल में ही बिताते थे। सुर्वारा अपने वार्ड में चली गई थी। एक बार सिर से पैर तक डा० रविदत्त को देख कर डा० शालिनी कुमार ने कहा—"डा० दत्त, चलियेगा, डा० गिरीश के आने से पूर्व ही कुछेक आवश्यक काम निपटा लें।" डा० दत्त को आठ बजे तक आपरेशन रूम को तैयार कर लेना था, रोगियों की सूची एक बार फिर देख-भाल कर नर्सों को आदेश देने थे। यह सब कार्य वह पिछले कई वर्षों से कर रहा था। इनमें अभ्यस्त भी हो चुका था। यह उसके लिए अन्य दैनिक कृत्यों से अधिक महत्त्व नहीं रखते थे। फिर भी आज शालिनी के सहयोग के निमन्त्रण का अयाचित दान उसे भला ही लगा। शालिनी हस्पताल में प्रतिदिन आ कर कार्य करती थी। उसकी कार्य शक्ति अद्भुत थी। फिर भी उस पर किसी का भी किसी प्रकार का नियन्त्रण न था। स्वयं डा० गिरीश भी उसका विरोध नहीं कर पाते थे, यह सब को ज्ञात ही था।

"जैसी आपकी आज्ञा।"

"आप तो लज्जित करने पर ही तुले है डा० दत्त। मै भला आपको आज्ञा दूँगी। मै तो आपकी जूनीयर ही हूँ ना।"

"नहीं, नही, आप सदा ही सीनियर रही हैं और रहेंगी।" कहते कहते रविदत्त की आँखो मे शालिनी कुमार का मोटरकार पर कालिज आना भूल गया, जब कि उसे स्वयं को कड़ी धूप और तेज वर्षा में भी कभी दो आने इक्के की सवारी कर पाने के लिए भी प्राप्त नहीं थे। शालिनी टाल गई।

"अरे गोली मारिये सीनियर जूनीयर को, अब तो हम

ईक्वल्स है जी ईक्वल्स···बराबर। है ना ?"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े। शालिनी डा० दत्त के साथ ले कर आपरेशन थियेटर में चली गई। सुवीरा किसी काम से आफिस के कमरे से आ रही थी। इन दोनों को जाते देख कर मन ही मन तनिक-सा हँस दी। और उसी समय सुनाई दिया डा० गिरीश की मोटर कार का हार्न। सुवीरा ने प्रसन्न मन से गिरीश को अभिवादन किया। गिरीश ने उत्तर देते हुए पूछा—"क्यों रश्मिदत्त कहाँ है ?"

"रश्मिदत्त और मिस कुमार उस ओर गये हैं।" कह कर सुवीरा ने आपरेशन थियेटर की ओर उँगली उठा दी।

"चलो ठीक ही है।" कह कर गिरीश भी जाने लगा पर फिर एक जरा रुक कर बोला—"हरीश का कोई पत्र आया सुवीरा बहिन।"

"अभी तो नहीं।" सुवीरा ने कुछ उदास मन से कहा और फिर चली गई। गिरीश ने मन ही मन कहा "कितनी सुखी है सुवीरा हरीश को ले कर···क्या नन्दिनी भी इतनी ही सुखी होगी महेश···" विचार-धारा रुक गई। एक दीर्घ निश्वास ले कर गिरीश अपनी मानसिक अनधिकार चेष्टा पर अपने आपको धिक्कारता हुआ चल दिया शल्य-भवन की ओर।

पत्र

"फिर कोई नवीन हस्तलिखित ग्रन्थ आ पहुँचा है क्या ?" मजाक के से ढंग से चित्रा ने हँसते हुए कहा।

"तू कभी गम्भीर होना भी सीखेगी चित्रा ?" नन्दिनी का स्वर सचमुच भारी था।

"क्यों ? क्यों ? बात क्या है जिसके लिए चित्रा को सचमुच गम्भीर होना सीखना पड़ेगा ?"

"कोई बात हो तो बताऊँ। या कहे तो यूँ ही कुछ बना बनू कर बता दूँ।"

"बना कर क्यों कहना होगा ? क्या मैं तुम्हारी मुखाकृति से पढ़ना भूल गई हूँ तुम्हारे हृदय की बात ?"

"हरे राम, हरे राम, ऐसा दोष तो तुझे तेरे शत्रु भी नहीं दे सकते चित्रा।" मजाक के से ढंग से नन्दिनी ने कहने का प्रयत्न किया, किन्तु अन्त तक पहुँचते-पहुँचते उसका स्वर रो सा उठा।

चित्रा स्वभाव की हँसोड़ थी। गम्भीर हो कर कोई बात कभी कर पाना उसके स्वभाव के सर्वथा विरुद्ध था। यहाँ तक कि किसी गम्भीर बात को उसकी सम्पूर्ण गम्भीरता सहित वह ग्रहण भी नहीं कर पाती थी। फिर भी वह नन्दिनी को प्रेम करती थी, सचमुच ही मन-प्राण से प्रेम करती थी। इस बार उसने थोड़ी देर हँसी रोक कर साधारण तथा कोमल स्वर से कहा—"सचमुच नन्दिनी आज तू बहुत ही उदास जान पड़ती है। डा० साहब की कोई चिट्ठी-पत्री आई है क्या ?"

"हाँ, इस तरह बात कर। तुझ से तो कोई दुख-सुख की बात करना ही कठिन है।" नन्दिनी ने गीले से स्वर से कहा।

"अच्छा अब बता क्या बात है। मैं तो सचमुच ही चिन्ता से मरी जा रही हूँ।"

"सो तो है ही। इसी तरह न जाने कितनी बार मर चुकी है। अच्छा लो पूछो क्या पूछती हो ?"

"डाक्टर महेश का पत्र आया है ?"

"हाँ।"

"क्या लिखा है ?"

"कोई नवीन बात हो तो बताऊँ।"

"तो वही पुराना राग अलापा है ?"

"तू तो हँसी करती है चित्रा, किन्तु मुझे भी सचमुच अब ऐसा ही जान पड़ता है कि हमारे भाग्य में मिलन सुख है ही नहीं।"

"क्या चार समुद्र पार बैठे-बैठे तेरे पति देवता यही शिक्षा पृष्ठों पर पृष्ठ भर कर तुझे लिख-लिख भेजते हैं ?" कुछ झुँझलाहट से चित्रा ने कहा।

"नहीं चित्रा, वह बिचारे तो स्वयं बहुत ही अधिक चिंतित है। लिखते हैं कि दिन-रात तुम्हारा ही ध्यान आता है पर न तो यहाँ से निकल भागने की ही सुविधा है और न प्राण बचने की आशा ही।"

"जब इतना छोटा दिल था तो भला फौजी नौकरी होते हुए विवाह ही क्यों किया था ?"

"वाह तू भी अपने ही ढंग की बातें करती है।"

"यही तो उन दिनों सब लोग कहते थे। तेरी तो विवाह करने की इच्छा भी नहीं थी, किन्तु उस समय तो उन लोगों ने घेर घोट कर रुपये के पीछे जल्दी-जल्दी करके विवाह करवा के ही चैन की साँस ली और अब बेटे साहब विदेश से बैठे प्रति दिन कलम घिसते हैं।"

"देख चित्रा, तू उन्हें जब समझ ही नहीं पाती तो उनके विषय में बात क्यों करती है। इसीलिए तो मैं तुझे कुछ बताती नहीं हूँ, फिर तू चिढ़ती है।"

"अई माना तेरे पति सचमुच के देवता हैं और ससुराल के सब ही लोग देवसेना के सैनिक। बस अब तो प्रसन्न हुई। किन्तु चूल्हे में गया तेरा एम० ए० और भाड़ में गई तेरी फिलासफी। मुख पर हर समय पीलापन छाया रहता है मानो मृत्यु की भीषण स्वर-लहरी तुझे चारों ओर से घेर कर जकड़ रही हो। इस प्रकार करेगी तू एम० ए०।"

"क्या करूँ चित्रा, जी ही नहीं लगता। प्रोफेसर पढ़ाते हैं तो जान पड़ता है कि नोट बुक पर उन्हीं के विभिन्न रूपों में चित्र नाच रहे हैं। हर समय लगता है कि बम का गोला उनके कोमल शरीर पर पड़ रहा है। मैं तो रात को सोते भी चौंक उठती हूँ।"

"और वह चाहे वहाँ आनन्द ही कर रहे हों।"

"नहीं, नहीं, मेरी अच्छी चित्री, ऐसा न कह, तू उन्हे जानती नहीं, इसी से ऐसा कह पाई है। वह सचमुच ही देवता हैं और मुझ से कितना अधिक स्नेह करते हैं, यह तो मैं स्वयं भी नहीं जानती।"

"जाने दे और न कहूँगी। ऐसी घनी भक्ति को हिला सकूँ

सो शक्ति मुझ में नहीं है। फिर भी यह अवश्य कहूँगी कि तू अपने शरीर की ओर देख नन्दिनी। तेरी माँ और मासी तो तेरा ही मुख देख कर जीवित हैं। तूने अपने शरीर की जो दशा बना डाली है वह कुछ सराहनीय नहीं है।"

"मैं क्या करूँ बहिन! तेरा तो विवाह हुआ नहीं। कभी तूने किसी को प्रेम नहीं किया। तुझे उस अवस्था की कल्पना भी नहीं हो सकती। काश कि वह मेरे आराध्य देव बन कर मेरे जीवन में न आये होते।"

नन्दिनी का अटल विश्वास, उसकी कुशाग्र बुद्धि के साथ घुली-मिली उसकी अनन्य पति-भक्ति देख कर चित्रा मन ही मन काँप उठी। वह महेश को जानती थी, खूब जानती थी। इस बार कुछ न कह कर मन ही मन चित्रा ने नारायण के निकट प्रार्थना की कि वह इस भोली बालिका के जीवन को नष्ट होने से बचा लें। जब उन्होंने उसे सरल सहज स्वाभाविक विश्वास दिया है तो उस विश्वास का दृढ़ आधार सत्य भी उसके जीवन के आस-पास पूरी तरह भर दें, नहीं तो वह विश्वास टिकेगा कैसे और जियेगा क्यों कर ?

"चित्री, तू तो चुप हो गई। क्या अप्रसन्न हो गई ? कुछ तो कह बहिन मेरी।"

"क्या कहूँ, यही सोच नहीं पाती हूँ। नन्दिनी, तू महेश को कुछ दिनों को बुलवा ले ना।"

"वह फ्रंट पर हैं। कैसे आ सकते हैं ? यदि आ जाते तो मैं भी जी जाती। नहीं आ सकते यही तो उनकी असीम वेदना का एकमात्र कारण है चित्रा।"

"तेरे मामाजी तो लेफ्टिनेंट करनल है, उन्हीं से कह सुन कर बुलवा न ले ?"

"ना, ना, सो मुझसे न हो सकेगा चित्रा। माँ या मामा से मैं इस विषय मे कुछ भी न कह सकूँगी।"

इस बार सचमुच ही सदा की हँसोड़ चित्रा की आँखे भर आईं। उसने मुख उठा कर नन्दिनी की ओर देखा। उसकी भी दोनो ही आँखे गीली थीं।

"देख नन्दिनी, सचमुच ही प्रेम जैसी वस्तु से मेरा भले ही परिचय उस अर्थ मे न हो जिस अर्थ को ले कर तुम जैसे दस-पाँच भावुक व्यक्ति दुःख पाते हैं, किन्तु फिर भी मैं प्रेम करना जानती हूँ; तुझे भी कुछ कम प्रेम नहीं करती। किन्तु अपने प्रेम की असीम वेदना की अग्नि मे सुदूर सात समुद्र पार बैठे हुए व्यक्ति को अकारण ही झुलसाया जा सकता है इसकी मुझे कल्पना भी नहीं हो पाती, शायद तू यह बात नहीं समझ सकेगी ?"

"काश कि तू मेरे हृदय को समझ सकती चित्रा। वह मुझे झुलसाना चाहते है यही तूने समझा है क्या ? यूँ तो मैं उनकी अर्द्धाङ्गिनी हूँ, उनके दुख-सुख की साथिन। किन्तु वह अपने दुख-सुख का भार मुझ पर लादते ही कहाँ हैं ? वह तो स्वयं ही मेरे लिए इतने अधिक चिन्तित हो उठे हैं, यही तो मुझे सबसे अधिक चुभता है।"

"किन्तु ईश्वर न करे कल को तुझे कुछ हो गया तो तेरी माँ और मासी क्या करेंगी नन्दो ? तू अपना शरीर तो ठीक रख ?"

"सो तो रखना ही पड़ेगा, माँ मासी के लिए भी, किन्तु उनसे

भी बढ़ कर उनके लिए जिनके निमित्त यह शरीर एक बार अग्नि को साक्षी करके दान कर दिया गया है। और यदि कुछ होना भी हो तो वह मुझे ही हो, उनको नारायण सकुशल रखें।"

"क्या यही तेरे दिल की बात है?"

"रोम-रोम की बात है, दिल की ही क्यों?"

"जान पड़ता है तेरी शिक्षा यथार्थ हुई है नन्दिनी। किन्तु न जाने क्यों मुझे रह रह कर भय होता है तेरे अटल अचल सहज विश्वास को देख कर।"

"सो तुम्हारे अत्यधिक स्नेह के कारण होता है चित्रा?"

"हो सकता है ऐसा ही हो।" चित्रा बहुत गम्भीर हो गई थी और नन्दिनी बहुत अधिक उदास। दोनों के मन दो विपरीत दिशाओं में घूम रहे थे फिर भी दोनों मूक थीं, मौन थीं। भीतर भयंकर झंझावात ले कर भी शान्त सी दीख रही थीं।

भाग्यहीन

"डा० कुमार, मैं बहुत ही भाग्यहीन हूँ। सम्भवतः आप यह जान बूझ कर भूल जाती हैं अथवा भूल जाना चाहती हैं।" डा० रविदत्त ने अत्यन्त दीनता से कहा।

"यह सत्य मैं किसी दिन एक क्षण के लिए भी भूली नहीं हूँ डा० रविदत्त, किन्तु जान पड़ता है अब मुझे जीवन में दुर्भाग्य सर्वाधिक ईर्ष्या की वस्तु जान पड़ने लगा है।"

"वह आपकी भावुकता है।"

"जी हाँ, यही तो भावुकता है। जहाँ अभाव नहीं, किसी भी वस्तु के लिए तरसना नहीं पड़ता, किसी भी वस्तु के लिए पर-मुखापेक्षी हो लालायित दृष्टि इधर-उधर डालनी नहीं पड़ती, वहीं तो यह कहा जा सकता है कि दुर्भाग्य भी ईर्ष्या की वस्तु है।"

इस बार शालिनी खिलखिला कर हँस पड़ी। डा० महेश खिलौना था और हरीश सम्भवतः चिढ़ने-चिढ़ाने की वस्तु। गिरीश को यह पाना चाहती थी, वह था उसकी अत्यन्त प्रलोभन की वस्तु। किन्तु डा० दत्त पर उसकी कृपा-दृष्टि थी, वह डा० दत्त की समस्त श्रद्धा, उसका समस्त प्रेम, अपने चरणों पर लोटता देखना चाहती थी। किन्तु डा० दत्त दीन-हीन सा हो कर उसकी समस्त कृपा को हलके से धक्के से परे ठेल सा देता था और यह शालिनी को कैसे सह्य होता। उसने खिलखिलाते हुए डा० दत्त के झुके हुए मुख की ओर देखा। उसे स्पष्ट ही दीख पड़ा कि उस युवक के मन-प्राण पर दरिद्रता कुछ इस तरह छा गई कि वह उसके भार को हटा कर फेंक कर निकल भी नहीं

पाना है और कन्धों पर किसी प्रकार ढो-ढा कर किनारे भी नहीं लग सकता है। शालिनी को उस पर दया हो आई।

"कुछ भी कहो आज तो तुम्हें मेरे साथ क्लब चलना ही होगा डा० दत्त।"

"डा० कुमार, आज, केवल आज के लिए क्षमा करें!"

शालिनी माँगना नहीं जानती थी। उसने जीवन भर आज्ञा देना भर ही तो सीखा था। यहाँ तक कि गिरीश के सम्मुख भी नतमस्तक हो कर निकलना उनका स्वभाव नहीं बन पाया था। वह फिर से हँस कर बोली—डा० दत्त, माता पिता किसके नहीं मरते। किन्तु कितने अनाथ निराश्रय बालक तुम्हारी तरह पढ़ लिख कर डाक्टर बन कर सैकड़ों रुपया घर ला पाते हैं। वही कर सके हो यह मान कर अपने भाग्य को सराहना तो करते नहीं, उलटे अपने आपको कोसते ही रहते हो। कैसे व्यक्ति हो तुम?"

"यह सब जान कर ही तो अपने भाग्य की सराहना नहीं कर पाता।"

इस बार शालिनी ने सहज भाव से कहा—"डा० दत्त, तुम विवाह कर डालो।"

डा० रविदत्त कुछेक क्षण चुप ही रहा। तत्पश्चात् धीमे से स्वर में कह उठा—"मैं तो विवाह कर लूँ, किन्तु कौन सी नारी मुझ जैसे व्यक्ति से विवाह करने को तत्पर होगी।"

पुरुष की प्रणय-भिक्षा, प्रणय-आवेदन तो शालिनी के लिए अपरिचित न था। किन्तु उसकी मुक्त नग्न दीनता का यह पहलू किसी दिन भी शालिनी का परिचित नहीं रहा था। शालिनी दया

से भर उठी। उसने पहली बार ही जीवन मे सरल वात्सल्य भाव से एक पुरुप की ओर देखा, उस पुरुष की ओर जो एक युग के सुदीर्घ परिचय के पश्चात् भी उसके निकट चिर-उपेक्षणीय था, चिर-तिरस्कृत था, चिर नगण्य था। डा० दत्त का हृदय भी आज अत्यन्त दीन बन कर अपनी निस्वत्व दीनता से किसी भी आँख को अपरिचित्त रखना नहीं चाहता था। डा० दत्त के सम्मुख आ गया आज प्रातः काल का दृश्य। मामी की छोटी लड़की कोई पन्द्रह दिन से पतिगृह से अपने पितृगृह आई हुई थी। उसे भीपण मलेरिया जो हो गया था। दस पन्द्रह दिन ज्यों-त्यों इलाज करवाने पर भी जब ज्वर छूटा नहीं तो उसका पति उसे स्वयं उसके पिता के घर पहुँचा गया माँ की इस आज्ञा के साथ कि रोग-मुक्त हुए बिना वह श्वशुर के घर में प्रवेश न करे। डा० दत्त ने बहनोई से समझा कर कहा भी था कि हमें बहिन को घर रखने में आपत्ति नहीं है, किन्तु रोगिणी को इतनी दूर ले कर आने की अपेक्षा इलाज वहाँ भी तो हो सकता था। इस पर न केवल बहनोई साहब ने ही बिगड़ कर घर-बार सिर पर उठा लिया वरन मामी जी ने भी रो-धो कर उसे भली प्रकार समझा दिया कि वह जो तीन सौ रुपल्ली उन्हे ला कर तीस दिन बाद देता है यह उसका कोई उन पर एहसान नहीं है वरन यह तो ऋण-शोध ही कर रहा है। और वह अनजाना अनसुना ऋण था वह अत्यन्त तुच्छ सा भोजन और फटे-पुराने उतरे-पुतरे कपड़े जिन्हे खा पहन कर पति के अनाथ भानजे ने अपनी ट्यूशनों और वजीफे के रुपयों के बल पर अनेकानेक वर्षों की अवधि बिता कर डाक्टरी परीक्षा पास की थी। अत्यन्त सतर्क

गृहिणी बहुत ही सावधानी के साथ उस निःशेप मूलधन को अक्षय बनाये हुए केवल मात्र उसके व्याज से ही घरबार का काम-काज चलाये जा रही थी। इस अकाट्य अमर सत्य का तनिक सा विरोध कर सके ऐसी शक्ति डा० रविदत्त ने अपने भीतर पाई ही नहीं, मामी ने सप्तम स्वर से यह भी घोषित कर दिया कि वह जो दया करके डा० रविदत्त के कमाये हुए धन को अपने चरणों पर ही अकारण न पड़ा रहने दे कर सावधानी से लोहे के बक्स में रख लेती हैं रविदत्त को उनकी इस असीम कृपा के भार से दबी हुई गरदन ऊपर उठाने का अधिकार किसी काल में भी नहीं है। परिस्थिति की गम्भीरता का अनुमान लगाते ही डा० रविदत्त एक गम्भीर निश्वास ले कर असमय में भोजन-पान रहित साइकिल उठा कर हस्पताल आ गया था। अन्याय का विरोध न कर सकने की अपनी दुर्बलता पर वह मन ही मन क्षोभ से जला जा रहा था। जठराग्नि की ज्वाला और क्रोधाग्नि की पीड़ा से उसकी आत्मा सूखने सी लगी। दिन भर कठोर परिश्रम और पानी के दो-चार गिलास ले कर उसका मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। इसी समय डा० कुमार ने उसे साग्रह आमन्त्रित किया क्लब चलने के लिए।

कच्चे फोड़े पर तनिक सी ठेस लगते ही वह दुखता तो है किन्तु फूट नहीं पड़ता। पक्के फोड़े पर तनिक सी ठेस बहुत गहरी करके लगती है और वह फूट जाता है। डा० रविदत्त सदा सर्वदा ही अपने दुर्भाग्य को ले कर रोते ही रहते हो सो बात तो नहीं है। किन्तु आज मन तो पहले से ही भरा हुआ था, डा० कुमार का आमन्त्रण ठेस का काम कर गया। किसी एक सुनहरे प्रातः में

कब और कैसे कलिज के लान में चलते फिरते रविदत्त ने अपने आपको सर्वथा निस्वत्व करके शालिनी के चरणों मे समर्पित कर दिया था सो स्वयं रविदत्त भी नही जान पाया था, किसी दिन थी नहीं। उस दिन भी नहीं, और फिर जब महेश ने शालिनी को पाना चाहा था तब भी नहीं और आज भी नहीं। उसने कभी अपने इतने बड़े सौभाग्य की स्वप्न मे भी परिकल्पना नहीं की थी। ऐसा भारी उसका साहस ही कहाँ था। किन्तु जब एक दिन शालिनी ने स्वयं ही अयाचित, अनिमन्त्रित और अचानक ही उसे आदर और स्नेह से ग्रहण करना चाहा था तब जान बूझ कर वह अपने हृदय के कपाट भी नहीं दे पाया था। उसे भय था किन्तु द्विविधा नही, उसे सन्देह था किन्तु शंका नही।

और आज इस निमन्त्रण ने तो उसे अपनी दुर्बलता, कायरता का मानो नग्न रूप ही दिखा दिया। वह चिढ़ उठा स्वयं अपने आपसे, अपने जीवन से, अपने जगत से। तब ही तो विरक्ति की तीव्रता ने बरबस उसके मुख से अपनी समस्त दीनता की कहानी अचानक ही कहला दी। शालिनी इस प्रकार की कथा से न तो परिचित ही थी और न उसके लिए तत्पर ही। उसने चट से रवि का हाथ अपने हाथ में ले कर कोमलता से कहा—"रवि अपने आपको पहचाना जा सकता है क्या? फिर भी पहचानना सीखो। जानते हो सचमुच में छोटा वही हो जाता है जो अपने आपको न पहचान कर छोटा बना डालता है।" एक प्रकार से घसीट कर शालिनी डा० रविदत्त को फाटक से बाहर ले आई। रविदत्त ने धीमे स्वर मे कहा—"शायद"। शालिनी ने वह सुन कर भी नही सुना।

सत्य-दर्शन

"माथे में दो आँखें होने से ही सदा सर्वदा सब ही को सत्य के दर्शन सहज ही हो जाते हों सो बात नहीं है। फिर भी जो सत्य को एक बार आँखें खोल कर देख पाते हैं, मन-प्राण खोल कर ग्रहण कर पाते हैं, वह फिर प्रयत्न करके भी उसे भूल पाते नहीं है। किन्तु वैसा भाग्य क्या सब किसी का होता है ?"

"नहीं होता यही तो मैं भी कहती हूँ, किन्तु कौन जाने किसी दिन हरीश ने उस सत्य के दर्शन किये भी हैं अथवा नहीं।" शालिनी ने मजाक बनाते हुए कहा। किन्तु सुवीरा अप्रतिभ नहीं हुई। सुवीरा कम बोलती थी किन्तु जो कुछ बोलती थी पूर्ण विश्वास और सत्य की ध्वनि पूर्ण।

"अवश्य किये हैं, तब ही तो वह निरन्तर उठने वाली बम के गोलों जनित भीषण काल की छाया के तले खड़े खड़े मजे से शत्रुओं की टोली के प्रति अपने कर्तव्य कर्म की मीमांसा न करके अपने रोगियों की सेवा में ही अपने आपको मन-प्राण से रत कर पाया था।" उत्तर दिया डा० रविदत्त ने।

शालिनी का विरोध प्रायः कम ही किया जाता है। विरोध सह सकने योग्य मानसिक सहिष्णुता भी शालिनी के लिए स्वाभाविक नहीं है। फिर भी आज उसने अपने सदा की घृणा के पात्र हरीश का पक्ष लेने वाले डा० रविदत्त पर कोप प्रकाशित नहीं किया, व्यंग भी नहीं किया। केवल मात्र तनिक-सा हँस दी। सुवीरा भी तनिक-सा मुसकरा कर ही रह गई। किन्तु

इस बार फिर बोली स्वयं डा० शालिनी कुमार—"सचमुच ही सुवीरा, सत्य के दर्शन सब ही को नहीं होते, किन्तु प्लूरसी भी तो सब ही को नहीं होती; टी० बी० भी सब ही को नहीं होती और फिर यह भी आवश्यक नहीं है कि सत्य सदा सब के लिए एक-सा ही हो।"

बात काट कर उत्तर दिया इस बार भी डा० दत्त ने—"डा० कुमार, सम्भवतः आपके सत्य की व्याख्या डा० सुवीरा के सत्य से मिलेगी ही नहीं। विरोध कहाँ और कैसा होगा सो तो पता नहीं, फिर भी यह निश्चित है कि उसमें और डा० सुवीरा की व्याख्या में बहुत अधिक अन्तर होगा।"

"और सम्भवतः वह अन्तर ही सबसे अधिक सत्य होगा, क्यों ना?" कह कर डा० कुमार अकारण ही खिलखिला कर हँस पड़ी और साथ ही हँस पड़ा हरीश का समर्थक डा० रविदत्त भी। गिरीश एक ओर एकान्त मेज पर बैठा लेमोनेड पी रहा था। एकाएक उधर दृष्टि पड़ गई डा० शालिनी कुमार की। उसने सहज ही हँस कर कहा डा० दत्त से—"आप दोनों बैठ कर सत्य की मीमांसा करें, मैं तब तक जरा डा० गिरीश से बातचीत कर लूँ। ठीक है ना?" कह कर उत्तर की अपेक्षा किये बिना ही शालिनी उठ कर खड़ी हो गई। साड़ी का पल्ला ठीक करते हुए शालिनी ने कहा—"सुवीरा, मैंने किसी दिन भी सत्य को जानने का प्रयत्न नहीं किया। रही हूँ आज तक केवल अपने निजी विश्वास, निजी सिद्धान्त और निजी कार्य-प्रणाली को ले कर ही। भले ही वह प्रवंचना हो, आत्म-प्रतारणा हो अथवा और ही कुछ हो; किन्तु उसी से मुझे आज तक सुख मिला है। अतः वह मेरे

लिए सत्य है। और यदि उसे सत्य न कह कर किसी और ही नाम से पुकारा जाय तो भी मुझे रत्ती भर भी विरोध न होगा।"

"आपने अपने चारों ओर को, अकारण और अनावश्यक खींची हुई कृत्रिम रेखाओं को, अपने मन के सहज विश्वास को, अपने सिद्धान्तों की अथवा अपने आनन्द की कल्पना और भावना से कुछ इतना अवगुण्ठित कर लिया है कि अब उन सब के चिह्न तक भी दीख पड़ते नहीं। अतः आपके लिए सत्य के दर्शन भले ही अनावश्यक हो उठे, किन्तु हमें तो उसी सत्य का आश्रय है कि जिसे कि अपने जीवन में ध्रुव तारे की भाँति हम ग्रहण करके निश्चिन्त हो जाना चाहते हैं, जिसके पश्चात् हमें फिर अन्य किसी मार्ग खोजने के साधन की आवश्यकता रह जाती ही नहीं है, जिसके ऊपर एक बारगी अपना समस्त कार्यक्रम छोड़ कर हम एकान्तरूप से निर्लेप और शान्त हो जाना चाहते हैं।"

शालिनी के धैर्य की सीमा हो चुकी थी, वह बीच में ही टोक कर कहने लगी नाटकीय ढंग से दोनों हाथ ऊपर उठा कर—"रक्षा करो, रक्षा करो, विश्व भर के सद् देवताओं, इस लम्बी चौड़ी विचित्र व्याख्या से रक्षा करो। सत्य के दर्शन करने से सम्बन्धित व्याख्या ही यदि इतनी अरुचिकर है तो फिर जाने दो, जाने दो, इस सत्य की मुझे आवश्यकता नहीं है।" शालिनी के कहने के ढंग से सुवीरा और रविदत्त दोनों ही बड़े ज़ोर से खिलखिला कर हँस पड़े और उन दोनों की ओर देख कर स्वयं शालिनी कुमार भी हँस पड़ी। सुवीरा ने हँसते हँसते कहा—"सचमुच ही डा० कुमार आपको सत्यदर्शन की आवश्यकता नहीं है, सचमुच नहीं है, बिलकुल नहीं है। सम्भवतः आप जैसे

मानसिक बल से पूर्ण व्यक्ति ही तो सत्य की मौलिक व्याख्या कर पाते है, सत्य-दर्शन के मौलिक पथ का निर्देशन कर पाते हैं।"

"और जो कुछ हो, सुवीरा जब मुख खोलती है तो बहुत ही साहित्यिक सुन्दर भाषा इन दो होठों से निकलती है। कैसे निकलती है यही मेरे लिए घने आश्चर्य की बात है।"

"यह आप क्या सचमुच हृदय से कह रही हैं डा० कुमार ?" डा० रविदत्त ने आश्चर्य से भर कर कहा।

"सो न होगा इसकी मीमांसा फिर किसी दिन आराम से कर ली जायेगी। इस समय तो मैं ज़रा उस एकान्तवासी के साथ जीवन के नितांत खुले रूप की आलोचना करने जाती हूँ। कह कर शालिनी ने मधुरता से गिरीश की एकान्त मेज़ की ओर एक अँगुली से संकेत कर दिया और फिर उधर ही चल दी। इसी समय क्लब मे और दो-चार जोड़े आ गये। श्रीमती चावला तो सुवीरा को दूर से देखते ही उछल पड़ी—'ओह, आज तो भला मिसेज हरीश भी क्लब के प्रांगण की शोभा बढ़ा रही हैं। आज बड़ा ही शुभ दिन है। और लो, डा० दत्त भी यहां बैठे हैं।" कहती कहती श्रीमती चावला सुवीरा की ही मेज़ पर आ कर अपना स्थूल शरीर किसी प्रकार एक साधारण सी कुर्सी पर टिका कर कहने लगी—"कहाँ थीं इतने दिन मिसेज़ हरीश ? कई बार डा० गिरीश से कहा कि तुम्हें भी क्लब ले आया करें पर वह भला सुनते हैं किसी की।"

"उनका घर भी तो मेरे घर से कुछ पास नहीं है और फिर इन दिनों हस्पताल का काम इतना बढ़ गया था कि उनको समय ही नहीं मिलता था ठीक समय पर क्लब आने का। जब कभी थोड़ा-

बहुत अवकाश होता था इधर आ जाते होंगे और मुझे तो उतना अवकाश भी नहीं था।"

"इसीलिए शायद डा० कुमार भी कम दीख पड़ती थीं।"

"ऐसा ही तो।" कह कर सुवीरा ने बेयरर को बुला कर तीन गिलास 'विमटो' लाने के लिए कहा। अत्यन्त व्यस्त हो कर श्रीमती चावला कहने लगी—"नहीं, नहीं, अभी रहने दो, मैं विमटो नहीं पीयूँगी। अभी तो चाय पी कर आ रही हूँ।"

सुवीरा ने श्रीमती चावला को कोई उत्तर न दे कर डा० रविदत्त से ही प्रश्न किया—"आप टैनिस खेलेंगे?"

"अभ्यास तो नहीं है।"

"न सही, मिसेज चावला बड़ी अच्छी खिलाड़ी हैं। इनके साथ खेलने से अभ्यास हो ही जायगा।"

श्रीमती चावला ने मजाक बना कर कहा—"आजकल तो इन्होंने डा० कुमार को गुरु रूप मे ग्रहण कर लिया है।" सुवीरा ने हँस कर कहा—"कुछ बुरा तो है नहीं, उनसे सीखेंगे और आपके साथ अभ्यास कर लेंगे।"

"उनसे बहुत कुछ सीखा जा सकता है मिसेज हरीश, वह तो सर्वगुणसम्पन्ना हैं ना। उन्हे गुरु बना कर कोई भी निश्चिन्त हो कर चल सकता है, भले ही फिर वह कुएँ में गिरे अथवा खाई मे।"

तीनों जोर से हँस पड़े।

इसी समय शालिनी गिरीश से कह रही थी—"यह क्या ढंग है एकान्तवासी संन्यासी जी महाराज! यहाँ अकेले में बैठे क्या कर रहे हो?"

गिरीश शालिनी से बहुत घबराता था। यहाँ तक कि कभी-

कभी तो उसकी छाया से भी बच कर निकल जाना चाहता था। किन्तु शालिनी, गर्विणी शालिनी, यदि विश्व भर मे किसी को स्वयं आगे बढ़ कर बुलाती थी, बुला सकती थी, तो वह था गिरीश। गिरीश के अतिरिक्त उसने स्वयं आगे बढ़ कर कभी किसी को आकर्षित नहीं किया था, गिरीश की उदासीनता ही सम्भवतः शालिनी के आकर्षण का सर्वाधिक प्रबल कारण थी। शालिनी के निकट गिरीश एक विचित्र और नवीन अनुभव था। उसने देश और विदेश सब ही कहीं पुरुषो से परिचय किया था। उन्हे अपने साधारण से मुख और साधारण से शरीर पर मोहित होते, चरणो पर सिर रखते, देखा था। किन्तु स्वयं किसी दिन भी उनके निकट होने की आकांक्षा हृदय मे आ नहीं सकी थी। पर गिरीश, उदासीन गिरीश, वह न जाने क्यो बरबस शालिनी के विचारों का केन्द्र बन जाता है। शालिनी उससे चिढ़ उठती है। उसकी उपेक्षा शालिनी के हृदय मे शूल की भाँति चुभ जाती है। वह निश्चय करती है गिरीश को अपने जीवन से एकबारगी बाहर निकाल देने का। किन्तु होता कहाँ है यह सब कुछ? हो पाता ही कहाँ है यह सब कुछ? और मानिनी शालिनी मान त्याग कर फिर पहुँच जाती है गिरीश के निकट हृदय की समस्त मधुरता लिये हुए, मन-प्राण की समस्त मृदुता लिये हुए। और फिर? फिर वही कथा, उसकी पुनरावृत्ति। शालिनी के अपनत्व से भरे प्रश्न ने गिरीश मे भी कुछ रस ज्ञान उत्पन्न कर दिया। वह सहज भाव से हँस कर बोला—

"यदि कहूँ कि आपकी प्रतीक्षा कर रहा था तो?"

"अरे, तो मैं तनिक सा भी विश्वास न करके कहूँगी—आज

दिन तक तो समझती रही हूँ कि गिरीश पत्थर है, आज से कहूँगी कि वह मिथ्याभाषी भी है।"

"बैठो शालिनी, क्या पियोगी ?"

"जो पीने की इच्छा है वह तुम मँगा नहीं सकोगे अतः जाने दो। आज तो यूँ भी मुझे पीने की कमी न होगी। जानते हो क्यों ?" कुछ विशेष महत्त्व सा अपने स्वर मे भर कर कहा शालिनी ने।

"नही।"

"आज मेजर निसार अहमद के साथ मेरा नृत्य का प्रोग्राम है और डिनर भी उन्हीं के साथ होगा।"

"किन्तु मिसेज़ निसार अहमद का तो परसों आपरेशन हुआ है।"

"हाँ, सो तो तुम्हीं ने किया है। किन्तु उससे क्या ?"

"ऐसी अवस्था मे जब कि उनका दिल कितना कमज़ोर है। मेजर निसार अहमद का उनके पास रहना आवश्यक है।" बड़ी गम्भीरता से कहा गिरीश ने। इस बार शालिनी खिलखिला कर फिर हँस पड़ी।

"डा० गिरीश, डाक्टरी में क्या केवल मानव-शरीर की ही आवश्यकताओं, रुचि, अभिरुचि का अध्ययन किया है ? उसके भीतर रहने वाले मन की रुचि-अभिरुचि जानने का किसी दिन भी प्रयत्न नहीं किया ? शायद नहीं किया है। यदि करते तो इस समस्या का हल तुम्हें सहज ही मिल जाता।"

"शायद न भी मिलता। किन्तु एक और समस्या का हल नहीं कर पाता हूँ डा० कुमार।"

"मेरा नाम शालिनी है गिरीश ।" गिरीश अप्रतिभ तो हो गया, किन्तु क्षणेक चुप ही रहा। बड़े तपाक से कहे गये वाक्य का उत्तर मौन में पा कर शालिनी के मुख की दीप्ति एकबारगी जल कर मानो बुझ सी गई। उसकी दोनो आँखे धीमी सी हो गई। फिर भी शालिनी हार मानने वाली जीव तो थी ही नही। उसने साहस से एक बार मुख उठा कर फिर कहा—"गिरीश, उस समस्या की बात तो तुमने कही ही नही जिसे कि तुम हल नही कर पाते हो।"

"जाने दीजिये; जिस समस्या का आदि नहीं, अन्त नहीं, संभवतः मध्य भी नही, जिसे समझ नही पाता और हल भी नहीं कर पाता, उस समस्या की बात भी क्या करनी। शालिनी इस बार मौन थी। गिरीश ने कुछ ठहर कर स्वयं कहा—लीजिये, घड़ी की सुइयाँ तो अत्यन्त शीघ्रता से बढ़ रही है। आपकी एंगेजमेंट मेजर निसार अहमद के साथ शायद साढ़े सात से होगी।"

"नही, नहीं, अभी तो बहुत समय है। चलो न तब तक कुछ देर टहला जाये।" अपेक्षाकृत यह स्थान एकान्त था। क्लब जीवन की वास्तविक चहल-पहल यहाँ तक कुछ अधिक नही पहुँच पाती थी। इसीलिए गिरीश यहाँ बैठना पसन्द करता था। उसने सहज भाव से कहा—"आपके साथ घूमना अत्यन्त रुचिकर जान पड़ता है; किन्तु बस, आज और नही। आपको भी जाना है, साढ़े सात बजने लगे हैं; और मुझे भी एक बार हस्पताल जाना ही होगा। तो चलूँ ना।" आज्ञा लेने के स्वर मे डा० गिरीश ने कहा।

शालिनी कुछ संकुचित हो गई। आस पास कोई भी नही था यहाँ तक कि डा० दत्त, सुवीरा और मिसेज़ चावला भी टैनिस

कोर्ट की ओर चले गये थे। आस पास की सब मेजें एकदम खाली थी। खेलों के मैदानों की ओर से कोलाहल का शब्द सुन पड़ता था। शालिनी ने अचानक गिरीश का हाथ पकड़ कर कहा—"गिरीश, तुम मुझसे इतना भागते क्यों हो? मैंने तो कभी तुम्हारा अहित नहीं चाहा। सदा तुम्हारे कार्य में लाभ ही पहुँचाना चाहा। फिर भी क्या तुम मुझसे घृणा करते हो?"

गिरीश ने मुख उठा कर शालिनी की ओर देखा। उस समय भी शालिनी के शरीर पर बाहों से रहित, बहुत नीचे गले की चोली के ढंग पर सिया हुआ ब्लाउज था। गरदन के पीछे से गहरी नसवारी रंग की साड़ी की जरीदार किनारी का कुछ अंश झाँक रहा था। अत्यन्त कुशलता से बनाये सजाये मुख पर कृत्रिमता का तनिक-सा भी आभास दीख नहीं पड़ता था। गिरीश को जीवन में पहली बार ही जान पड़ा आज कि शालिनी की दोनों आँसूभरी आँखों की लालिमा सजीव है, जाग्रत है, और है वास्तविक। उसका जी चाहा कि इस गर्विणी नारी को सहज भाव से ग्रहण कर ले, किन्तु इसी समय उसकी कल्पना-दृष्टि में उदय हो गया एक अन्य नारी का खादी की साड़ी से घिरा हुआ कोमल-सा मुख और दो उज्ज्वल नेत्र। गिरीश ने तुरन्त ही अपने आपको सँभाल लिया। वह सदा का ही गम्भीर था। दीनतापूर्वक रोना उससे बन नहीं पड़ता था और अत्यधिक कठोर होना भी उसके स्वभाव के सर्वथा विरुद्ध था। उसने धीरे से अपना हाथ शालिनी के हाथ की मुट्ठी से निकाल लिया और फिर डूबे से स्वर में कहा—"शालिनी, मैं भला तुमसे घृणा क्यों करूँगा। मैं तो तुम्हें अत्यन्त श्रद्धा की ही दृष्टि से देखता हूँ।

सचमुच ही यदि तुम और सुवीरा न होतीं तो मेरे हस्पताल का क्या होता कौन कह सकता है।"

शालिनी तो यह सब सुनना चाहती नहीं थी और सो भी सुवीरा के नाम के साथ मिला कर। वह जल उठी सिर से पैर तक। उसका मूल्य है केवल हस्पताल मे काम करने के लिए। स्वयं उसका अपना निजी कोई मूल्य ही नहीं है। शालिनी की दोनो आँखे जल उठीं। पानी सूख गया, अग्नि भर गई। फिर भी वह संयत स्वर से बोली—"या तो तुम मूर्ख हो और या धूर्त गिरीश। पर जाने दो, अब यह सब नहीं कहूँगी। सचमुच ही मेरा अब मेजर निसार अहमद के साथ प्रोग्राम है, अतः तुम अकेले ही यहाँ बैठो अथवा हस्पताल जाओ; मैं तो अब चल दी।" उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही शालिनी उठ खड़ी हुई, मेज़ पर रक्खा हुआ पर्स उठाया और चल दी। गिरीश रात्रि-दिवस के सन्धि-स्थल के बीच से जाती हुई उस नारी की पीठ को ही एकटक देखता रहा और फिर एक हलकी निश्वास छोड़ कर उठ खड़ा हुआ। शालिनी सोचती जा रही थी—"क्या सत्य है और क्या मिथ्या? सत्य दर्शन……कौन से सत्य के दर्शन …. जीवन मे होने वाले विभिन्न घटनाचक्र के भीतर से साधारण आनन्द दल को खींच घसीट कर बाहर निकाल लाने का सत्य अथवा मन को बरबस घेर घोट कर अँधेरी कोठरी में संयम के नाम पर कैद रखने को कटुता का अनुभव करके भी उसे सत्य का नाम दे कर जीवित रखने वाला सत्य।"

और गिरीश, वह अवाक् था नारी की पीठ की ओर देखता हुआ।

ज्ञान

"तुम पढ़ी लिखी लड़कियों के संपर्क में इसीलिए तो मैं आती नहीं हूँ कि तुम लोग कहीं हम मूर्खों को बनाना ही न शुरू कर दो।" बहुत दिनों बाद आज गिरीश की भाभी मिसेज उमेशचन्द्र लेडीज क्लब में आई थीं।

"आप चाहे जो कहें, किन्तु मैं तो उसका इस प्रकार जीवन नष्ट करना किसी आदर्श की भित्ति पर खड़ा कर सकूँगी नहीं।" कह कर श्रीमती अनिला चौधरी एम० ए०, एल-एल० बी० हँस दीं।

"तब कहती क्या हैं आप? बिमला अपने अपाहिज दुःखी श्वशुर को भाग्य के भरोसे छोड़ कर मायके चली जाये?" आश्चर्य से मिसेज उमेशचन्द्र ने पूछा।

"और क्या वैधव्य की यातना के साथ ही साथ बूढ़े लकवे के मारे श्वशुर का भार ले कर अपनी बी० ए०, बी० टी० तक पाई हुई शिक्षा को चूल्हे-चक्की और श्वशुर के कफ-थूक साफ करने में ही नष्ट करती रहे?"

"पर वह ऐसा तो स्वेच्छा से ही करना चाहती है। उसके श्वशुर तो स्वयं ही उसे भेजना चाहते हैं। पर वह किसी प्रकार भी उन्हें छोड़ कर जाना नहीं चाहती। तो क्या कुछ उसके साथ अन्याय है?"

मनोविज्ञान की असाधारण पंडिता श्रीमती कला धवन एम० ए० बोल उठीं इस बार—"अरे भई, अभी तो वह यश की लिप्सा

मे पड़ कर आदर्श बनने के स्वप्न देख रही है। किन्तु दो-चार साल बाद जब प्रशंसा का, आदर्शों का, पहला नशा उतर जायेगा तब यही उसको इह लोक की पीड़ा का सबसे बड़ा कारण होगा।"

"सम्भवतः वह समय नहीं आयेगा मिसेज़ धवन। विमला नासमझ भी नहीं है और प्रशंसा के पीछे पागल होने वाली भी नहीं। उसने जो कुछ निश्चय किया है सोच समझ कर ही तो किया है।" मिसेज उमेशचन्द्र ने गम्भीर श्रद्धा से कहा।

"खाक पत्थर सोच समझ कर किया है। मेरे सामने की तो बात ही है। मिस्टर चोपड़ा बिस्तर पर पड़े आखिरी घड़ियाँ गिन रहे थे। अचानक उन्होंने विमला को पास बुला कर कहा "विमला, पिताजी · ·" और अधिक कह ही नहीं पाये और प्राण निकल गये। भला पति मर भी गया, क्रिया कर्म भी हो गया, चालीस दिन बीत गये। माँ और बाप दोनों तीन-तीन बार आ आ कर लौट गये, पर विमला है कि एक ही रट लगाये है कि मै तो अपने श्वशुर के ही पास रहूँगी। उस दिन मेरे सामने ही उसके श्वशुर ने कहा—"बेटा विमला मेरे पीछे क्यो प्राण देती है ? मै बचूँगा थोड़े ही। बेटा, तू अपने पिता के घर हो आ दो-चार दिन को। मेरा तो चलाचली का मेला है।" पर विमला न कुछ बोली न चाली। पिता से आ कर कर दिया—"पापा, आप तो स्वस्थ्य हैं, पर मेरे धर्म के पिता रोगी है, अपाहिज है, उन्हे छोड़ कर तो मै स्वर्ग भी न जाना चाहूँगी।" मिसेज़ कपूर कथा सुना गईं।

"विमला की ही शिक्षा यथार्थ हुई है।" मिसेज़ उमेशचन्द्र

के मुख पर सान्त्वना के चिह्न दीख पड़े। पर अकारण ही उत्तेजित हो गई श्रीमती चौधरी। लाल मुख से बोल उठीं—"हाँ, और हम सब तो मूर्ख हैं ना ? देखेंगे विमला सती सावित्री बन कर स्वर्ग जायेगी और शेष सब ही तो नरक में ही जायेंगी ना ?"

मिसेज कपूर ने कहा—"भई सास-ससुर हमारे भी हैं। सेवा करना भी हम जानती हैं। किन्तु यह सब तो पति के साथ ही होता है ना ! जब पति ही मर गया तो श्वशुर से क्या सम्बन्ध ? और अकेली विमला ही तो बहू है नहीं। उस घर मे और भी तो तीन बहुएँ हैं। यह सब ढोंग ससुर को ठगने के लिए है।"

मिसेज उमेशचन्द्र ने फिर प्रतिरोध किया—"किन्तु विमला को तो धन की कोई कमी ही नहीं है। आखिर उसके माता पिता का इतना धन किस दिन काम आयेगा। वही तो एकलौती संतान है मिस्टर सेठ की।"

कुछ महिलाओं ने सुन कर मुँह बिचका लिया, कुछ तनिक सा हँस दीं ? पर अधिकांश जैसे उत्तर देने को तत्पर हो रही थीं। इस बार फिर मनोविज्ञान की पंडिता मिसेज धवन अपने हाल में बनाये मछली के आकार के कानो के कुण्डल तनिक से हिला कर बोलीं—"बुरा न मानना मिसेज उमेशचन्द्र, आप लोग कम पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ चौका, चूल्हा, सेवा आदि करे तो उचित ही है, और आप लोग करे भी क्या ? खाली बैठे तो दिन ही ना कटे। पर हम जैसी पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ तो देश जाति आदि के सुधार के और भी बहुत से कार्य कर सकती हैं। हम

लोगों का अपनी समस्त शक्ति को रोक कर घर में बैठे रहना शक्ति का राष्ट्रीय ह्रास ही तो है।"

"हो सकता है ऐसा ही हो, किन्तु विमला का निष्कपट स्नेह ही, देख लेना, उस परिवार का स्थायी आधार होगा।" भाभी ने कहा।

"किन्तु इससे विमला को क्या मिलेगा ?"

"उसे मिलेगी आत्मोन्नति, हृदय की स्वच्छता और श्वशुर का सस्नेह आशीर्वाद।"

"किन्तु इतनी सी ही पूँजी ले कर क्या वह अकेली संसार-यात्रा कर सकेगी ?" इतनी देर बाद मिसेज़ शर्मा ने जिज्ञासा से पूछा।

"कर सकेगी बहिन, अवश्य कर सकेगी, यह तुम निश्चय जानना। जो नारी पति की रोग-शय्या के सुने दो शब्दों को ले कर जीवन-यात्रा आरम्भ करने का साहस रखती है, संसार के विभिन्न उन्मुक्त प्रलोभन भी जिसे उस पथ से हटा पाते नहीं है, उसके लिए किसी प्रकार की चिन्ता कर सकना हम लोगों के लिए सम्भव नहीं होगा। उसकी चिन्ता वही करेंगे जिन्होंने उसे हस्त दक्षिण से रचा है।

"बहिन, तुम तो सतयुग मे उत्पन्न हुई होती।" मजाक सा बनाते हुए कुमारी जोसफ एवेलीन ने कहा।

"इनका घर ही सतयुग है, जानती नहीं हो मिस एवेलीन। एक देवर है, वह संन्यासी है और सास पुजारिन।"

मिसेज चौधरी के मुख फुलाये हुए विचित्र से कहने के ढंग पर सब हँस पड़ीं। स्वयं मिसेज़ उमेशचन्द्र भी हँस दीं, किन्तु

जोसफ ऐवेलीन का मुख फीका पड़ गया। किसी दिन वह भी गिरीश के मित्रों में गिनी जाती थी।

"तुम कुछ भी कहो बहिन, मै तो उस अठारह वर्ष की नन्हीं सी लड़की विमला को श्रद्धा की दृष्टि से देखे बिना नहीं रह सकूँगी। भले ही इसे मूर्खता कहो अथवा नासमझी। किन्तु इसी मूर्खता, इसी नासमझी, पर करोड़ो हज़ारो बुद्धि-पुंज सहज ही न्योछावर किये जा सकते हैं।"

"चलो विमला को अभी से भक्त मिलने आरम्भ हो गये।"

"मिलेंगे, अवश्य मिलेंगे, यह भारत-देश है ना। यहाँ तो लकुटी अरु कामरिया पर न्योछावर होने वाले और तीनों लोको का राज्य न्योछावर करने वालों की कमी किसी भी युग मे न होगी।"

आज क्लब मे वसन्तोत्सव था। इसी समय क्लब की मन्त्रिणी ने खाने-पीने के लिए लोगों को बाहर चल कर बैठने का निमन्त्रण दिया। सब ही उठ-उठ कर बाहर जाने लगी। भीड़ कम होने पर मिसेज शर्मा ने मिसेज उमेशचन्द्र का हाथ पकड़ कर कहा—"बहिन, क्या तुम निश्चय पूर्वक कहती हो कि विमला को अपने आज के निश्चय पर कभी पश्चात्ताप न होगा।"

"सच ही तो बहिन, ऐसा मेरा विश्वास है।"

"पर सब ही तो कहते हैं कि वह भयंकर भूल कर रही है। पुनर्विवाह कर लेना चाहिये। अठारह वर्ष की आयु की वह विधवा समाज का कलंक सिद्ध होगी।"

"बहिन, विमला तुम्हारी भानजी है इसी से नहीं कह रही

हूँ, वरन् सचमुच ही मेरा विश्वास है कि ऐसे दृढ़ निश्चय वाली बालिका का पथ कभी और किसी कारण से भी इतना संकीर्ण न हो उठेगा कि वह उस पर भली प्रकार चल न सके।"

दोनो बाहर आ गईं। भाभी के मन-प्राण पर गूँज रही थीं मिसेज चौधरी और मिसेज कपूर की उक्तियाँ। भाभी ने मन ही मन कहा—"यही विचारधारायें क्या भारत की पारिवारिक शान्ति को छिन्न-भिन्न कर उसके जीवन के यथार्थ सत्य को ही विदीर्ण न कर डालेंगी? क्या मनुष्य का मूल्य इस युग मे केवल मात्र उसका लौकिक उपयोग मात्र ही रह जायेगा?" अनजाने ही एक गम्भीर निश्वास निकल गई।

रोगिणी

मालती के सुमनों और आम्र बौरों की सुगन्ध की धीमी-सी वायु लहरी के साथ ही नन्दिनी ने धीमे स्वर में सुना "जीजी !" उसने तुरन्त ही आँखें खोल कर अन्धकार में कुछ खोजते हुए कहा—"हाँ । नलिनी, क्या है ?"

"नींद नहीं आई क्या ?"

"आती ही कब है बहिन !" कह कर नन्दिनी स्वयं सहम-सी गई। उसे जान पड़ा कि उसने कहीं कोई अपराध कर डाला है। उसका वाक्य अन्त तक पहुँचते-पहुँचते काँप रहा था।

"लो, यह रख न लो, मैं तीसरे पहर फिर आऊँगी।" कह कर नन्दिनी की देवरानी ने थोड़े से पुष्प और आम्र मंजरियाँ नन्दिनी के सिरहाने रख दीं।

"नलिनी, खिड़की खोल दे बहिन।"

"अभी खोलती हूँ जीजी।" खिड़की खोल कर नववधू नलिनी कमरे से बाहर चली गई। नन्दिनी थकित नेत्रों से आकाश की ओर देखने लगी। आकाश का तनिक-सा भाग ही खुली खिड़की से दीख पड़ता था, किन्तु नन्दिनी उसे दोनों नेत्रों द्वारा बरबस पकड़ कर मानो जीवन पाथेय के रूप में ग्रहण कर लेना चाहती थी। उसका हृदय आज दिनारम्भ से ही अशान्त था, थकित था। फिर भी उसने ज्यों-त्यों गिरते-पड़ते उठते-बैठते नित्य-कर्म समाप्त किये। फिर थक-थका कर

अधमैले बिस्तर पर आ कर लेट गई। उसका कवि-हृदय विषाद से भर उठा। नन्दिनो की इच्छा हुई कि एक बार उच्च स्वर से हाहाकार कर उठे, किन्तु वैसा साहस नहीं हुआ। उसे दीख पड़ा कल्पना मे वह दिन जब महेश का पत्र उसे मिला था। उसने लिखा था—"सम्भवतः यही मेरा अन्तिम पत्र है। हम लोग शत्रु से घिर गये हैं। इधर मेरा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है। सचमुच ही हम लोगो ने एक सूत्र मे बँध कर अन्याय किया। इसका अन्त क्या होगा कौन कह सकता है। किन्तु जान पड़ता है और अधिक इस जन्म में मैं सह पाऊँगा नहीं।" उसी पत्र को हाथ में ले कर अनजाने ही नन्दिनी न जाने कितनी बार दोहरा गई। उसी अन्यमनस्कता में वह कब अपने कमरे मे बिछे बिस्तर पर आ कर लेट गई सो उसे याद नहीं पड़ता। और फिर चित्रा, उसने आ कर माथा छूते ही कहा—"सो ही तो, सो तो मै आँखे देख कर ही समझ गई थी। तो आपको ज्वर है। होना ही चाहिये। इधर आठ मास मे अठारह पाउंड वजन कम हो जाना भी तो कोई साधारण बात नहीं है। ज्वर न होता तब ही आश्चर्य की बात थी।" और फिर उसके आदर यत्न की सीमा नही रही। किन्तु स्वयं उसने, नन्दिनी ने, शान्त भाव से यही तो कहा था—"वह रोगी हैं चित्रा।" चित्रा के कंठ में सम्भवतः अत्यन्त कटु उत्तर आया था, किन्तु उसने मुख से कुछ भी नही कहा और इसी तरह आदर यत्न में फिर बीत गये सुदीर्घ पन्द्रह दिन। फिर एक दिन व्याकुल कण्ठ से चित्रा ने पूछा था डाक्टर से "टाईफाईड तो नहीं हो गया है डा० साहब।" डाक्टर से स्थिर कंठ से ही कहा था—"नही

टाईफ़ाईड तो जान नहीं पड़ता, फिर भी एक बार रक्त-परीक्षा तो करनी ही पड़ेगी। न होगा एक बार आपके होस्टल की डाक्टरनी से भी विचार-विनिमय कर देखेंगे।" और नन्दिनी, उसे तो विश्व ब्रह्माण्ड की चेतना ही न थी। वह तो अपने अग्नि को साक्षी मान ग्रहण किये हुए स्वामी के कल्याण की कामना को लिये हुए ही व्यस्त थी। वह भावुक है ना, अत्यधिक भावुक। केवल शून्य दृष्टि से चित्रा की ओर ताक कर वह कभी-कभी समय-असमय कह उठती है—"चित्री वह आये?" और चित्रा के नेत्र अचानक भीग उठते हैं यद्यपि वह किसी दिन भी भावुक न तो थी ही और न है ही। अन्त में एक दिन चित्रा ने नन्दिनी की मामी और सास को तार द्वारा नन्दिनी के रोग की सूचना दे ही दी। नन्दिनी की विचार धारा फिर रुक गई। बाहर आम के पेड़ पर कोयल बोल रही थी। घर के निचले खण्ड से कहारी के बरतन मलने का शब्द सुन पड़ता था। बरतनों की रगड़ के शब्द ने कोयल के स्वर के साथ मिल कर नन्दिनी के कानों में एक कर्ण कटु सा स्वर उपस्थित कर दिया। वह बिस्तर पर उठ कर बैठ गई। कानों में कुछ देर अँगुली डाले रही और फिर थक कर लेट गई। नीचे से बहुत से स्वर एक साथ आ रहे थे। बड़ी ननद कठोर से स्वर में कह रही थी—"सारे घर भर के फूल क्या बहू के लिए हो हैं और हम सब तो मानो फूलों के शत्रु हैं न। लड़का रात से ही फूलों की रट लगा रहा है, बच्चा जो ठहरा, फूल फूल कर के कंठ सूख गया, पर फूल बचते भी हों भला उन महारानी के मारे।"

उत्तर में सुन पड़ा एक अत्यन्त कोमल, निरुपाय और विनय-

पूर्ण स्वर नलिनी का—"जीजी को फूल बहुत अच्छे लगते है और डाक्टर ने कहा है कि उन्हे प्रसन्न रक्खा जाय। इसीलिए प्रातः दे आई थी।"

"हाँ और शेष तो सब को डाक्टर ने फूल छूने का भी निषेध किया हुआ है, अतः सारे के सारे फूल बड़ी बहू के ही पास जाने चाहिये। आई कहीं से बड़ी भारी जीजी की भक्त बन के। और सब तो जानो उनके कोई है ही नहीं। अरे वाह रे नखरे! तीन महीने हो गये, बहाने किये पड़ी हैं, ज्वर ही नहीं उतरता! अजीब है भाई यह ज्वर भी।"

नलिनी का स्वर और नीचे उतर आया। उसने इस बार और भी अधिक अनुनय के स्वर मे कहा—"बहिन जी, थोड़े से ही फूल आज उतरे थे। कल से भइया के लिए अवश्य रख दूँगी।" नलिनी को भय था कि कहीं यह बातचीत ऊपर धूप, गर्मी और तपिश से भरे कमरे मे पड़ी एकाकी, एकान्तवासिनी, रोगिणी के कानों मे न पहुँच जाये। किन्तु बड़े घर की गर्वीली बहू और इस घर की अभिमानिनी कन्या को यह सब विधि-निषेध किसी प्रकार भी छू नही पाते थे। तिस पर घर की पुरानी नौकरानी बोल उठी—"बिटिया, यह साँझ सवेरे फूल लिये दिये बिस्तर पर पड़े रहना कोई अच्छे लच्छन थोड़े ही हैं। भइया परदेश में हैं, नहीं तो यह ऐसे कर पातीं भला। बड़ी सरकार तो है सीधी सादी।" फिर क्या था, घर की मालकिन की लाडली बेटी कुछ ऊँचा स्वर करके बोल उठीं—"अरे उसे भइया की क्या परवाह है, वह ठहरीं भला पढ़ी लिखी, बी० ए० पास, एम० ए० की पढ़ाई करने वाली, कवयित्री। हम जैसी सीधी सादी गृहस्थ

के घर की बहू थोड़े ही है जो पति की चिन्ता में व्याकुल हो उठें। इतने दिन हो गये महेश को गये, कभी राम जाने, याद भी करती है कि नहीं।" बकझक कभी अकेले और कभी बूढ़ी पुरानी नौकरानी के योग से चलती रही बड़ी देर तक; जब तक कि नलिनी ने चाय तैयार होने का सन्देश नहीं दे दिया। उधर नन्दिनी की कोमल परिकल्पना के चित्र छिन्न-भिन्न से हो गये। उसके जीवन में किसी भी तुच्छ अथवा महान् वस्तु के लिए, इतनी प्रतारणा किसी ने नहीं की थी। उसे जान पड़ा कि वह तनिक सा फूलों का ढेर ज्वलन्त अंगारों का पहाड़-सा है। लांछना का उत्तर लांछना द्वारा, प्रतारणा का उत्तर प्रतारणा कर के और कठोर शब्दों की प्रतिक्रिया कठोर शब्द सुना कर करना नन्दिनी ने सीखा ही न था। ऐसा करने की कल्पना भी करते हुए वह लज्जा से भर उठती थी। शृङ्खला-रहित कल्पना में उसने फिर देखा अपने बिस्तर के पास अपनी माँ, मासी और इन्हीं ननद को। कितने प्रेम से ननद ने उसे अपने घर ले जाने की इच्छा प्रकट की थी और फिर बहुत देर तक कुछ भी निर्णय न कर पाने पर जब सब ही थक गये थे तो नन्दिनी ने स्वयं किस प्रकार माँ और मासी के स्नेह की उपेक्षा करके श्वशुर की देहरी पर ही आना चाहा था। भाव-शृंखला टूट गई कोमल पुकार "जीजी" सुन कर। नन्दिनी ने तकिये से सिर उठा कर देखा कि नलिनी हाथ में दूध का गिलास लिये खड़ी है। नन्दिनी नलिनी पर अत्यन्त स्नेह रखती थी। उसे किसी दिन भी अपने कारण नलिनी का अपमान सहना भला नहीं लगता था। नलिनी ही इस हृदयहीन प्रान्त की एकमात्र दया माया पूर्ण देवी थी।

आज नन्दिनी का सर्वाधिक क्रोध नलिनी पर ही था। उसने कुछ झुँझला कर कहा—"क्या है ?" नलिनी ने पास आ कर कहा—"लो. तनिक-सा दूध पी लो।"

"नलिनी, घर भर मे एक तुम्हीं को मेरी चिन्ता है और क्या सब मेरे शत्रु है ? और यदि और सब यह सब कुछ देख-सुन पाते नहीं है तो तुम ही को यह सब करने की कौन-सी आवश्यकता पड़ती है सो ही समझ नही पाती हूँ।"

"न समझो तब ही मेरा कल्याण है । किन्तु दूध पी लो। ठंडा हो जायेगा। अधिक गर्म नहीं है और बिलकुल ठंडा हो जाने पर वायु करेगा ?"

"तुझे मेरी यह भयानक बीमारी भी नहीं भय दिखा पाती क्या ? अरी सब ही तो टी० वी० के भय से इस अभागिन के पास आते घबड़ाते है, तुझे ही भगवान ने क्या किसी अन्य धातु से गढ़ा है ?"

"सो ही तो बात है जीजी ! जिस धातु से मुझे गढ़ा है सो इस प्रान्त मे मिलती ही नहीं है।" यह कह नलिनी ने दूध का गिलास नन्दिनी के बिस्तर के पास रक्खे स्टूल पर रख दिया। और बड़े प्रेम से बोली—"जीजी, खड़े रहने की सुविधा नहीं है. दूध पी लो तो जाऊँ।"

नन्दिनी का कवि-हृदय कोमल तो हो उठा था पर खीझ भी उठा था । उसने कड़ुवे से स्वर से कहा—"तू यहाँ मत आया कर, फूल लाने की भी आवश्यकता नहीं है। दूध मैं नहीं पियूँगी। जगतराम के हाथ दो समय दो रोटियाँ ही भेज दिया कर। सुनती है ?"

"सो ही करूँगी जीजी, ऐसा ही होगा। तुम्हारा आदेश टाला नहीं जा सकता। किन्तु इस समय इस गिलास को खाली कर के मेरे आज दिन के कष्टों की सीमा तो कुछ कम कर दो।" नन्दिनी नलिनी को पहचानती न हो सो बात नहीं है। वह यह भी जानती थी कि नलिनी कितने कष्ट से यह एक गिलास दूध संचय करके लाती है। इसके पीछे उसका कितना अपमान, कितना कष्ट छिपा हुआ है, सो नन्दिनी के लिए अपरिचित न था। किन्तु यह भी वह निश्चय पूर्वक जानती थी कि अनेक कष्टो के बीच पिसती हुई भी नलिनी नन्दिनी के इस हठ को तनिक भी न मान सकेगी। भावुक नन्दिनी सोचने लगी—"यह नवविवाहिता किशोरी मेरी कौन है, जो मेरी हर प्रकार की सेवा अयाचित ही करती है। घर भर के लोग जब कि छूत के डर से चौखट तक भी नहीं आ पाते यह निर्विघ्न रूप से कमरे के ठीक बीचोबीच रोगी की शय्या तक न केवल पहुँच ही जाती है वरन् उसकी सब ही प्रकार की सेवा हँसते-हँसते सहज भाव से कर पाती है।" नन्दिनी ने झटपट अपने गिलास मे दूध डाल कर मुँह से लगा लिया। तृप्ति की साँस ले कर नलिनी जैसे आई थी वैसे ही हँसते-हँसते शीघ्रता पूर्वक चली गई। दूध का गिलास स्टूल पर रख कर निर्विकार भाव से नन्दिनी छत की ओर देखते-देखते सोचने लगी—"मैंने कभी किसी दिन भी तो इस बालिका को कुछ दिया नहीं। यहाँ तक कि मुक्त हृदय से किसी दिन स्नेह का दान भी तो दे पाई नहीं। फिर भी आज इसकी सेवा किस अधिकार से ग्रहण किये चली जा रही हूँ। यह मेरी कौन है ?" नन्दिनी की आँखे भर आई।

एक दिन स्वेच्छा से वह ज्वर से भरा कमज़ोर शरीर लिये हुए अपने श्वशुर की देहरी पर आ गई थी केवल मात्र अपनी बड़ी ननद की आज्ञा को शिरोधार्य करके। परिवार बड़ा था। रहते थे सब लोग एक ही घर मे। यूँ तो नन्दिनी की बड़ी ननद अपने घर ही रहती थी, किन्तु कभी-कभी पित्रालय में भी आ जाती थी। घर पर नन्दिनी की ननद का बड़ा रोब-दाब था। वह बड़े घर व्याही थी और यूँ भी उसके महत्त्व और अधिकार की सीमा ही नही थी। नन्दिनी के ननदोई बड़े भारी उपाधिधारी सिविल सर्जन थे। वहम और सावधानी की भी कमी न थी। यहा तक कि पत्नी और सन्तानो को पत्नी के पिता के घर भी बिना अपने घर के सिवाय नौकरो के वह जाने ही नही देते थे। यूँ नन्दिनी का विशेष सेवा यत्न तो किसी दिन भी नही हुआ। किन्तु साधारणतया कुछ सेवा हो ही जाती थी। किन्तु छः-सात दिन बाद जब सिविलसर्जन साहब अपनी पत्नी से मिलने एक दिन आये और उन्होने रोगिणी की अवस्था देख कर एक बारगी ही कह डाला कि उसे राज-यक्ष्मा हो गया है तथा अत्यधिक सावधानी से घर के अन्य प्राणियो को बचाना होगा तो सर्वप्रथम व्यवस्था हुई नन्दिनी को हस्पताल भेज देने की अथवा किसी सैनोटोरियम मे भेज देने की। किन्तु जब नन्दिनी की सास महोदया किसी प्रकार भी राजी न हुई तो नन्दिनी को छत पर तिमंजिले पर एक एकान्त कमरे मे डाल दिया गया। केवल जगतराम को ही उसके पास जाने की आज्ञा थी। जगतराम पुराना नौकर था। उसे अन्य सब ही कामों से हटा कर घर से बाहर एक कोठरी दे दी गई थी और घर के सब

प्राणियों से मिलने बोलने का निषेध कर दिया गया था। जगतराम को दो समय भोजन और औषध दे आने की ही आज्ञा थी। बीमार को नाश्ता आदि नहीं करना चाहिए तथा क्षय रोग में भोजन किया जा सकता है यही व्यवस्था बड़ी बिटिया की सलाह से हो पाई थी। प्रातः एक गिलास दूध भी दिया जा सकता था किन्तु वह भी जगतराम यदि मिल सके। दिन भर नन्दिनी प्रायः अकेली पड़ी रहती थी, फिर भी न तो वह ही माँ को लिखती थी और न घर के अन्य प्राणियों को ही आज्ञा थी। माँ को पत्र में यही लिखा हुआ मिलता था कि उनकी बेटी अच्छी है। यह स्वयं नन्दिनी लिख देती थी। श्वशुरालय से अपमानित हो कर घर जाने से पूर्व उसे डूब मरने को कोई तलैया भी न मिलेगी क्या, यही वह सोचती थी। नलिनी उन दिनों पति के साथ परदेश में थी। घर में अन्य बहू बेटियाँ भी थीं पर क्षय रोग के भीषण कीटाणु शरीर में घुस कर शरीर का किस प्रकार क्षय कर डालते हैं इसका चित्र बड़ी बिटिया की कृपा से देख पाने पर किसी का भी साहस नन्दिनी, पराई बेटी, की ओर ताकने का भी नहीं होता था। इन्हीं दिनों एक दिन तार आया कि छोटे बेटे छुट्टियों में बहू सहित घर आ रहे हैं। घर की मोटर गाड़ी स्टेशन पर भेजी गई और माल असबाब सहित छोटे साहब एक दिन पत्नी को साथ लिये घर आ पहुँचे। नलिनी माता-पिता की एकलौती लाडली और जिद्दी सन्तान थी। कहते हैं बाल्यकाल में माता पिता के नाक में दम किये रखती थी। उसकी प्रकृति उद्दण्ड न होते हुए भी यथेष्ट रूप से स्वतन्त्र थी। घर में आ कर उसने

सब को प्रणाम वन्दना आदि की। बड़ी बहू नन्दिनी से उसका किसी दिन भी कोई स्नेह सम्बन्ध न था, यहाँ तक कि कभी साथ रहीं भी नहीं थीं। मधुर न होते हुए भी सम्बन्ध तो था ही। नलिनी ने नन्दिनी के विषय में पूछ-ताछ की। मँझली बहू ने डरते-डरते कहा—"छोटी बहू, बड़ी बहू के पास न जाना, उन्हें तो क्षय रोग है।"

"अरे भाभी, तो क्या क्षय रोग कूद कर किसी के चिपट जाता है। मैं तो उन्हें देखने ऊपर अवश्य जाऊँगी।" तनिक-सी देर में घर भर में कोहराम मच गया कि छोटी बहू बड़ी बहू के कमरे में जा रही है। सबने समझाया बुझाया, डर दिखाया, पर नलिनी गई और दो घंटे वहाँ बैठी भी। कुछ दिन तक चर्चा रही फिर दब गई। दस दिन बाद जब पति ने नलिनी से कहा—"कल सायंकाल चल देना है" तो नलिनी के सहज भाव से कहा—"पर मैं तो यहीं रहूँगी।"

"सो क्यों? तुम तो कभी काम काज पर भी यहाँ रहने को राजी नहीं होती थीं। अब क्या बात हो गई है?"

"अब मेरा काम है ना, तुम जाओ. मैं यही रहूँगी।" पति चकित हो कर कुछ झुँझला कर बोले—"फिर कब चलोगी?"

"अभी कह नहीं सकती। काम हो जाने पर आ जाऊँगी।" घर भर की अप्रसन्नता और पति की झुँझलाहट ओढ़े हुए नलिनी वहीं रह गई नन्दिनी की सेवा करने, अकारण, निस्वार्थ भाव से और यूँ ही। क्यों? यही तो नन्दिनी सोच रही थी।

मूर्ख

"शालिनी, तुम्हारे लिए यह उचित ही था, किन्तु मैं तो जानबूझ कर ही मूर्ख बना।"

"वैसा कहने का अधिकार तुम्हें है, किन्तु मुझे अपनी मूर्खता का इतिहास सुनाने का अधिकार तो कभी तुम्हें मिला नहीं।"

"सचमुच ही नहीं मिला।" कह कर उसने मुँह लटका लिया।

"देखिये मेजर साहब, मेरे जीवन का पथ है खुला हुआ सीधा और लम्बा। उस पर चलते हुए मैं कभी कभी बैठ कर थोड़ा सा सुस्ता लेती हूँ और कभी तनिक सा इधर-उधर हो कर आस पास के शैवाल-दल-पूर्ण भूमि-खण्डों से परिचय भी कर लेती हूँ, किन्तु मेरा सच्चा परिचय पथ से इधर उधर थोड़ा खिसक कर चलना नहीं है। मेरा यथार्थ परिचय तो सीधे पथ पर सीधी खड़ी हुई ही है?"

"यह तुमने उस दिन क्यों नहीं कह दिया था?"

"किस दिन? और मैंने तो किसी दिन कुछ छिपाया भी नहीं। मेरे आस पास कभी कुछ धरा ढका तो रहता ही नहीं है। जो कुछ है वही तो दिन के प्रकाश की नाईं उज्ज्वल है।"

"मुझे भारी धोखा हुआ।"

"सो ही तो। खैर जाने दीजिये। घात, प्रतिघात, आघात और विश्वासघातों से जीवन यत्र तत्र भरा हुआ है। फिर भला जो सत्य है, जो जीवित है, जो नितान्त स्वाभाविक है, उसकी अवहेलना करने का प्रयत्न भी क्यों हो?"

आज प्रातः से ही शालिनी का मन अत्यन्त प्रसन्न था।

उसने प्रातःकाल स्वयं एक आपरेशन किया था। आपरेशन अत्यन्त सफल हुआ। रोगिणी के प्राण तो बचे ही, उसका नवजात शिशु भी बिना काटे-पीटे जीवित ही निकल आया इस विश्व मे लीला करने। सुवीरा ने उस अत्यन्त कठिन आपरेशन के सफलता पूर्वक कर पाने पर डा० कुमार को बधाई दी और रोगिणी के आफिसर पति ने निष्कपट भाव से डा० कुमार के चरणो पर तीन सौ रुपये का चेक रख दिया। शालिनी को धन का अभाव न था। प्रसन्नता से, उल्लास से, उसका हृदय भरा हुआ था। उसने हँस कर चेक नवजात शिशु को भेंट कर दिया और माता ने वह धन हस्पताल के दरिद्र रोगी वार्ड को भेंट कर दिया। सब ही ने शालिनी की योग्यता और उदारता की प्रशंसा की, गिरीश केवल मुसकरा दिया। किन्तु सबसे अधिक प्रसन्नता हुई शालिनी को अपने अथक परिश्रम से उस नन्हे जीव को विश्व मे जीवित ला कर गोद में ले कर। डा० शालिनी कुमार के अन्तर की सुप्त माता जाग उठी। उसे जीवन मे पहली ही बार नन्हे बालक के कोमल शरीर मे भी कोई स्पर्श सुख हो सकता है इसका अनुभव हुआ। इसी हृदय की सरल प्रसन्नता से ओतप्रोत शालिनी आज किसी को भी अप्रसन्न नही करना चाहती थी। शालिनी को ममी के साथ कहीं जाना भला नही लगता था, किन्तु आज उनके अनुरोध पर वह उनकी एक सखी के सुपुत्र के जन्म दिन के डिनर मे उनके साथ आ ही गई। वहाँ आ कर भी आज उसके उल्लास की सीमा नहीं थी। डिनर के पश्चात् नृत्य का भी आयोजन किया गया था इसीलिए डा० शालिनी कुमार तीन इंच ऊँची एड़ी की जूती पर बढ़िया काली

जार्जेट की साड़ी और लाल मखमल का बिना बाहों का पेट खुला ब्लाउज़ पहन कर आई थी। कानों में हीरे के टाप्स और माथे पर सर्पाकार बिन्दी लगी हुई थी। टाप्स के हीरों की आभा से मुख चमक उठा था। इत्र की गन्ध से दूर तक आस पास का वातावरण सुगन्धित हो उठा। इस घर के एकमात्र पुत्र के जन्म पर डा० कुमार ने ही बिना कुछ लिये दिये माता की सखी होने के नाते काम किया था अतः शालिनी के लिए डिनर का विशेष-आग्रह पूर्वक निमन्त्रण आया था। बालक को भेंट दे कर तथा प्यार करके शालिनी माता को अन्य महिलाओं के पास छोड़ कर ज्यों ही बरामदे में आई लान मे आ कर स्वच्छ वायु सेवन करने के लिए कि सम्मुख दीख पड़े मेजर निसार अहमद और मिला उनका सस्नेह निमन्त्रण उन्हीं के साथ उस रात नृत्य करने का। शालिनी की इच्छा आज नित्य करने की न थी, वह केवल दूसरों के नृत्य का आनन्द लेना चाहती थी। और यदि करना भी हो तो वह पहले ही निमन्त्रित की जा चुकी थी डा० शरवटे, मिस्टर होम्स और कुँवर हरीसिह द्वारा। ऐसी अवस्था में वह मेजर साहब को स्वीकृति न दे सकी। इधर मेजर साहब कुछ दिनो से शालिनी को अपनी सम्पत्ति ही समझने लगे थे और आज भी यहाँ केवल मात्र शालिनी के लिए ही आये थे। अतः उनकी निराशा का कोई अन्त ही नहीं रहा। शालिनी किसी को भी आज अप्रसन्न नहीं किया चाहती थी। उसने धीरे से मेजर साहब का हाथ पकड़ कर कहा—"आपके साथ आज नाच तो न सकूँगी, पर चलिये कुछ देर बाग में घूमा ही जाये।"

इच्छा करके भी मेजर अस्वीकार न कर सके उस निमन्त्रण

को। दोनों ही चल दिये लॉन की ओर साथ-साथ धीरे-धीरे।

इस बार बड़ी ही विनय के साथ मेजर निसार अहमद ने कहा—"शालिनी, तुम सचमुच ही क्या माया-ममता से परे हो?"

"मेजर साहब, शालिनी क्या है उसे तो वह स्वयं भी नहीं जानती है और सचमुच जानना चाहती भी नहीं है। फिर आपको बताये भला क्या?"

"तब क्या तुम यूँ ही दूसरों को सदा मूर्ख बनाती रहोगी?"

"नहीं, यह बात आप क्यों कहते हैं? यूँ क्यों नहीं कहते कि नदी अबाध गति से बहती जाती है अपने लक्ष्य समुद्र की ओर। झाड़ झंखाड़ यहाँ तक कि पेड़ भी उखड़ कर जब उसकी धारा मे पड़ ही जाते हैं तब वह उन्हे बहा तो अवश्य ले जाती है। किन्तु वही उसका लक्ष्य हो सो बात नही है।"

"सो मै जानता हूँ। तब ही तो तुम्हे पहचान पाता नही। कहाँ जाना है सो भी जान पाता नही।"

इस बार मुख की बात बीच में ही काट कर शालिनी अधीरता से बोल उठी—"देखिये मेजर साहब, आज की यह सुन्दर सन्ध्या वाद-विवाद के लिए नही है। इसका रस यूँ ही नष्ट न कीजिये। यह लीजिये कुँवर साहब भी आ गये।"

इसी समय एक तीस वर्ष का सुदर्शन युवक राजसी ठाट बाट के साथ इन्हीं के निकट आ कर खड़ा हो गया। शालिनी ने हाथ बढ़ा कर पाश्चात्य ढंग से उसका अभिवादन किया और फिर परिचय कराया परस्पर मेजर साहब और कुँअर साहब का। दोनों ही एक दूसरे को देख कर प्रसन्न नही हो पाये थे, फिर भी

दोनो ने ही शान्त मुसकान सहित एक दूसरे के मिलने पर अपनी बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। शालिनी शिष्टाचार के इस आवश्यक अंग के पूर्ण होने तक दोनो की ओर व्यंग मुसकान भरी दृष्टि से देखती रही और फिर कुँअर साहब को लक्ष्य करके बोली—"आप दोनों की मित्रता मुबारिक हो, शुभ हो, चिरजीवी हो। पर कुँअर साहब, अब चलिये, तनिक उधर भी चलें। अन्य मेहमान भी आ गये होंगे और इधर साढ़े आठ भी बजने लगे हैं।"

कुँअर साहब कुछ संकुचित से हो रहे थे। इस निमन्त्रण ने उनका साहस बढ़ा दिया। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न भाव से उत्तर दिया—"हाँ, हाँ, अब उधर चलना ही उचित होगा। क्यों मेजर साहब!" इधर मेजर निसार अहमद का समस्त मुखमंडल श्वेत-प्राय हो रहा था। उन्होंने धीमे से स्वर में कहा—'जी हाँ, चलिये चलें।" जान पड़ा यह चार शब्द बड़ी कठिनाई से उनके कण्ठ की मरुभूमि को बरबस चीर कर निकल सके हैं। धीरे-धीरे सब लोग हाल में एकत्र हो गये। अब शालिनी का कृत्रिम नशा कुछ धीमा पड़ गया था। यद्यपि उसे पूर्ण विश्वास था कि गिरीश वहाँ नहीं आयेगा फिर भी न जाने क्यों उसकी आँखे बार-बार प्रवेश-द्वार पर पहुँच जाती थीं। यहाँ तक कि खान पान और नृत्य के बीच भी उसकी आँखें द्वार की ओर ही लगी रहीं। नृत्य के पश्चात् तनिक-सी थकान मिटाते समय कुँअर साहब ने कहा—"शालिनी, आप तो किसी राजमहल की शोभा बढ़ाने के लिए रची गई हैं?"

'मेरी कोठी किसी राजमहल से कम नहीं है कुँअर साहब!"

कह कर शालिनी का मन स्वयं सहम-सा गया। उसने पेग हाथ मे उठा तो लिया पर पिया नहीं गया और नेत्र फिर द्वार की ओर जा अटके।

मिस्टर होम्स ने जब उसे तीसरी बार नृत्य के लिए आमन्त्रित किया तो शालिनी ने सभ्यता के विरुद्ध उस निमन्त्रण की अवहेलना कर दी। डा० शरवटे जब उसके पास की कुर्सी पर बैठ कर उसके सिर पर हाथ रख कर "सिर दर्द तो नहीं है?" पूछने लगे तो शालिनी को जान पड़ा कि सचमुच ही उसका सिर भयंकर रूप से दुख रहा है किन्तु उसने साधारणतया उत्तर दिया "नहीं तो, वैसी तो कोई बात नहीं है।" किन्तु उसकी आँखें प्रवेश-द्वार पर अब भी लगी हुई थीं। सुबह चार बजे जब शालिनी अत्यन्त थकित देह से बिस्तर पर गिर पड़ी तो उसको जान पड़ा, कि वह स्वयं ही कह रही थी "निष्ठुर, पत्थर...", उसे जान पड़ा कि उसके गत रजनी के आनन्द में कहीं कुछ बड़ी भारी भूल रह गई है जो इस समय उसकी नस नस मे प्रबल ज्वाला का संचार कर रही है। शालिनी को भली प्रकार निद्रा नहीं आई, शरीर अवश पड़ा था।

तेजस्विता

"देखो नीलू, इतनी अधिक तेजस्विता इस छोटे नन्हे से शरीर में समायेगी नहीं, मेरी तो कोई हानि नहीं है।"

"न समाने पर जानते हो क्या होता है? पात्र फट जाता है। उससे यदि तुम्हारी कोई हानि नहीं होती है तो ठीक ही है।"

"नहीं, नहीं, पात्र टूट जाने पर तो बड़ी हानि होगी। दया की देवी इतना बड़ा और सजीव आधार और कहीं दीपक ले कर खोजने पर भी पायेंगी क्या ?" कह कर छोटे साहब अर्थात् नलिनी के स्वामी अथवा नन्दिनी के छोटे देवर हँस पड़े। नलिनी स्वयं भी हँस दी। इस बार नलिनी ने तनिक सा हँस कर कहा—"रहने दो देवता, तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता तनिक सी भी नहीं है। देवता की पूजा के लिए पात्रों की कमी नहीं होती और फिर इस घर से तनिक सा आभास मिलते ही तुरन्त तैयारी होने लगेगी नवीन पात्र लाने की।"

"छी, क्या कहती हो? बड़ों की अवज्ञा करना क्या तुम्हारे लिए उचित है?"

"छी, छी, ऐसा अनुचित कार्य कर डाला तुम्हारे इस देव-गृह की इस दुर्दान्त वधू ने। न जाने किस भीषण दण्ड की व्यवस्था उचित होगी उस दहण्ड बहू नामी जीव के लिए जिसने गुरुजनों की अवज्ञा जैसा जघन्य अपराध किया है। उसे तुरन्त ही आजीवन निर्वासन दे कर प्रायश्चित्त कर डालो देवता स्वरूप।" नलिनी के सुन्दर मुख से नाटकीय ढंग से यह सब सुन कर उसके पति हँस पड़े। इस बार नलिनी फिर कहने लगी—"सच-

मुच ही वह गुरुजन अत्यधिक श्रद्धा के पात्र है जो अकारण ही पराई बेटी को घर मे लाने की कृपा से इस प्रकार दबा देते है कि ज्वर आ जाने पर उसके लिए केवल मात्र चुपचाप जलते तपते कोठे के एक कोने मे पड़े-पड़े अनाथो की भाँति आँखो का घड़ा भर जल बहाने के अतिरिक्त और कोई भी उपाय रह जाता ही नहीं है ?"

"भाभी जी को सचमुच क्षय रोग हो गया है। ऐसी अवस्था मे उनके पीछे घर भर को तो मृत्यु के मुख मे ढकेला नहीं जा सकता है ना।"

"सत्य वचन महाराज ! किन्तु यदि ईश्वर न करे जेठ जी को यह रोग हो जाता तो क्या उनको भी यही दशा की जाती, अथवा जीजी ही क्या उन्हे एक ओर डाल कर चुप रह सकती। देखती हूँ; किसी दिन मेरी भी यही दशा होगी इस घर में।"

"उसी की तैयारी तो तुम मन-प्राण से कर रही हो हर समय भाभी जी के पास जा जा कर।"

इस बार नलिनी सचमुच ही कुछ रूठ गई। उसने चिढ़ कर कहा—"देखो, तुम हर समय यह न कहा करो। तुलसीदास कह गये है—'हानि, लाभ, जीवन मरण, यश, अपयश बिधि हाथ।' मनुष्यता का अपमान करके रोग शोक से बचा नही जा सकता है।"

"कौन कहता है कि तुमने एम० ए० पास किया है नीलू। भला यह भी कोई बात है कि उचित परहेज़ न कर के स्वयं अपने आप को मृत्यु के मुख में डाला जाये ?"

"यही समझे हो ना महाराज। आखिर उसी घर के प्राणी

हो ना। मै यही तो कहती हूँ कि हम सब जीजी के साथ एक थाली मे बैठ कर भोजन करे। धन्य हो महाराज इस कलिकाल मे इतनी तीव्र बुद्धि !"

"बुद्धि तो तुम्हे एक दिन भेट कर दी थी, अब लौटा कर लाऊँ कहाँ से ? दी हुई वस्तु कहीं लौटाई जाती है ?"

"तब न हो पराई बुद्धि उधार ले कर ही काम चला लिया करो। तनिक अधिक ब्याज भी देना पड़े तो हानि ही क्या है; महाजन तो कोई पराया आदमी है नही।"

"तब क्या करने को कहती हो। लाओ, न हो तो तुम अपनी बुद्धि ही तब तक उधार देने का आश्वासन दे दो। फिर तो सरकारी काम बहुत ही ठीक हुआ करेगा। सरकारी आफिसरो से खूब प्रशंसा भी मिलेगी और उन्नति भी।"

"सो तो नहीं जानती मिलेगी अथवा नहीं। किन्तु विश्व-नियन्ता के खाते में तुम्हारा नाम मानवता के प्रति भयंकर अपराध करने वाले लोगो में नही आ पायेगा यह निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ।"

"तो क्या चाहती हो, कहो ना ?"

"यही चाहती हूँ कि तुम अपनी माँ और बहिन को समझाओ कि वह जीजी को अछूतों की तरह बना कर उनके रोग मे निशिदिन वृद्धि न करे और जेठ जी को यथासंभव शीघ्र बुला दे अन्यथा जीजी को उनकी माँ के घर ही भेज दें।" नलिनी बड़ी भारी आशा से पति के मुख की ओर देखने लगी। उसके पति ने बड़ा ही निराशाजनक मुख बना कर कहा—"काम अत्यन्त दुष्कर है गृहदेवी। वह लोग किसी प्रकार भी नहीं

मानेगी। और लो, यह तो उलटा ही हुआ। मैं तो तुम्हें समझा बुझा कर साथ ले जाने अथवा भाभी जी से पृथक रहने को समझाने के लिए आया था और यहाँ फँस गया इस आपद में।"

अप्रसन्न हो कर नलिनी ने कहा—"आपद विपद में क्यों पड़ोगे। तुम जाओ। मैं तो जीजी को इस दशा में छोड़ कर कहीं भी नहीं जाऊँगी। ऐसा करने से मुझे सचमुच घोर नरक की सी यातना होगी।"

"तुम तो मुझे पागल कर दोगी नीलू। कभी एक दिन भी भाभी के साथ इससे पूर्व रहा नहीं थी, कहीं का प्रेम नहीं, स्नेह नहीं, कुछ नहीं। अब अकारण ही उनके पीछे जो कि मृत्यु की अतिथि बनी हुई हैं मुझे भी कष्ट दे रही हो और स्वयं भी कष्ट पा रही हो और सबसे अधिक कष्ट-कर है वह प्रलय-काण्ड जो तुमने इस घर में मचवा दिया है अपनी हठ से।"

"ठीक है, यही सब कर रही हूँ, किन्तु जिनके आदेश से कर रही हूँ उनका अज्ञात मूक संकेत तुम लोगों को दीख नहीं पड़ता और मैं देख कर भी उसकी ओर से आँख नहीं बन्द कर पाती हूँ। जब तक वह स्वयं ही इस पथ से फिर जाने का संकेत नहीं देते तुम्हारी नीलू वह पथ छोड़ेगी नहीं। और यदि छोड़ दिया तो फिर विश्व में खड़े रहने को भी उसे स्थान नहीं मिलेगा।" बड़ी गहरी भावुकता सहित नलिनी ने दोनों हाथ किसी अदृष्ट शक्ति की वन्दना के हेतु माथे से लगा लिये। उसकी चारों सुन्दर नयन-कोरों में जल भर आया। पति अपनी पत्नी को न पहचानता हो सो बात नहीं है। किंतु उसकी इच्छा पत्नी को इस प्रकार के झगड़ों से परे रखने की ही थी। किंतु

नलिनी तो उस धातु से बनी ही नहीं थी जो पिघल जाती है।

थके से स्वर मे पति ने कहा—"तो फिर कर सकती हो तो तुम्हीं संघर्ष करो। मुझमे न तो संघर्ष करने की शक्ति है और न इच्छा ही। किन्तु नीलू, मुझे तो तुम्हारे लिए भी भय होता है।"

"भय करके क्या करोगे? यदि मुझे भी क्षय रोग हो जाय तो मेरी माँ के पास पहुँचा आना। मुझे क्षय रोग का इतना भय नहीं है जितना विधाता के कोप का जो कि क्षय से भी अधिक भयंकर है, अधिक कठिन और कठोर है, जानते हो?

पति को जान पड़ा कि इस हठीली दुर्दमनीय नारी में यथेष्ट मात्रा में भगवान ने तेजस्विता भर कर रख दी है। इसके कोमल हृदय की दया का अन्त नहीं है। इसके मानव अन्तराल के तल-प्रदेश में निहित स्नेह की सीमा नहीं है। फिर भी इसमें कर्तव्य-निष्ठा, दृढ़ विश्वास और हठधर्मी भी प्रचुर मात्रा में है। एक बार नलिनी के सुन्दर मुख की ओर देख कर छोटे साहब को जान पड़ा कि उनकी पत्नी कोई साधारण स्त्री नहीं है। सत्य का आग्रह, सत्य का व्रत और सत्य की प्रेरणा ही मानो उस अठारह वर्ष की साधारण सी कोमल बालिका का आधार है। उसी पाथेय को ले कर वह निरन्तर अबाध गति से विश्व के उस पार तक सरलता से ही पहुँच पायेगी। इस बार पति ने और कुछ न कह कर यही कहा—"यदि तुम्हारी यही इच्छा है नीलू, तो तुम्हारे लिए माता-पिता से भी झगड़ा करूँगा।"

बीच में ही रोक कर दाँतों तले जीभ दबाते हुए नलिनी ने कहा—"छी-छी, ऐसा नहीं कहते, अपराध होता है। कहीं पत्नी के पीछे माता-पिता से झगड़ा करना होता है। सच कहती हूँ,

प्राण चले जाने पर भी अपने लिए तुमसे माँजी से एक शब्द भी नहीं कहलवाती, किन्तु जीजी के लिए तो कहना ही पड़ेगा। तुम्हारी माँ अपने हाथों मुझे काट कर फेंक दें मैं एक अक्षर भी मुख से न निकालूँगी, किन्तु जीजी के साथ होने वाला अकारण अन्याय तो देखा नहीं जाता। न हो तुम जीजी की माँ के पास समाचार भिजवा कर उन्हें वहीं भिजवा दो।"

"उससे क्या होगा ? भाभी अच्छी तो होने से रहीं। देखते-देखते एक मास तो हो गया है।"

"तो क्या हुआ, उपचार औषध भी तो कभी ठीक से हुई नहीं। वहाँ माँ लड़की को छाती से लगा कर उसकी मर्मान्तक पीड़ा को तो कम कर देगी। जीजी भावुक है, बोलती नहीं हैं, किन्तु उनकी दोनों सुन्दर आँखों के भीतर निहित घनी व्यथा बह कर जब उनकी नयन-कोरों तक आ जाती है तब सचमुच ही देखा नहीं जाता। यदि तुम एक बार देख पाते तो समझते ना।"

"देख पाता हूँ, खूब देख पाता हूँ, तुम्हारी आँखों में अहर्निश देखता ही तो रहता हूँ नीलू।" और दोनों पति-पत्नी हँस पड़े। नलिनी को कुछ संतोष हो गया था।

ममता

मृत्यु की सी भयंकर विभीषिका मुख पर लिये जब एक दिन लड़की, वही लड़की जो एक दिन गुलाबी गाल और लाल होंठ लिये विदा हुई थी, द्वार पर लौट आई तो उसके मुख की ओर देख कर माँ किसी प्रकार भी चीख रोक न सकी। मासी ने जल्दी से वहिन को परे ठेल कर किसी प्रकार अर्द्धचेतन लड़की को गोद में ले कर ताँगे से नीचे उतारा। यात्रा की थकान और मन की असीम वेदना से मासी का हृदय जला जा रहा था। वहिन से कुछ भी न कह कर उन्होंने नौकर की सहायता से नन्दिनी के कंकालप्राय शरीर को घर के भीतर पहुँचाया। बिस्तर पर लिटा कर उन्होंने एक बार नन्दिनी के मुख की ओर देख कर शान्ति की साँस ली और फिर तुरन्त ही नौकर को अनार का रस निकालने की आज्ञा दे कर पड़ोस के एक सज्जन के लड़के को डाक्टर को बुलाने भेजने के लिए घर से निकलीं। तब तक माँ सँभल गई थी। नन्दिनी की माँ ने वहिन से कहा—"दीदी तुम थक गई हो, तनिक विश्राम करो, मुझे आज्ञा करो कि क्या करना है?"

"तुम्हें कुछ करना नहीं होगा—केवल नन्ही के पास बैठ कर उसके पथ्य पानी और आराम की व्यवस्था करो। मैं अभी आती हूँ।" हठ करने की गुंजायश ही कहाँ थी। चुपचाप माँ काँटे-सी सूखी लड़की के सिरहाने जा कर बैठ गई। कुछ कर

सकने अथवा कहने की शक्ति उसमें रह ही नहीं गई थी। नन्दिनी भी माँ से कुछ बोल नहीं सकी। जैसी शुष्क, कठिन और विषमय विदा और जो भीषण अपमान उसकी मासी ने उसके श्वसुरालय से पाया था उसने नन्दिनी के मन को भी मृत-प्राय कर दिया था, फिर भी नलिनी के सतत प्रयत्न से नन्दिनी माँ की, मासी की, गोद मे पहुँच तो गई, यही क्या कम था।

आते समय नलिनी ने विना किसी विचार के नन्दिनी के गले से चिपट कर कहा था—"जीजी, माँ से और मासी से कह कर जेठ जी को अवश्य बुलवा लेना। सच कहती हूँ तुम्हे कुछ भी रोग नहीं है और जो कुछ है भी वह उनके पत्रों के ही कारण है। उन्हे सकुशल पा कर वह रोग टिकेगा ही कितनी देर।"

नन्दिनी ने भय से तनिक परे करते हुए कहा—"बहिन, उस जन्म में तुम अवश्य मेरी माँ थी, नहीं तो इतनी अधिक ममता क्यो कर कर पातीं। भगवान करें अगले जन्म मे तुम्हारी सन्तान बन कर ही जन्म लूँ मेरी रानी बहिन।"

"छिः, यह सब क्या छोटों से कहा जाता है जीजी। यदि यही सब कहना था तो मैंने अकारण ही तुम्हे जीजी कहना आरम्भ किया। तुम तो जानती हो मेरे कोई सचमुच की जीजी नहीं है, इससे क्या यह थोड़ा-सा छल करके सुख पाने का द्वार भी तुम बन्द कर दोगी?" नलिनी के सरल स्नेह से नन्दिनी की आँखें भीग गई।

"मेरी उस जन्म और इस जन्म की सगी बहिन सचमुच तू ही है नीलू। किन्तु बहिन अब तनिक दूर हट, ईश्वर न

करें...।" नलिनी ने फिर बरबस नन्दिनी का मुख बन्द कर दिया अपने दाहिने हाथ से।

"मर जाऊँगी बस यही चिन्ता है, पर मरने से पूर्व ही क्यों पग-पग पर चिन्ता सन्देह करके अपनी इस लोक की यात्रा दुष्कर कर डालूँ जीजी, बता, तो सही ?" नन्दिनी कुछ भी न कह सकी। आते समय नलिनी ने फिर नन्दिनी से कहा—"मामी से समझा कर कहने का अवकाश नहीं मिला, पर तुम जेठ जी को अवश्य किसी तरह हो बुलवा लेना। वही तुम्हारे वैद्य हैं और वही तुम्हारी औषध।"

चुपके से अवसर पा कर नलिनी ने मामी से भी कह दिया था कि उसकी जीजी को कुछ भी रोग नहीं है। केवल उनके पति को बुला कर उनके दर्शन और पद-धूलि देने भर से ही उसकी सती लक्ष्मी जीजी स्वस्थ हो जायेगी। मामी ने विश्वास किया अथवा नहीं, पर उस सुन्दर लड़की से सुन भर लिया। इधर घर भर की दृष्टि से बचा कर चतुर नलिनी ने एक पत्र जेठ को पति से भी लिखवा दिया था, जिठानी के रोग के सम्बन्ध में। तथा उसका निश्चय था कि इस बार पति के साथ जा कर वह इस दिशा में भी प्रयत्न करेगी जिससे उसके जेठ को कुछ दिनों की छुट्टी मिल जाय और वह जिठानी से आ कर मिल सकें। सास का मन नलिनी की उद्दण्डता से खिन्न हो गया था। ननद भी प्रसन्न न थीं। फिर भी रोगिणी घर से जा रही है और वह भी बिना उनके कहे-सुने यही क्या उनकी सान्त्वना के लिए कम था। लड़के से स्पष्ट ही कह सकेंगे कि उन्होंने बहू की बड़ी सेवा की फिर भी वह स्वेच्छा से माँ के घर चली ही गई तो

वह क्या करे । नलिनी सचमुच ही प्रसन्न है; उसने जीजी से प्रतिदिन पत्र पाने का आश्वासन और वहाँ जा कर देख आने की अनुमति प्राप्त कर ही ली थी।

नन्दिनी के मन मे रह-रह कर विचार आ रहा था "यह दोनो वैधव्य के भार से अभिशप्त नारियाँ मेरी तन प्राण से सेवा कर रही है और करेगी क्योंकि मै ही इनके दुःखी जीवन का एक मात्र आधार हूँ, किन्तु उस भरे-पूरे घर में, जिसकी मै गृहिणी हूँ, मेरे स्वामी की अनुपस्थिति मे उनकी माता उनकी बहिन किसी ने भी तो मेरे शरीर का कुछ भी, तनिक सा भी, मूल्य लगाया नहीं और एक पराई लड़की ने अकारण ही अपने हृदय की ढेर सारी ममता अयाचित ही मेरे सन्तप्त हृदय पर उँडेल दी, सो क्यो? और मैंने ही सहज भाव से उसका स्नेह, उसकी सेवा, उसका त्याग ग्रहण कर लिया तो क्यो? सो भला किस अधिकार से, किस दावे से? वह मेरी कौन थी?"

माँ पेट की सन्तान के चेहरे की ओर एक टक ताक रही थी किन्तु लड़की वहाँ थी ही कहाँ? उसका कृतज्ञ हृदय तो सहस्र धारा से हार्दिक आशीर्वाद उस छोटी-सी लड़की के मस्तक पर अदृश्य हाथों से बारबार, सहस्र बार, उँडेल रहा था, उँडेले ही जा रहा था, जिसने अपनी ममता उसे भेंट की थी, दान में नहीं दी थी।

मासी डाक्टर को ले कर आ गई । डाक्टर ने रोगिणी की परीक्षा की । खून थूक इत्यादि की परीक्षा की व्यवस्था की। फीस के रुपये लिये और चला गया । नन्दिनी इच्छा करके भी इस अत्याचार का विरोध न कर सकी क्योंकि उसकी मासी की

दयनीय मूर्ति सम्मुख थी और उसकी नलिनी का सस्नेह मीठा आदेश उसके हृदय में सुरक्षित था। तीसरे दिन नन्दिनी को नलिनी का पत्र मिला छोटा सा—

"जीजी,

चरण-वन्दना।

यहाँ तुम्हारे देवर के घर आ गई हूँ तुम्हारा आशीर्वाद लिये। अपने स्वास्थ्य की अवहेलना करके जेठ जी की थाती की उपेक्षा न करना, बड़ा अपराध होगा।" और बहुत से आदेशों और प्रेरणाओं के बाद पत्र समाप्त होता था। नन्दिनी की आँखों का जल किसी प्रकार भी सूखता ही न था फिर भी उसे रह रह कर स्मरण आता था नलिनी का वाक्य—"वही तुम्हारा उपचार है और वही औषध।" पर नन्दिनी क्या करे, उपाय ही क्या है?

स्वयं नन्दिनी के भी मानो कोई कान में आ कर चुपके से बार-बार कह जाता था "उन्हें आना ही चाहिए, उनके आते ही मैं उठ खड़ी होऊँगी। वही मेरा उपचार है और वही औषध।" पर वह क्या करे? किसी से कह भी नहीं सकती। नन्दिनी सदा की ही शान्त और भावुक थी। तनिक सा संकेत देते ही कहीं माँ और मासी यह न समझें कि उन्हें सेवा और स्नेह का समस्त भार नन्दिनी देना नहीं चाहती, यही उसके होठों को, जिह्वा को बार-बार जकड़ सा लेता था। महेश के पत्र आते थे यदा कदा। नन्दिनी उन्हें बड़े प्यार से पढ़ कर, एक बार नहीं बार-बार पढ़ कर, तकिये के नीचे रख देती थी कि और भी अनेकों बार पढ़ सके। उत्तर सम्भवतः महेश को नहीं मिल पाते थे, फिर भी

नन्दिनी लिखती अवश्य थी अत्यन्त कष्ट से, अत्यन्त कठिनाई से। सब कुछ लिख कर भी अपने रोग की बात नन्दिनी ने कभी नहीं लिखी. वह पति के दुःख-भरे पत्रों से पति की पीड़ा पढ़ कर उसे और अधिक बढ़ाना नहीं चाहती थी। नन्दिनी को पत्र पढ़ कर सौ सर्पदंशन से भी अधिक पीड़ा होती थी यह सोच कर कि पत्नी हो कर अर्द्धाङ्गिनी हो कर भी वह पति की वेदना को बँटा नहीं पाती। यही उसकी निशिदिन की चिन्ता का विषय था।

कैप्टन महेश का फौजी जीवन से जी ऊब गया था। उसे धनाभाव किसी दिन भी नहीं था। अपनी इच्छा से ही एक दिन फौजी जीवन का मुक्त वातावरण उसे अपनी ओर आकर्षित कर ले गया था उधर। किन्तु यह क्या! सदा तो वहाँ न सुरा थी और न नृत्य, न भोजनपान का आनन्द। डा० कैप्टन महेश को धोखा हुआ और वह फँस गया। यूँ भी महेश आँखों के सम्मुख प्रतिदिन किये जाने वाले मृत्यु के साथ परिणय को सहज ही पी न सका। वह घबरा गया; किन्तु उपाय था ही कहाँ। जिस दिन वह स्वेच्छा से फौजी जीवन को स्वीकार कर चुका था और जिस दिन उसे "फ्रंट" की ओर चलना पड़ा था उसी दिन तो वह उपाय की दिशा के कपाट स्वयं ही बरबस ढकेल ढकाल के बन्द कर आया था। अब प्रयत्न करके भी उन्हे खोल कहाँ पाता था। मन की खीझ, बेबसी और भय निकल पाता था केवल मात्र पत्नी को लिखे गये पत्रों मे। मित्रों को लिखने पर हँसी होने का भय था। माता-पिता को लिखने पर भी डाँट-फटकार और "हम तो पहले ही मना करते थे तब तो माने नही साहब बहादुर," सुनने का डर था। पर पत्नी···नहीं

वह तो सब कुछ सहेगी, निश्शब्द सहेगी, अतः महेश हृदय का भय निश्छल भाव से नन्दिनी के पत्रों में खोल देता था, और जब कभी नन्दिनी का उत्तर मिल ही जाता था तो उसमें भरा होता था आत्म-प्रवंचना के उत्तर मे घना आत्मविश्वास, भय के उत्तर में साहस और स्नेहकल्पना की निराशा के उत्तर मे सुदूर-स्थित पति के स्नेहदान की आशा। माँ भोली थी, कुछ मूर्ख भी थी; किन्तु मामी तो समझदार थीं। उनकी चिन्ता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। नन्दिनी को उनके घर आये अठारह दिन बीत गये किन्तु अवस्था मे तनिक भी परिवर्तन नही हुआ। प्रति-दिन ज्वर आता है, लड़की सूख कर काँटा हो गई है, उसकी आँखें भीतर धँस गई हैं और होठों पर लालिमा की जगह पीलापन छाने लगा है। डाक्टर न तो रोग का परिचय ही पाते है और न ठीक ठीक उपचार ही कर पाते हैं। यूँ तो दृढ़ता-पूर्वक तीन डाक्टरो के दल ने घोषित कर दिया है कि रोगिणी का रोग राज-यक्ष्मा नहीं है कुछ और ही है, किन्तु वह क्या है उसका पता वह थूक रक्त आदि की परीक्षा करके तो लगा पाये नहीं। माँ की आँखों का जल सूखता ही नही था और मामी के हृदय की विकट चिन्ता उनकी आँखों के जल तक को झुलसाये रखती थी। किन्तु उपाय ही क्या था? डाक्टर, वैद्य, हकीम यही सब तो आजकल मामी के भाग्य-विधाता बने हुए थे। मामी स्वयं भी अर्द्ध-विक्षिप्त-सी ही रहती थी। किन्तु सब कुछ होते हुए भी रोग का निदान हो ही नहीं पाता था। नन्दिनी कभी-कभी मामी से सस्नेह कह देती थी—"माँ तुम मुझे व्यर्थ ही वहाँ से उठा लाई। ऐसा करके तुमने अपनी चिन्ताओं में

हो वृद्धि कर डाली और क्या ? मै तो वहाँ भी अच्छी तरह से थी।" मासी मन ही मन एक तीव्र निश्वास दबा कर कहती—"यदि उस घर के लोगो के हृदय विवाह से पूर्व देख पाती तो अपनी लाड़ली बच्ची को वहाँ भेजती ही क्यों ?" किन्तु प्रकाश्य रूप से कहती—"सो यहाँ तुझे कुछ कष्ट है ?"

"नहीं माँ, सो नहीं कहती। मेरे कारण तुम्हे कष्ट जो है।" मासी हँस कर कहती—"और उस दिन कहाँ फेंक आती जब कि नन्ही सी इक्कीस दिन की तू दस्तो के कारण कष्ट पाती हुई मुझे निरन्तर तेईस दिन तक घनघोर शारीरिक और मानसिक कष्ट देती रही थी ? तब क्या कहीं से तेरी सास और ससुराल वाले तुझे ले जाने को आये थे।" नन्दिनी चुप हो जाती। मासी फिर अचानक कह उठती—"नन्दो, अपने बच्चे होंगे तब जानोगी कि माता पिता को बालकों के लिए किया हुआ कभी और किसी अवस्था में भी कोई काम कष्टकर प्रतीत नहीं होता।" नन्दिनी को उसी समय महेश के पत्र के वाक्य याद आ जाते—"अब इस जीवन मे सम्भवतः तुम से भेंट न हो। क्या तुम पुनर्जन्म में विश्वास करती हो ? यदि हाँ, तो क्या उस जन्म तक मेरी प्रतीक्षा करोगी ?" नन्दिनी की आँखें भर आतीं और फिर कई घंटे वह मौन पड़ी रहती। मासी सोचती कि नन्दिनी थक कर सो गई है। इसके पश्चात् नन्दिनी की पीड़ा बढ़ जाती किन्तु वह किसी से कहती इसीलिए नहीं कि इससे उसकी माँ और मासी की चिन्ता बढ़ ही तो जायेगी। भावुक नन्दिनी तिल-तिल करके जल रही थी और उसके साथ ही साथ जल रही थी दो विधवा अनाथा स्त्रियों की चिर संचित

सुखाभिलाषाएँ। ऊपर बैठा हुआ विधना जिसने विश्व के समस्त कठोर विधान बिना एक बूँद भी आँसू डाले बनाये हैं धीरे-धीरे मुस्करा रहा था उन अबलाओं की चिन्ता को लक्ष्य करके और दूर बैठी हुई एक और कन्या अकारण ही उन सब की चिन्ता को अपनी चिन्ता जान कर चिन्तित हो उठी थी। झल्ला कर उस दिन मामी ने डाक्टर से कहा—"डाक्टर साहब, प्रतिदिन ही तो आप स्टेथेस्कोप लगा-लगा कर देखते हैं। ढेरों औषधियाँ बिचारी लड़की के गले तले उतरवाते है, पर लाभ तो कुछ नहीं होता। भला कारण क्या है?"

डाक्टर इस परिवार का पुराना मित्र था। नन्दिनी को उसने गोदी में भी देखा था और फ्राक में खेलते हुए भी, फिर सलवार कमीज में और फिर साड़ी में लिपटी-लिपटाई नववधू की भाँति श्वशुरालय जाते हुए भी। उन्हें सचमुच ही नन्दिनी से स्नेह था। वृद्ध डाक्टर अतिशय कोमल स्वर में बोले—"बहिन जी, नन्दिनी को अपनी औषधि सेवा-यत्न से कुछ लाभ पहुँचा सकूँ इससे अधिक सुख की बात मेरे लिए और क्या होगी? किन्तु करूँ क्या? न तो रोग ही ज्ञात होता है और न कारण ही।"

स्वर की कोमलता ने मामी को अपनी भूल भली प्रकार जना दी और वह चुप हो गई। किन्तु अचानक ही नन्दिनी की दो आँखों की दो कोरों से खारी जल की दो भारी बूँदें चू कर तकिये पर गिर पड़ीं। यद्यपि उन्हें और किसी ने नहीं देखा किन्तु वृद्ध डाक्टर की आँखों से वह छिपी न रह सकीं। फिर भी डाक्टर उठ खड़े हुए। मामी उन्हें पहुँचाने द्वार तक आई। साहस करके डाक्टर ने मामी से कहा—"बहिनजी, दामाद को किसी प्रकार

बुला लो ना !" मासी ने घबरा कर पूछा—"डाक्टर साहब, बात क्या है ? क्या नन्दिनी अच्छी नहीं होगी ? नहीं नहीं, डाक्टर साहब ···।" डाक्टर ने बीच ही में टोक कर कहा—"नहीं बहिन, सो बात नहीं है, पर सम्भव है दामाद के आने से कन्या बिना औषधि के ही ठीक हो जाये।" मासी को अचानक स्मरण हो आया नन्दिनी के घर की छोटी वहू का अनुरोध नन्दिनी के पति को बुलाने के लिए। मासी ने सँभल कर कहा—"ठीक ही तो है डाक्टर साहब। मैं तो जान पड़ता है इतने दिनों तक अन्धी ही थी। देखिये, अवश्य प्रयत्न करूँगी। किसी तरह मेरी नन्दो उठ कर खड़ी हो सके।"

"तुम चिन्ता न करो बहिन जी, नन्दिनी शीघ्र ही ठीक हो जायेगी।"

डाक्टर को बिदा करके लौट आने पर नन्दिनी की मासी के सामने का मानो अन्धकार हट गया। उन्होंने बहिन से आ कर कहा—"लो, इतने दिन तक तो हम सब अंधे ही रहे, आज कुछ प्रकाश दीख पड़ा है।"

"सो क्या ?"

"दामाद को किसी प्रकार लाना ही होगा।"

"पर वह आयेगा कैसे ? वह लड़ाई पर जो गया हुआ है।"

"जैसे भी हो उसे लाना ही होगा। वही तो सम्भवतः मेरी नन्दिनी का प्राणदाता सिद्ध होगा। उसी की चिंता तो इसका रोग है।"

माँ को विश्वास नहीं हुआ, फिर भी बहिन के प्रयत्न में सर्वथा ही उनका विश्वास न हो सो बात भी नहीं थी। यूँ स्वयं भी

उनकी इच्छा यही थी कि दामाद लड़ाई से सकुशल लौट कर घर आ ही जाय। किन्तु मासी अब मन-प्राण से महेश को रणक्षेत्र से लौटा लाने की ही बात सोच रही थी। कहीं कोई उपाय दीख नहीं पड़ता था। पर मासी ने तो असाध्य को साध्य करना ही जाना था, उसे असाध्य कह कर छोड़ देना नहीं, और यह तो उनकी जीवन-मृत्यु के आधार को स्थिर रखने की बात थी ना। नन्दिनी ने भी भनक सुन ली। वह मन ही मन कहने लगी—"हे नारायण उन्हें सकुशल लौटा लाओ। मैं उनके श्रीचरणों के दर्शन करके मर सकूँ, सो ही उपाय करना।" पर उसका हृदय भय से कांप उठता था पति के वाक्य स्मरण करके—"सम्भवतः इस जन्म में हमारा मिलन न हो सकेगा, तो भी मैं क्या यहाँ सुखपूर्वक मर सकूँगा? कभी नहीं, तुम्हारा भोला मुख हर समय मेरे स्मृति-पटल पर खेला करता है। उसे देखे बिना मरा भी तो नहीं जाता।" नन्दिनी की आँखें तुरन्त भर आतीं।
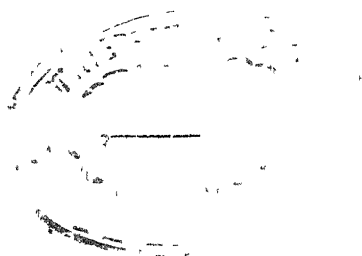
पराया भार

"बेटा, तुम तो स्वयं समझदार हो, तुम्हे और क्या समझाऊँ। देख सुन कर जो उचित समझो सो ही करो।" रविदत्त के मामा ने दीनता भरे स्वर मे कहा।

"आपकी आज्ञा ही मेरे लिए उचित और अनुचित की व्याख्या है।" डा० रविदत्त ने सरलता से कहा।

"नहीं, नहीं, बेटा मै तो तुम्हारे लिए कभी कुछ भी न कर सका और तुमने औरस पुत्र से भी बढ़ कर माना, यही क्या कम है। वृद्ध मामा की आँखे छलछला आई। रविदत्त ने विनय से कहा—"आप की कृपा से ही तो मनुष्य बन सका हूँ मामा जी। आप ऐसा न कहे। जैसे होगा मै नन्ही के विवाह का प्रबन्ध करूँगा।"

"और टीपू ?"

"टीपू का भी कुछ न कुछ करूँगा ही।"

वृद्ध मामा हुक्का उठा कर धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गये। डा० रविदत्त ने कमीज के बटन लगाते हुए सोचा—"क्या यही जीवन है ? बाल्यकाल मे स्नेह नही पाया, वात्सल्य नहीं पाया। यहाँ तक कि किसी से साधारण-सा सरल व्यवहार भी नहीं पाया। यौवन मे मित्रता मिली महेश की और वह मेरे लिए कितनी प्रलोभनीय थी। फिर, फिर वह एक दिन अचानक ही बिला गई कहीं शून्य में। कितना कठिन था हृदय पर वह

आघात! और फिर आज पाया है एक बड़े से कुटुम्ब का ऋण भार, कर्तव्य भार और मामी का सदा का कटु अपमान भरा व्यवहार। यही मेरे जीवन की संक्षिप्त सी व्याख्या है। इसमें कहीं आशा नहीं, विराम नहीं, यहाँ तक कि कहीं साधारणतया अबाध गति भी नहीं।" जल्दी-जल्दी कमीज के बटन लगा कर रविदत्त ने सोचा—"मँहगाई के दिन, तीन सौ रुपये, उन्नीस प्राणियों का परिवार। फिर लड़की का विवाह। रुपये पैसे के लोभ से भरा हुआ विवाह संस्कार। और उद्दण्ड दुष्ट लड़के पर अदालत में सरकार की ओर से चलाया हुआ केस! उसके लिए भी धन की आवश्यकता। धन⋯धन⋯धन और रात-दिन पसीने के बदले में उपार्जित तीन सौ रुपये!" डा० रविदत्त अनाथ रविदत्त, घर परिवारहीन रविदत्त, धम्म से कुर्सी पर बैठ गया। उसे जान पड़ा कि दिन का प्रकाश कम हो गया है। इसी समय घड़ी ने टन-टन करके एक के बाद नौ घंटे बजाये। रविदत्त उठ खड़ा हुआ। उसे बैठने की सुविधा कहाँ है? चिंता करने के लिए भी समय कहाँ है? यहाँ तक कि रोने के लिए भी समय का अभाव है। इसी समय आँगन के एक कोने से मामी की कर्कश स्वर लहरी सुन पड़ी—"अजी ओ डा० साहब, आज खाना खाओगे कि नहीं?" इस स्वर की उपेक्षा कर सकना रविदत्त की शक्ति से बाहर की बात थी। रविदत्त ने वहीं से कहा—"आता हूँ मामी," और तुरंत ही रसोई में जा पहुँचा। रविदत्त को देखते ही जान पड़ा कि आज मामी की आँखें सूजी हुई और लाल हैं, मुख उतरा हुआ है और जान पड़ता है कि वह बड़ी देर तक रोती रही है। कुछ पूछने

का साहस नहीं था। सम्भवतः जिन्हें विधाता छोटी सी आयु में जनहीन कर देते हैं उनके भाग्य में अमिट स्याही से बड़ी भारी विडम्बना लिख देते हैं आशंका के रूप में। यावज्जीवन उनमें सहमने, भय खाने और स्वहीनत्व को मन-प्राण से पालने की भावना जीवित रहती है। रविदत्त भी अत्यन्त भयभीत प्रकृति का व्यक्ति था। मन के भीतर अत्यधिक आत्माभिमान, स्वगौरव भावना और निर्भयता लिये हुए भी वह किसी से बाह्य रूप से मुख खोल कर ठीक-ठीक बोल पाता भी नहीं था और अकारण विरोध करने की प्रकृति का तो उसमें सर्वथा ही अभाव था। फिर भी सदा की ही कटुभाषिणी मामी के प्रति आज रविदत्त का हृदय सदय हो उठा। उसने चुपचाप भोजन करना आरम्भ कर दिया। सहसा मामी ने मुख उठा कर कहा—"रवि, क्या सचमुच टीपू को सजा हो जायगी ?"

रविदत्त ने अब समझा कि पीड़ा किस स्थान पर हो रही है। उसके अंतर को किसी ने बलिष्ठ हाथों से एक-बारगी निचोड़ डाला। फिर भी मामी की, नारी की, असहाय नारी की दयनीय मूर्ति रविदत्त को अत्यंत करुण जान पड़ी। मामी की कटुवाणी से वह परिचित हो चुका था। मामी के सकारण और अकारण लगाये जाने वाले अभियोगों का वह अभ्यस्त था। किन्तु यह तो एक नई ही दिशा थी। मामी की नयनकोरों में आँसू! फिर भी रवि ने कुछ चिढ़ कर कहा—"सो ही तो जान पड़ता है।"

"पर बेटा, बहू जो रो-रो कर जान दिये दे रही है।"

रविदत्त को जान पड़ा कि इस बहू के रो-रो कर जान देने का भी उत्तरदायित्व मानो उस पर है। उस दिन की ही तो बात

है कि रविदत्त ने आवारा ममेरे भाई के विवाह का विरोध किया था पर सुनना और समझना तो एक ओर, मामी ने बड़ी दृढ़ता से तर्कपूर्ण भाषा में यह सिद्ध कर दिया था कि रविदत्त ममेरे भाई से ईर्ष्या करता है और इसी कारण उसके विवाह का विरोध करता है। आज उसी विवाह के फलस्वरूप घर में आये हुए एक अन्य प्राणी के रो-रो कर मरने का निवारण करने का उत्तरदायित्व भी उस पर ही है। न जाने किस अनजाने क्षण में भगवान अनजाने अनसुने कुछेक लोगों के अनपेक्षित अनावश्यक भार का बोझा ढोने के लिए कुछेक व्यक्तियों की सृष्टि कर देते हैं और फिर उन व्यक्तियों की वेदना का असीम भार जब उनकी कमर को अकाल में झुका देता है तो स्वयं निर्लिप्त भाव से अदृश्य बैठे हुए हँसा करते हैं। उसकी इच्छा हुई कि चिल्ला उठे—"यह भार मेरा नहीं है, मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा, नहीं करूँगा, कभी नहीं करूँगा, किसी भी काल में नहीं करूँगा।" पर रविदत्त कह पाया नहीं। कह पाया केवल इतना ही—"सो तो सच है मामी, पर टीपू ने डाकुओं का साथ दिया है, सरकार उसे सहज ही छोड़ न देगी।"

रविदत्त को ध्यान ही नहीं रहा कि उस अँधेरे रसोई घर के एक कोने में बैठी हुई नववधू पर भी उसके शब्दों का प्रभाव पड़ रहा है अथवा जानबूझ कर रविदत्त ने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि गँवई गाँव की उस नन्हीं-सी बालिका पर उसके शब्दों का क्या प्रभाव पड़ सकता है। मामी ने अत्यन्त दीन स्वर में कहा—"उसने जो भी कुछ किया हो, है तो वह तुम्हारा भाई ही। उसके लिए कुछ तो करो।" रविदत्त का जी चाहा कि

चिल्ला उठे—"यह सब असत्य है. माया है ढोंग है। रविदत्त तुम्हारा कोई नहीं है। कोई नहीं है। उसका विश्व ब्रह्माण्ड मे अपना कह सकने योग्य कोई नहीं है। आज उसे जो कटु शब्दों के बदले दीनस्वर की प्रार्थना मिल रही है भोजन के साथ, सो सब नारी की स्वार्थपरता, स्वसन्तान के प्रति ममता भर है और कुछ नहीं, और तनिक भी कुछ नहीं।" पर इस बार भी रविदत्त कुछ विशेष कह न सका, कहा साधारण से स्वर मे यही—"देखूँगा क्या कर सकता हूँ, कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा।" मामी अभी कुछ और भी कहती, पर रविदत्त को सुनने की न तो इच्छा ही थी और न उसमे शक्ति ही। उसने सहज भाव से कहा—"मामी. थोड़ा गुड़ तो देना।" रविदत्त को गुड़ कभी भी भाता नहीं था पर आज मामी को टालना जो चाहता था। मामी भी आज रविदत्त की किसी भी माँग की उपेक्षा नहीं कर सकती थी, फिर भी स्वभाव-वश कह उठी—"गुड़ बचता ही कहाँ है तुम लोगों के मारे।" पर तुरन्त ही सँभल कर बोली—"देखती हूँ थोड़ा-सा मिल जाये तो लाये देती हूँ।" और मामी पैर पटकती चली गई।

सास के जाते ही बहू ने तनिक धीमे से स्वर मे कहा—"भाई साहब, माँ तो यूँ ही कहती है, आप उनके झंझट मे तनिक भी न पड़ियेगा।" आश्चर्य से चकित हो कर डा० रविदत्त ने मुख ऊपर उठाया ही था कि दीख पड़ीं दो जल भरी आँखें। रविदत्त स्वयं अपनी थोड़ी देर पूर्व की बातचीत का स्मरण करके झेंप गया। तो बहू यहीं बैठी थी! इससे पूर्व बहू ने कभी भी उससे बात नहीं की थी। कोई वैसी आवश्यकता भी नहीं पड़ी

थी। अत्यधिक साहस बटोर कर रविदत्त ने कहा—"सो क्यों? आखिर मैं उसका भाई हूँ। मैं न करूँगा तो और कौन उसका ध्यान करेगा।" अत्यन्त संयत स्वर में उस सोलह वर्ष की बालिका ने पंडिता की भाँति कहा—"आप ही क्यों पराया भार ढोते फिरेंगे? कर्म तो सबके अपने-अपने ही होते हैं। उनके दुष्कर्मों का भार यदि कोई अकारण ही अपने ऊपर ले तो मुझे यह भला कैसे सहन होगा।" डा० रविदत्त और भी अधिक चकित हो उठा। बालिका गाँव की अशिक्षित बालिका मात्र ही तो थी! उसने फिर कहा एक बार—"किंतु बहू, वह मेरे लिए पराया भार तो है नहीं।"

"पराया ही तो है। जिससे किसी दिन भी स्नेह नहीं मिलता, आदर भी नहीं मिलता, यहाँ तक कि सहायता भी नहीं मिलती, मिलती है केवल वेदना, वह पराया ही है। उसका भार आप क्यों लेंगे? बताइये तो सही? पर नहीं, आपको यह सब नहीं करना होगा।" मामी गुड़ ले कर आ गई थी। रविदत्त को गुड़ खाने की तनिक सी भी इच्छा नहीं थी, फिर भी वह अनिच्छा से गुड़ की डली मुख में रख कर सोचने लगा—"सचमुच ही मैं इनका भार क्यों लूँगा? पर यह छोटी-सी गँवई गाँव की लड़की, इसकी बातें और इसकी भाव-भंगी!" रविदत्त का खाना हो चुका था। बाहर नल पर कुल्ला करते हुए उसे जान पड़ा कि सब ही कुछ तो पराया भार है। यह शरीर भी, यह जीवन भी, सब ही कुछ, सब ही कुछ। मामी ने फिर एक बार बाहर आ कर कहा—रसोई घर से—"तो फिर रवि, आज टोपू के लिए कुछ करना।" एक छोटी-सी 'अच्छा' करके रवि जिस समय अपने

कमरे में कपड़े बदलने गया तो उसके मन में एक मात्र चिंता थी "पराया भार।"

और उसी समय एक दूसरे घर में देवर भावज बातें कर रहे थे।

"पर भाभी, तुमने मुझे तो बताया ही नहीं।"

"बता कर भी क्या होता भाई? जिस गाँव जाना नहीं उसका रास्ता पूछने से क्या लाभ?"

"सो ही तो। ठीक कहती हो, भाभी।"

"पर उनकी मासी ने ऐसी सोने की सी प्रतिमा का सर्वनाश कर डाला कुपात्र को दे कर।" ठीक यही गिरीश स्वयं भी कहना चाहता था पर उ के मुख से निकल ही नहीं सका। बरन् उसने सहज भाव से स्वयं अपने ही को धोखा देने की चेष्टा करने के लिए कहा—"नहीं भाभी, सो बात नहीं है। महेश बड़ा ही योग्य व्यक्ति है। वह एक बार यहाँ आ भर जाये, फिर उनके स्वस्थ होते देर न लगेगी।"

अपनी बात पर स्वयं गिरीश को विश्वास हो वैसी बात तो नहीं थी, पर गिरीश मन-प्राण से चाहता था कि वह यह विश्वास कर सके कि नन्दिनी सुखी है; महेश उसके योग्य है, कम से कम गिरीश से कहीं अधिक इस योग्य है और नंदिनी का जीवन सर्वथा आनंदमय है। नंदिनी के विवाह की बात ज्ञात होने से ले कर आज तक गिरीश यही सोच कर धीरज धरने का प्रयत्न करता रहा है कि महेश उससे कहीं अधिक नंदिनी के योग्य था, उपयुक्त पात्र था, तथा नंदिनी सुखी है, बहुत अधिक सुखी है। आज अचानक माँ के मुख से पड़ोस के घर की दुःखिनी कन्या

के रोग-भार से दबे-ढके ससुराल से तिरस्कृत हो कर आने की बात जब गिरीश ने सुनी तो वह एकबारगी ठक सा रह गया। तुरन्त भाभी के निकट जिज्ञासा करके उसने यह जान लिया कि समाचार असत्य नहीं है। न जाने किस राक्षसी प्रवृत्ति ने एक बार अचानक उसके कान मे कहा—"ठीक है...ठीक है, उस घर से उसके प्रस्ताव का जो अपमान हुआ था उसकी ज्वाला भी तो कुछ कम नहीं थी। यदि वह अपनी भूल पहचान पाये तो क्या बुरा है। दूसरे ही क्षण उसका उच्चादर्श-पूर्ण मन भर उठा ग्लानि से. "नहीं. नहीं, यह ठीक नहीं हुआ। नन्दिनी सब तरह सुखी हो. महेश को ले कर उसके जीवन का रसस्रोत सहस्र धाराओं से बहे। यही गिरीश के सन्तोष के लिए पर्याप्त है। गिरीश और अधिक कुछ चाहेगा क्यों? नन्दिनी सुख सौभाग्य से भरपूर रहे यही उसके मन की शान्ति का सम्बल होगा।" उसने बरबस विचारों को ठेल कर भाभी के निकट शिशु की सी सरलता से जिज्ञासा की—"भाभी, उसे क्या रोग है?"

"सो तो कोई भी जान नहीं पाता। इतने डाक्टर, हकीम, वैद्य देखते है. पर रोग का निदान नहीं होता भैया।"

"तुम देखने गई थी भाभी?"

"नहीं, गई तो नहीं थी, जाऊँगी भी नहीं। एक दिन अपने उचित प्रस्ताव की अस्वीकृति की जो ज्वाला ले कर लौटी थी उसकी जलन अभी तक मिटी नहीं है। पर यह इतनी जिज्ञासा क्यों गिरीश?"

"ठीक ही है भाभी, तुम्हारा जाना उचित नहीं। यूँ ही पूछ रहा था, कोई विशेष प्रयोजन नहीं है।" कह कर गिरीश बाहर

निकल आया भाभी के कमरे से। पर उसका मुख कुछ ऐसी वेदना से भर उठा था कि भाभी अपनी आँखे सूखी न रख सकीं। उनकी इच्छा हुई कि नन्दिनी की मासी के सम्मुख खड़ी हो कर एक बार कहे—"देखो, तुमने बहुत बड़े घर के बहुत लाड़ले पुत्र से पूरी-पूरी देख सँभाल और कदर न हो सकने की बात को ले कर जो प्रस्ताव एक दिन ठुकराया था, वही उस एक बड़े घर के लाड़ले पुत्र की निरन्तर त्यागमयी वेदना की ज्वाला से अभिशप्त हो कर तुम्हारे ही घर पर आन पड़ा है। उससे मुक्ति पाने का उपाय स्वयं ब्रह्मा भी नहीं कर सकेंगे।"

उस दिन क्लब में अचानक ही जब एक सखी ने उनसे कहा था—"लो भाई सामने आ गया ना। उस दिन नन्दिनी की मामी बड़े अभिमान के साथ तुमसे कह गई थी, 'भई मै तो अपनी लड़की ऐसे घर दूँगी जहाँ उसकी चाह होवे। तुम लोग बड़े आदमी हो, बड़े आदमियों के लाड़ले लड़के हम गरीबो की लड़की को आदर यत्न से ग्रहण करेंगे ही क्यो ?' अब वही सामने आया ना। कल तो मेरी माँ से रो-रो कर कह रही थी कि 'मैने आदमी पहचानने मे भूल की। यह तो मैं आँखो देख न आती तो कभी विश्वास भी न करती।' बड़ा पश्चात्ताप कर रही थी गिरीश के लिए अस्वीकृति देने पर। अब देख लिया ना आनन्द।"

भाभी स्वयं भी यही सब सोचती थी, किन्तु उनका मन उतना छोटा न था। दूसरे की विपत्ति की बात को वह इतनी सरलता से अपने प्रति किये गये अपराध का दण्ड किसी प्रकार भी स्वीकार न कर सकीं। विवाद करना व्यर्थ समझ कर उन्होंने

सहज भाव से पूछा—"क्या नंदिनी ने सुसराल के कष्ट बताये है ? महेश तो है नहीं, सास ससुर की ही बाते होंगी।"

"अरे राम का नाम लो। नंदिनी वैसी लड़की नही है। तिल तिल कर घुल के मर जाने पर भी उस लोक मे जा कर यमराज के सम्मुख वह अपने ससुराल वालो के विरुद्ध तनिक भी शिकायत न कर सकेगी। उसका वैसा स्वभाव ही नहीं है। वह तो स्वयं ही मुख खोलने से पूर्व लज्जा से मर न जायेगी। यह सब तो स्वयं उसकी मामी देख कर आई है ना। बिचारी बीमार लड़की को घर उठा लाई। सूख कर काँटा हो गई है। मुझे तो देखते ही रुलाई आ गई, पर वह तेज ज्वर मे पीड़ित भी मुसकरा कर कहने लगी—'चलो, रोगी हूँ तो भला आपके दर्शन तो हुए, यूँ थोड़े ही आप आती।' बडी भली लड़की है।"

करुणामयी भाभी की आँखे भर आई अनजान बनी हुई लड़की की निहित मूक वेदना की कथा से।

जानबूझ कर उन्होंने उस घर की लड़की, पीड़िता रोगिणी पराई लड़की, की व्यथा का समाचार उस लड़की के, पराई लड़की के, सर्वाधिक हितचिंतक अपने देवर से नही कहा। फिर भी जब वह समाचार किसी तरह गिरीश के कर्ण-कुहरो तक पहुँच ही गया तो भाभी गिरीश की व्यथा के अचिन्त्य भार से कुछ चिन्तित सी हो उठी। अपने देवर को भाभी पहचानती थी। उन्हे भली प्रकार ज्ञात था कि हृदय के टूक-टूक हो जाने पर भी गिरीश 'आह' भी नहीं करेगा, किसी के निकट धूम्र मात्र भी प्रकट न होने देगा। फिर भी वह अनकही मूक वेदना कैसी भयंकर होगी यह भाभी की तीव्र बुद्धि से छुपा न रह गया।

गिरीश भयंकर ज्वालामुखी हृदय में दबा कर ही बाहर गया है. उसकी भाफ भी किसी प्रकार कभी निकलेगी नहीं, यह वह जानती थीं. पर उसका विस्फोट कब कहाँ और कैसे हो जायेगा यही उनकी चिंता का विषय था। उनका देवर स्वेच्छा से ही अयाचित जो "पराया भार" अपने हृदय पर रख कर गया है वह उससे सर्वथा परिचित थीं ना।

आनन्द

"बहिन जरा शीघ्र हाथ चलाओ. आज वह आने वाले हैं ना।"

"अभी लो, क्षण भर में सब हुआ जाता है। तू जरा माली को एक ताँगा ले आने को तो कह दे।

"क्यों तुम स्टेशन जाओगी क्या ?"

"अरी कैसी है तेरी बुद्धि ? लड़का दो वर्ष पीछे घर लौट रहा है। उसके लिए नन्दी के प्राण लगे हुए हैं। उसे लौटा लाने को मैंने न जाने किन-किन की मिन्नत चिरौरी की, अपने आत्माभिमान को भी एक ओर रख कर करने योग्य न करने योग्य सब ही कुछ किया। अब आज जब वह फिर आ रहा है तो उसे लेने नहीं जाऊँगी और वह अकेला ही ताँगा करके घर आ जायेगा। ऐसी ही तेरी बुद्धि है ?" जरा खीझ कर मासी ने कहा।"

"सो नहीं कहती बहिन। केवल पूछा है। अभी माली को ताँगा लाने भेज देती हूँ।" माँ झटपट बाहर चली गई। मासी ने जल्दी जल्दी कढ़ाई से और दो चार मठरियाँ निकाल कर हाथ धो लिये। माँ आ कर कढ़ाई पर बैठ गई और मासी तैयार होने चली गई।

नन्दिनी का मन अत्यन्त प्रसन्न था। रह रह कर उसकी दुर्बल देह काँप उठती थी। आँखों में आँसू आ जाते थे। आज डेढ़ साल बाद उसके आराध्य देव घर आ रहे थे ना। नन्दिनी का आत्माभिमानी मन इसी बीच मासी की उन्हें लौटा लाने की हर प्रकार की चेष्टाओं पर रह रह कर रो उठता था। उसे खेद होता था कि वह नारी क्यों हुई। परन्तु आज यह ग्लानि बह

गई है। आज वह आ रहे हैं। यही नन्दिनी के मन का सबसे बड़ा उल्लास है। नन्दिनी को किसी दिन भी अपने सौंदर्य का ज्ञान नहीं रहा है। उधर ध्यान भी नहीं रहा। आज उसकी इच्छा हुई कि उसकी माँ उसका मुख धो कर बाल सँवार दे। उसके आराध्यदेव उसका पीला मुख देख कर निराश न हो जायें। उसे नलिनी के शब्द स्मरण हो आये कि यह शरीर जिनकी थाती है वही तो आज आ रहे है। नन्दिनी मृत्यु से पूर्व एक बार उनके चरण कमलों मे सिर रख कर इहलोक का सर्वाधिक प्रिय सुख पा जाना भर ही चाहती थी। वही शुभ दिन तो आज आया है। माँ ने उसके सिरहाने प्रतिदिन की भाँति बेले के ढेर सारे फूल रक्खे थे। आज उसने स्वयं माँग कर गुलाब और जूही के कुछ पुष्प भी रख लिये। काँपते दुर्बल हाथों से उसने एक बार फिर स्वामी का अन्तिम पत्र तकिये के नीचे से निकाल कर पढ़ा। एक स्थान पर लिखा था—"नन्दो, तुम्हारी मासी और मामा के प्रयत्नों से छुट्टी तो मिल गई है। चलो अच्छा हो हुआ, इस नरक से कुछ दिनों के लिए मुक्ति मिली। अब शीघ्र ही तुम्हारे पास पहुँच कर स्वर्ग का आनन्द लूँगा? तुम रोगिणी हो, यह भैया के पत्र से ज्ञात हुआ था। पर इससे क्या? इससे तो मैं तुम्हारी सेवा करके और भी अधिक तुम्हारे निकट आ सकने का अवसर भी पाऊँगा। मेरी बड़ी इच्छा है कि इसी समय उड़ कर तुम्हारी समस्त परिचर्या के भार से अन्य लोगों को मुक्त करके यह भार स्वयं मैं ही ले लूँ जिसका कि यह वास्तविक अधिकार है।" नन्दिनी पहली ही बार आज आठ मास बाद मुसकरा उठी। "यह उन्हीं का अधिकार है। दासी की सेवा स्वामी का अधिकार

है। आने दो, तब ही इस विषय में उनसे वादविवाद करूँगी।" उत्तेजना से ज्वर बढ़ गया। किन्तु नन्दिनी को तनिक भी कष्ट न था। वह तो आज अपने आपको पूर्ण स्वस्थ समझ रही थी। उसके मुख की प्रफुल्लता से माँ और मासी और भी अधिक आश्वस्त हो कर उस पराये लड़के के महत्त्वपूर्ण आगमन की प्रतीक्षा करने लगीं। मासी तो लड़की की मुखाकृति पर मुसकराहट, उल्लास और आनन्द की झलक लाने वाले इस लड़के के आगमन को ले कर मन ही मन उसकी अत्यधिक अनुग्रहीत हो उठीं।

ठीक समय से मामी डा० कैप्टन महेश को ले कर घर पहुँचीं। महेश साहब सीधे यहीं आ रहे थे, अभी अपने घर भी नहीं गये थे। सूचना भी नहीं दी थी। मामी से स्टेशन पर ही उन्होंने पत्नी के स्वास्थ्य के विषय में बहुत कुछ जान लिया था। घर आ कर नन्दिनी के पीले मुख को देख कर उन्हें बड़ा ही कष्ट हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने बार-बार अनेक प्रकार के शब्दों और प्रांजल भाषा में करके घर भर के प्राणियों को भली प्रकार जता दिया कि नन्दिनी की सेवा एकमात्र उन्हीं का अधिकार है और अन्य सब ही को अब वह इस कष्ट से मुक्त कर देंगे।

मासी ने अत्यधिक आश्वस्त हो कर कहा—"यह तो ठीक है बेटा। मैंने इतने दिन तुम्हारी थाती सँभाल कर रखी थी। आज तुम्हारे ही हाथों सौंप दी। अब इसकी देख-भाल तुम्हारा अधिकार तो है ही।"

फिर से एक बार डा० कैप्टन महेश की रुचि के अनुसार डाक्टर आये। फिर से सारी परीक्षाएँ हुईं। फिर से सारे उपचार आरम्भ हुए। किन्तु सब ही ने आश्चर्य के साथ देखा कि एक

सप्ताह में ही नन्दिनी का ज्वर शीघ्रता से घटने लगा है। पीड़ा भी कम है और स्वास्थ्य के चिह्न भी दीख पड़ने लगे हैं। माँ, मामी और महेश की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। नन्दिनी महेश से बार बार कहती—"तुम इतनी चिन्ता न किया करो। अब तुम आ गये हो तो मैं मरूँगी थोड़े ही। तुमसे सेवा करवाते लज्जा आती है। अब मैं शीघ्र ही तुम्हारी सेवा करने योग्य हो जाऊँगी।" महेश हँस कर कहता—"यही तो मै चाहता हूँ। तुम्हारी सेवा पाने के लिए ही तो तुम्हे स्वस्थ करना चाहता हूँ।" रोगावस्था में नन्दिनी के हृदय-पटल पर जो एक विस्मृत मूर्त्ति कभी कभी आन खड़ी होती थी, जो एक मुख कभी-कभी उसे किसी एक दिन किसी एक की कार में मासी सहित बैठ कर घर लाये जाने की स्मृति करा देता था और जिसे वह बरबस दोनों हाथों से हृदय से बाहर ढकेल कर हृदय के कपाट दे देती थी, महेश के आने से इस असीम आनन्द में वह प्रतिमा भी खो गई, डूब गई। कहाँ विला गई, सो स्वयं नन्दिनी भी जान नहीं पाई। यह उसके सुख के दिन थे, यह उसके आनन्द के दिन थे। पत्र के उत्तर में नलिनी ने लिखा था एक स्थान पर "मेरी सती लक्ष्मी जीजी की मूक साधना के सफल होने में सन्देह रत्ती भर भी नहीं था। अब देखते हैं कि जेठ जी की साधना में कितनी शक्ति है।" पढ़ कर नन्दिनी हँस पड़ी थी। महेश ने भी पढ़ कर केवल हँस दिया था। किन्तु मानवीय दृष्टियों से परे कहीं पर कोने में बैठा एक और जो मदारी मुसकरा उठा था, उसे किसी ने भी देखा नहीं, जाना नहीं, सुना नहीं।

———

"मेरी पत्नी इन दिनों कुछ अस्वस्थ है शालिनी।"

"इतनी पत्नी-भक्ति कब से आरम्भ हो गई महेश?" शालिनी ने तनिक सा हँस कर कहा, "जो भी हो, यह तो बताओ कि नन्दिनी को हुआ क्या है?"

"कुछ विशेष नहीं। इधर कुछेक मास से ज्वर आने लगा है। अब तो कुछ स्वस्थ ही जान पड़ती है। आज स्वयं नन्दिनी ने ही बरबस मुझे क्लब भेज दिया।"

"सो क्यों?"

"वह कहने लगी कि घर बैठे-बैठे ऊब जाओगे। अब तो मैं ठीक हूँ, तनिक क्लब हो आओ। मित्र-प्रेमी-जन भी मिल जायेंगे।"

"सम्भवतः वह तुम्हारे मित्र-प्रेमियों को जानती नहीं है, नहीं तो आने का सहज ही अनुरोध न करती।" कह कह शालिनी स्वयं ही खिलखिला कर हँसने लगी। खिलखिलाहट से समस्त वातावरण गूँज उठा। महेश शालिनी को सदा ही लालायित दृष्टि से देखता था, पाने की चेष्टा भी किया ही करता था; किन्तु आज पुराने मित्र रवि के सम्मुख ही इस प्रकार का अपमान उसे खल गया। मन ही मन वह इस उद्दंड नारी के व्यवहार पर जल-भुन गया। हँसी कुछ कम होने पर शालिनी ने कहा—"देखो महेश, नन्दिनी मेरी बाल्यावस्था की सहपाठिनी है। मैं किसी दिन उसे देखने अवश्य आऊँगी। यह बात तुम उससे कह कर उसकी अनुमति ले रखना। जान पड़ता है अनुमति प्राप्त

करने में विशेष कठिनाई नहीं होगी।"

महेश समझ गया था कि शालिनी उसकी हँसी उड़ा रही है। कटु स्वर में महेश ने उत्तर दिया—"देखो शालिनी, नन्दिनी मेरी धर्मपत्नी है, और कुछ विदेश जा कर शिक्षा प्राप्त की हुई नहीं है। वह है सरल चित्त और शान्त प्रकृति हिन्दू नारी।"

इस बार शालिनी और रवि दोनों ही खिलखिला कर हँस पड़े। महेश किसी दिन भी भारतीय सभ्यता का भक्त नहीं था। यहाँ तक कि सदा सर्वदा उसने पश्चिम की ही सभ्यता को आदर्श मान कर चलना सीखा था। आज अचानक ही उसे 'भारतीय सभ्यता' और 'हिन्दू नारीत्व' की दुहाई लेते हुए देख कर सचमुच रवि की हँसी रुक ही नहीं रही थी। रवि महेश को सचमुच ही प्रेम करता था। उसने महेश के निकट स्नेह भी बहुत-सा अयाचित ही प्राप्त किया था। और उस प्राप्ति के इतिहास की एक नन्ही-सी रेखा मात्र भी चिर-स्नेह-दरिद्री रविदत्त के मन से किसी दिन मिटी नहीं थी। फिर भी रवि अपनी हँसी न रोक सका। महेश आज अत्यन्त उत्तेजित हो उठा था। उसे शालिनी की हँसी पर इतनी झुँझलाहट नहीं थी। उसे वह किसी न किसी प्रकार सहन कर ही लेता। इससे पूर्व अनेकों बार उसने शालिनी की हँसी मुसकरा कर पी डाली थी। किन्तु दरिद्र मित्र रविदत्त की हँसी महेश के प्राणों में चुभ गई। महेश तड़प उठा। उसका जी चाहा कि अत्यन्त कटु शब्द शर से शालिनी और रविदत्त को छेद डाले। किन्तु ऐसा कर सकना कुछ सरल तो था नहीं, अतः महेश उठ खड़ा हुआ। इस बार उसने केवल शालिनी को ही सम्बोधित करके कहा—

"अच्छा, तो फिर मैं चलता हूँ डाक्टर कुमार। किसी दिन दर्शन अवश्य दीजिएगा।"

शालिनी स्वभाववश महेश की हँसी तो उड़ा लेती थी किन्तु उसे सचमुच ही रुठा देने की इच्छा उसे नहीं होती थी, वैसी प्रवृत्ति भी नहीं थी। अतः शालिनी ने महेश का हाथ पकड़ कर कहा—"तनिक और बैठो महेश, कितने दिनो बाद तो दीख पड़े हो। कुछ तो सहपाठिनी का अनुरोध भी मानना चाहिए।"

महेश की इच्छा हुई कि स्पष्ट रूप से कह दे—अनुरोध नहीं, आज्ञा कहो शालिनी। महेश तुम्हारी आज्ञा का पालन न करे ऐसी शक्ति उसमें है ही कहाँ? इसी समय उसके मन मे उदय हो आई नन्दिनी, रोगिणी नन्दिनी की कुसुम कोमल प्रतिमा, जो अत्यधिक उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। महेश का अन्तस्तल मथा-सा गया। उसने बैठ कर कहा—"आपकी जैसी आज्ञा।" पर मन ही मन वह रो उठा—कैसी मायाविनी कितु कितनी अद्‌भुत शक्तिशालिनी है यह रमणी!

अब शालिनी कह रही थी—"बहुत दिन विदेशो में रही हूँ महेश, और रही भी आँख कान खोल कर हूँ। उन देशो की नारियों का जो भयभीत रूप देखा है वह और भले ही कुछ हो, न तो स्पर्द्धा की ही वस्तु है और न ईर्षा की ही।"

रविदत्त को उसी क्षण मामी का कठोर भयंकर स्वरूप और घर के अयोग्य, दुष्ट और दुःस्वभावी लड़के की तेजस्विनी बहू का रूप स्मरण हो आया। उसने कुछ सहमे हुए स्वर मे कहा—"यह क्या, पश्चिम की नारी हमारे देश की नारी से अधिक स्वतन्त्र और तेजस्विनी सुन पड़ती है। यदि उसे आप भयभीत

कहती हैं तो इस देश की भय दिलाने वाली नारियों के विषय में आपका क्या मत होगा सो जानना कठिन है।"

"कहना क्या चाहते हो रविदत्त, सो मैं समझी नहीं। मैं तो यही कहना चाहती हूँ कि महेश ने जो अभी हिन्दू नारी को ले कर अपने स्वर में प्रशंसा की ध्वनि भरनी चाही थी सो क्या केवल मात्र प्रतारणा ही नहीं है। इसी प्रकार का मिथ्या अभिनय मैं विदेशों में बहुत दिनों तक देखती रही हूँ, किन्तु उसे किसी दिन भी ईर्षा की वस्तु नहीं समझ सकी।"

"यह आपकी उदारता है शालिनी जी।" महेश की इच्छा इस समय उस विषय को और छेड़ने की न थी। जो कुछ वह नन्दिनी के विषय में कह गया था उसका कारण भी महेश की हिन्दू-नारी के प्रति आन्तरिक श्रद्धा नहीं थी, वरन् थी केवल शालिनी को नीचा दिखाने की भावना। किंतु शालिनी तो संकुचित हुई नहीं, अतः महेश स्वयं ही छोटा हो गया अपनी दृष्टि में। उसे और अधिक खींच तान कर अपनी यूँ छीछालेदर होते देख कर महेश प्रसन्न न हो सका। प्रसन्न होने पर अधिकार भावना को दृढ़ करने के विचार से महेश शालिनी को 'तुम' कह कर सम्बोधित करता था, किंतु अप्रसन्न होने पर वही 'तुम' 'आप' में और 'शालिनी' 'शालिनी जी' में परिवर्तित हो जाया करता था। शालिनी इसे भली प्रकार जानती थी, किंतु रविदत्त अचानक परिवर्तन पर कुछ अचकचा गया। शालिनी ने जानबूझ कर अनजान बनते हुए कहा—"सो कैसे?

"और नहीं तो क्या? देखिए ना, भारतीय नारी श्रद्धा की वस्तु भले ही हो, स्नेह की केन्द्र-स्थान भले ही हो, किंतु किसी

देश की नारी की ईर्ष्या की वस्तु नहीं हो सकती। माना कि भारतीय नारी की सहनशीलता अद्भुत है, यहाँ तक कि आदरणीय भी है, किन्तु प्रलोभनीय नहीं है।"

रविदत्त चकित हो गया। महेश ने अभी क्षणेक पूर्व तो भारतीय नारी को अत्यन्त आदर सम्मान की दृष्टि से देखने दिखाने का प्रयत्न किया था, किन्तु इतनी ही देर में यह आमूल परिवर्तन हुआ कैसे और इस तर्कहीन शैली से यह असम्बद्ध सिद्धान्त का प्रतिपादन कैसे करने लगा यही रवि के लिए घने आश्चर्य का विषय था। किन्तु शालिनी तो महेश के यथार्थ व्यक्तित्व से सुपरिचित थी। उसी का चित्र वह आज उलट पलट कर देखना चाहती थी कि नन्दिनी का व्यक्तित्व उसमें कोई और रंग भर सका है अथवा नहीं। शालिनी ने छेड़ने के से ढंग से कहा—"मैंने यह कहा ही कब है कि भारतीय स्त्री का नारीत्व अत्यन्त प्रलोभन की वस्तु हो उठा है विश्व ब्रह्मांड के लिए। मैं तो केवल मात्र यही कह रही हूँ कि विदेश की नारी का व्यक्तित्व भी आकर्षण की वस्तु नहीं है।"

"पहले नहीं बूझ पाया शालिनी," रविदत्त ने कहा। शालिनी ने मछली के आकार के गालों तक लटकते अत्यन्त सुन्दर और मूल्यवान दोनों कानों के कुंडल तनिक सा हिला कर और साड़ी के पल्ले को तनिक सा कंधे से खिसका कर कहा—"समझ पाओगे भी नहीं, पुरुष हो ना। नारी का नारीत्व कहीं, किसी देश में, भी प्रलोभन की वस्तु नहीं बन पाया है। विदेश में उसे पुरुष खिलवाड़ की वस्तु बनाते हैं, कृत्रिम और क्या जाने मिटने वाले अस्थायी किन्तु अकृत्रिम स्नेह के नाम पर। नारी

जीवन-द्वार पर प्रवेश पाने से पूर्व पाती है एक क्षणिक आश्वासन; किन्तु कितना ओछा होता है वह आश्वासन, स्नेह का वरदान, जिसका न तो कोई आधार होता है और न नींव और न भित्ति। द्वार के भीतर प्रवेश पाते ही नारी समझ जाती है कि वह स्नेह का आश्वासन कितना अपूर्ण था, कितना ओछा था और था कितना सारहीन।"

शालिनी की साँस भर उठी थी। वह तनिक ठहर गई। इसी समय महेश ने व्यंग से कहा—"फिर?"

"फिर की कथा संक्षिप्त सी है। फिर एक दिन उसे जान पड़ता है कि अधेड़ अवस्था के दाँत की तरह उसके स्नेह की नींव हिल रही है। जानते हो वृद्धावस्था के प्रथम परिचायक जब दो-चार सफेद बाल दीखने लगते हैं, एक आध दाँत तनिक सा हिलने लगता है तो मानव का मन विषाद से भर उठता है। उसी प्रकार जब नारी को दीख पड़ता है कि प्रवेशद्वार बहुत पीछे छूट गया, उस तक लौट जाने का कोई उपाय है नहीं और जिस वाहन पर चढ़ कर यहाँ तक पहुँची थी वह नीचे से धीरे-धीरे या एकबारगी हिल रहा है, खिसक रहा है, तो वह अत्यधिक निराश, थकित और भयभीत जान पड़ती है। प्रतिकार तो उसके वश में होता नहीं किन्तु भय खाना तो उसका स्वभाव ही बन जाता है। प्रत्येक क्षण, प्रत्येक पल, उसके जीवन में नवीन भय की सृष्टि करता जाता है और वह जीवन के थकित भाग को भयभीत मन से धीरे-धीरे पार करने का प्रयत्न करती हुई अत्यन्त दयनीय जान पड़ती है।"

"किन्तु उपाय उसके हाथ में न हो सो बात तो है नहीं। वह

भारतीय नारी की भाँति हृदय के दिवाले की रसीद ले कर घर घाट फिरने को विवश तो होती ही नहीं है। क्यों न वह सरलता से एक दुकान उठा कर दूसरी लगा ले?" रवि कहना चाहता था कुछ और भी किन्तु शालिनी ने बीच में ही दोनों हाथ उठा कर उसे रोकते हुए कहा—"रहने दो, रहने दो। जिस सत्य की स्वयं कभी परीक्षा न की हो उसका प्रचार करना जितना अधिक असत्य है उतना ही वृहत् अपराध भी। एक दुकान उठा कर दूसरी लगाने में कितनी भयंकर पीड़ा है सो क्या तुम जानते हो रवि? जो हो, मैं उस पीड़ा की बात नहीं करती, करती हूँ तज्जन्य अविश्वास की भावना की बात, भयभीत हो रहने की बात। जो इस भावना को ठोकर मार कर दूसरी दुकान सजाती भी हैं, वे भी भयभीत तो रहती ही हैं, जीवन में उन्हें विश्राम भी नहीं मिलता और शांति भी नहीं; बिश्वास भी नहीं होता और आधार भी नहीं मिलता। फिर भी उन्हें विवश हो कर और कोई उपाय शेष न रह जाने पर प्रणय की दुहाई देते हुए, हृदय की निपट दीनता को छिपाये हुए ही दिन रात विश्व-व्यापार चलाना पड़ता है। ऐसा करते हुए उनके मन की जो विवश दीनता, जो नितांत कंगालपन टपक पड़ता है, वह उन्हें, उनके नारीत्व की रेखाओं को, किसी के लिए भी प्रलोभनीय बनने नहीं देता।"

इस बार महेश ने शालिनी को टोक कर कहा—"फिर भी उनके सम्मुख एक निकल भागने का मार्ग तो है। किन्तु जिसे बरबस अनिच्छा से अथवा घृणा तक से विश्व का कारोबार चलाना पड़ता है उसके लिए तुम क्या कहती हो शालिनी?" महेश का क्रोध इस समय तक बिला गया था। वह शालिनी

के दर्पपूर्ण मुख की ओर एक टक देख रहा था। वह चाहता था शालिनी कहे, कहे, कुछ कहे और कहती ही जाये। रुके नहीं, थके नहीं, चुप भी न हो।

"हाँ, उनकी आत्म-प्रवंचना भी दयनीय है? किन्तु दूसरों की अवस्था भी उनसे अच्छी कहाँ है? भारतीय नारी इच्छा की एक बूँद भी शेष न रह जाने पर भी लोक लाज और मर्यादा के नाम पर जहाँ खींचातानी करके इस जीवन की लीला चलाती है उसे देख कर मैं लज्जा से मर जाना चाहती हूँ। किन्तु महेश, इसमें, ऐसा करने में, ऐसा कर पाने में, बेबसी के आँसू तो हैं किन्तु पीड़ा नहीं है, जलन नहीं है, जब कि उसमें जलन भी है और पीड़ा भी, आँसू तो है ही। यहाँ यह विश्वास तो है कि मेरा आधार दृढ़ है भले ही वह जीर्ण शीर्ण हो कर नाम मात्र का ही रह जाये, किन्तु खिसक कर चला तो नहीं जाता।" शालिनी का स्वर भीग उठा था, उसने फिर कहा—"जो नारियाँ स्वतः तेजस्विनी हैं वे भले ही ठेल ठाल कर उस आधार पर के अस्तित्व को अस्वीकार कर दें किन्तु आधार पर उनके मन से विश्वास चला जाता हो सो बात नहीं है?"

"किन्तु कहीं और किसी देश में भी तो स्नेह का आधार सब काल में एक-सा रह सकता ही नही है शालिनी। कम से कम इस सत्य को तुम्हे समझाने के लिए मुझे उदाहरण खोज लाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये?" महेश का व्यंग अत्यंत असभ्य और निष्ठुर था। रविदत्त ने लज्जा से गर्दन नीची कर ली, किन्तु शालिनी पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह मानो निर्लिप्त हो गई थी व्यंग और हँसी से। उसने गर्दन

ऊपर उठा कर महेश की आँखों में देखते हुए कहा—"सचमुच ही उदाहरण खोजना नहीं पड़ेगा। स्नेह सदा एक-सा नहीं रहता है। प्रणय की प्रवाह-लहरी सदा एक-सी रहेगी नहीं सो मैं जानती हूँ। किंतु उस क्षणिक को स्थायी और असत्य को, सचमुच ही जो मानसिक बल से, सहज विश्वास से अथवा संस्कार वश, सत्य बना डालती है, अपने आप को छोटा करके भयभीत नहीं होतीं, अपने आपको गर्व से भर कर उड़ी नहीं जातीं, वरन सीधे मार्ग से, सहज भाव से, प्रणय की अधमिटी रेखाओं मे रंग भर कर उन्हें सजीव कर डालती हैं, वे भारतीय नारियाँ, कह नहीं सकती, श्रद्धा की पात्र हैं अथवा प्रशंसा की; किंतु उनके महत्त्व को सर्वथा नगण्य कर सकूँ, ऐसी प्रवृत्ति नहीं होती, किसी दिन भी नहीं होती।"

"जो नहीं है, जो कल तक सत्य था और आज असत्य हो उठा है, उसी को झूठ मूठ सत्य कह कर उसी नुचे खुचे पाथेय को भुना-भुना कर जीवन के व्यवहार को ज्यों त्यों रो धो कर चलाने को ही आप इतने सुन्दर शब्दों में वर्णन कर रही थीं?" रविदत्त ने जिज्ञासा की दृष्टि से पूछा।

शालिनी के कण्ठ में जड़ता का लेशमात्र भी न था। यहाँ तक कि महेश के व्यंग से उत्पन्न हो उठने वाली ग्लानि की छाया भी न थी। उसने स्पष्ट स्वर मे उत्तर दिया—

"सो भला मैं क्यों कहने जाऊँगी बताइए तो?"

भोले से प्रश्न का उत्तर रविदत्त सहसा न दे सका, फिर भी कुछ तो कहना ही उचित था। उसने धीमे से स्वर मे कहा "और आप क्या कहना चाहती हैं? यही न, कि भारतीय नारी स्वामी

का स्नेह खो कर भी उसके साथ घर गृहस्थी चलाने का भरसक प्रयत्न कर करा कर किसी तरह उस दाम्पत्य जीवन की मिटी रेखाओं में ज्यों-त्यों रंग भरती रहती है ?"

"यही बुद्धि है तुम्हारी रविदत्त। न हो महेश से कुछ बुद्धि उधार ही ले लो। यह इन बातों में बड़े चतुर हैं।" महेश ने भी शालिनी के मुख की ओर देखते हुए कहा—"यही तो मैं भी समझा हूँ।"

"तब ठीक नहीं समझे। मैं तो केवल यही कह रही थी कि भारतीय नारी अपने प्रणय की स्थिरता से, दृढ़ता से और विश्वास के बल से स्वामी के स्नेह की रेखाएँ फीकी पड़ने के पूर्व ही रंग भर कर सजीव कर देती है, इसीलिए उसे भयभीत नहीं होना पड़ता। उसका आत्म-विश्वास ही उसका यथार्थ सम्बल है ?"

"यह सब धोखा है, असत्य है," महेश कह रहा था।

"किंतु ऐसी प्रतारणा, ऐसा असत्य का व्यापार और इस प्रकार का धोखा कितना मधुर है सो किसी एक दिन समझोगे महेश। केवल इसे असत्य कह कर, धोखा कह कर, सत्य की खोज में फिर से लुटिया डोरी ले कर निकल जाने वाले कहीं भी सत्य को खोज पाते हैं क्या ?" कह कर शालिनी फिर ज़ोर से खिलखिला कर हँस पड़ी। उसकी खिलखिलाहट के शब्द से अन्य मेज़ों पर बैठे लोग भी इसी ओर देखने लगे। महेश झेंप गया; उसे जान पड़ा कि शालिनी निरन्तर उस ही पर चोटें कर रही है, अन्यथा वह भारतीय नारी को पहचानना भला कब से सीखी और सीख कर भी यह व्याख्या करना उसका प्रिय विषय

किस दिन से बन गया ?

महेश उठ खड़ा हुआ। "बस अब आज और आलोचना रहने दो शालिनी। न होगा फिर किसी दिन कर लेंगे। पर मुझे प्रसन्नता है कि तुमने भी इन सब बातों पर बोलने का अधिकार प्राप्त कर लिया है।"

इस बार फिर शालिनी व्यंग को पी गई। महेश चला गया किन्तु शालिनी और रविदत्त फिर वहीं बैठ गये। रविदत्त ने देखा कि शालिनी कुछ उदास-सी हो गई थी। उसने समझा कि कारण बार-बार महेश का कुत्सित व्यंग करना ही है। अतः सान्त्वना देने के से स्वर में रविदत्त ने कहा—"शालिनी, महेश पहले तो ऐसा न था। मैं तो उसका पुराना सखा हूँ। उसका सचमुच का स्वरूप तो मुझसे छुपा हुआ है नहीं।" शालिनी इस बालक सरीखे भोले युवक के हृदय का भाव देख कर सँभल गई। उसने यथासम्भव सहज भाव से कहा—"रविदत्त, महेश को चिर काल से जानती हूँ, किन्तु तुम्हारी अपेक्षा अधिक नहीं। वह सचमुच ही अच्छा व्यक्ति है।"

शालिनी की महेश के प्रति रत्ती भर भी श्रद्धा कभी रही हो सो बात नहीं थी, किन्तु इस समय वह मित्र की प्रशंसा करके रविदत्त के मन को भार-मुक्त भर कर देना चाहती थी, पर परिणाम उलटा ही हुआ। रविदत्त चाहता था कि आज के असभ्य व्यवहार को ले कर शालिनी महेश की खूब कटु आलोचना करे, अप्रसन्न हो, और फिर रवि उसे समझा बुझा कर उसका महेश की ओर से तिक्त हुआ मन तनिक शान्त कर दे। पर यह तो हुआ नहीं, अतः उसका मन विषाद से भर उठा। उसने कहा

—"हाँ, बहुत अच्छा है।" पर स्वर ने साथ नहीं दिया। स्वर उतना कोमल और स्वाभाविक नही था। शालिनी का आज अन्य कोई भी विशिष्ट साथी संगी क्लब में नही आया था। अतः वह रविदत्त को छोड़ना भी नहीं चाहती थी। अपने मन को इस समय अकेले छोड़ने का साहस भी उसमे नहीं था। अतः उसने प्रसन्न करने के से भाव से रविदत्त से कहा—"चलो रवि, अब थोड़ा सा टैनिस खेल लें। बातों ही बातों में बड़ी देर हो गई।"

रविदत्त इच्छा करके भी नकारात्मक उत्तर नहीं दे सका। इधर कुछ दिनों से शालिनी का आकर्षण उसे निरन्तर क्लब भी लाने लगा था और टैनिस भी खेलना उसने आरम्भ कर दिया था।

लान पर से टैनिस कोर्ट की ओर जाते हुए डाक्टर रविदत्त ने डा० शालिनी कुमार के मुख की ओर देख कर कहा—"तुम क्या हो शालिनी, यह क्या कभी कोई समझ सकेगा ?" अभ्यस्त हँसी हँस कर शालिनी ने कहा—"न समझो तो बुरा भी क्या है ? बिना समझे कोई काम अटका थोड़े ही रहेगा ?"

इस बार उसके कहने के ढंग पर रविदत्त भी हँस दिया। उसके मन का समस्त विषाद धुल गया उस स्वच्छ हँसी से। शालिनी अपना टैनिस का बल्ला उछालती हुई कोर्ट मे आ खड़ी हुई। इसी समय महेश ठीक शालिनी के सम्मुख ही कोर्ट में आ कर खड़ा हो गया। उसने कुछ रूखे से स्वर में कहा—"शालिनी, तनिक मेरे साथ घूमने न चलोगी ?" रूखे स्वर से विवशता भरी पड़ती थी। महेश तो चला गया था। उसका लौट कर आना और वैसी बातें करना रविदत्त और शालिनी दोनों को ही

असंगत तो लगा ही, साथ ही साथ बुरा भी लगा।

"थोड़ा टैनिस खेलूँगी महेश, रविदत्त के साथ।"

"नहीं, नहीं, सो न होगा, आज तो तुम्हे मेरे साथ जाना ही होगा। रविदत्त तो कहीं भागा नहीं जाता, न हो फिर किसी दिन खेल लेना।"

महेश की उद्दण्डता बढ़ती ही जा रही थी; किन्तु शालिनी की इच्छा अधिक खींचातानी करने और करवाने की नहीं थी। उसने अनिच्छापूर्वक कहा—"अच्छा चलो।" फिर रविदत्त की ओर मुड़ कर बोली—"रवि, क्षमा करना। जा रही हूँ। फिर कल हस्पताल मे तो प्रातः मिलना होगा ही।" और अधिक कुछ कहने के पूर्व ही महेश एक प्रकार से हाथ पकड़ कर घसीटता हुआ शालिनी को बाहर ले गया। बाहर ले जा कर महेश ने शालिनी का हाथ छोड़ कर कहा—"यदि अब घर जाना चाहो तो चली जाओ ?"

"तब वहाँ से क्यों लाये थे ?"

"मैं तुम्हे रविदत्त के साथ नहीं देख सकता।" महेश ने स्पष्ट कह डाला। शालिनी फिर एक बार ज़ोर से हँसी, पर फिर उसने कहा—"अच्छा, आज सो ही सही।" और अपनी कार ले कर घर की ओर चल दी।

कथा

आँखों का ढेर सारा जल उस दिन पृथ्वी माता को दान करके जब नन्दिनी की मासी ने लड़की के अच्छे हो जाने पर सत्य-नारायण की कथा कहलवाने का निश्चय किया था तब उनका मन बहुत कुछ आश्वस्त हो उठा था। उस दिन के बाद वह किसी दिनी भी मन ही मन सत्यनारायण की पुकार करना भूलीं नहीं। यूँ तो माँ ने भी बहुत से देवी देवताओं, अर्थात् तेतीस कोटि देवी देवताओं में से अस्सी प्रतिशत, को तो प्रसन्न कर डालने की चेष्टा की थी, किन्तु न जाने उन दोनों अनाथा दीन अबलाओं की करुण पुकार से, अथवा डाक्टरों के सतत प्रयत्न से, अथवा स्वामी के आगमन से, नन्दिनी स्वस्थ होने लगी। डा० महेश को दो मास की छुट्टी मिली थी। किन्तु उनके आने के पन्द्रहवें दिन ही नन्दिनी का ज्वर उतर गया और बीसवें दिन वह बैठने तथा धीरे-धीरे टहलने भी लगी। दुर्बलता अधिक थी। डाक्टरों का विचार था कि वह प्रसन्न रहने और पुष्टिकर भोजन करने से शीघ्र ही पूर्ववत् हो जायेगी। स्वयं नन्दिनी भी जीवित रहना चाहती थी। उसने नलिनी को उसके पत्र के एक वाक्य—"तुम जिओ जीजी, हजार वर्ष जिओ। तुम जैसी सहनशील नारी के जीवित न रहने से यह अभागा स्वार्थी परिवार स्वार्थ-त्याग की शिक्षा कहाँ से पायेगा ?"—के उत्तर में लिखा था—"नीलू बहिन, तू अभी बच्ची है, इसीलिए स्वामी के घर परिवार को यथेष्ट श्रद्धा

की दृष्टि से नहीं देख पाती है। एक बार भी यदि तू यहाँ आ कर अपने जेठ की निस्वार्थ सेवा देख पाती तो फिर ऐसा न कहती।" सचमुच ही इन दिनों महेश के प्रेम और सेवा ने ही नन्दिनी के पाण्डु मुख पर हलकी सी लालिमा की लहर उत्पन्न कर दी थी। उस दिन चित्रा नन्दिनी को देखने आई थी। डा० महेश भी वह' थे। चित्रा ने एकान्त होने पर नन्दिनी से हँसी में कहा—"तू तो बड़ी भाग्यवती है, पति की एक-निष्ठ सेवा ले रही है। तब ह। देख ना, स्वामी के आते ही मुख पर रौनक आ गई।"

नन्दिनी हँस कर चुप हो रही। किंतु मन ही मन उसे पति पर अत्यन्त श्रद्धा और साथ ही साथ गर्व हो उठा। महेश भी प्रसन्न था। पन्द्रह बीस दिन पश्चात् जब नन्दिनी थोड़ा-थोड़ा चलने फिरने लगी, उसने बहुत कुछ कह सुन कर सन्ध्या समय डा० महेश को क्लब भेजना आरंभ कर दिया। महेश ने बहुत कुछ हठ की कि नंदिनी के पूर्णतया स्वस्थ हो जाने पर साथ ही दोनों व्यक्ति जाया करेंगे, क्योंकि उसका विचार यहीं प्रेक्टिस करने का था। किसी प्रकार फौज से "शरीर से अयोग्य" ठहरा कर सदा के लिए छुट्टी ले ली थी। पर नन्दिनी किसी प्रकार भी नहीं मानी। उसे हर समय पति की सेवा और उनका आमोद-प्रमोद-हीन जीवन बड़ा ही खलता था। वह चाहती थी कि उसका स्वामी उसके लिए और अधिक अपने निजी जीवन को निरानन्द न कर पाये। बड़ी ही अनिच्छा से महेश क्लब की ओर जाने लगा; किंतु जाने के बाद उसे दिनों दिन वहाँ का आकर्षण तीव्र होता जान पड़ा। सम्भवतः नंदिनी का मोह, रणक्षेत्र के भयंकर वातावरण में मृत्यु की विभीषिका के तले

खड़े हो कर जो अस्वाभाविक रूप से बढ़ गया था, वह फिर से सिकुड़ कर छोटा, थोड़ा, होने लगा। शालिनी की ओर पुराना आकर्षण पुनर्जीवित सा होता जान पड़ा। इधर माँ और मासी बड़े समारोह के साथ सत्यनारायण की कथा की तैयारियाँ कर रही थीं। डाक्टरों ने ढेरों रुपये, बहुत सा धन्यवाद और अनेक आशीर्वाद ले कर कह दिया था कि नन्दिनी अब उत्तरोत्तर स्वस्थ ही होती जायेगी और सम्भवतः तीन एक मास मे उसका स्वास्थ्य पूर्ववत् हो जायेगा। पड़ोस मे निमन्त्रण जाने लगे थे। प्रसाद के साथ रात्रि-भोजन की व्यवस्था भी करनी चाहिये। नन्दिनी की सखी सहेलियों और भोजन पर तो डा० महेश के मित्रों का आना भी अनिवार्य था। यहाँ तक कि दूसरे नगर से महेश के घर-परिवार के व्यक्तियों को भी साग्रह बुलाया जायेगा। महेश अभी घर गया भी नहीं था। अतः उन्हे भी किसी तरह शान्त करके मना मनू कर लाना था। माता तो न भी आये किंतु बहिने तो आतीं ही थीं। भाई ने रणक्षेत्र से आ कर सुसराल मे पत्नी की सेवा मे बीस दिन बिता दिये और अपने घर का समाचार भी नहीं पूछा, यह थी तो बड़े भारी अभिमान की बात। इसी लिए मासी स्वयं जा कर उन सब को मना कर लायेगी कथा में सम्मिलित होने। नन्दिनी के उत्साह का तो कहना ही क्या था। उसने नलिनी को लिखा था—"तेरी जीजी मर न सकी। स्वामी के आशीर्वाद ने उसे जिला लिया है। सो अब स्वयं आ कर अपने जेठ की चरण-धूलि भी ले जा और जीजी को भी देख जा।" नलिनी ने उत्तर में लिखा था—"अवश्य आऊँगी। तुम्हारे देवर की इस देश में ही चलने

फिरने से एकत्र हुई पदधूधि लेते लेते मेरे मस्तक और हाथ पाँव सब एक बारगी धूमिल हो उठे हैं। अब जेठ जी के विदेश से लौटे हुए चरणों की धूलि को कहाँ रख पाऊँगी यही विचार कर रही हूँ। किंतु जीजी को देखने में तो कुछ वैसी कठिन समस्या उठ खड़ी होगी नहीं, अतः जीजी को देखने अवश्य आऊँगी।" चित्रा तो दो दिन पहले से ही नन्दिनी के घर आ गई थी। उसे ही तो सारा काम काज करवाना था। कथोत्सव के एक दिन पूर्व नलिनी भी आ पहुँची। आते ही नन्दिनी के गले से नन्हे बच्चे की भाँति चिपट कर नलिनी ने कहा—"तुम्हें क्यों एक दिन बहिन मान लिया था नहीं जानती; पर सच ही बहिन होने का क्या सुख होता है सो आज जान पाई हूँ। तुम्हारे तो कोई बहिन है नहीं, तुम मेरी बात कैसी समझोगी जीजी।" नन्दिनी की आँखों मे आनन्द के आँसू भर आये। दोनों रात को एक ही चारपाई पर सोईं। चित्रा को तो मासी के पास ही काम करने से अवकाश नहीं था। वह वहीं सोई थी। हँसते हँसते नलिनी ने कहा—"उस घर में सब लोग तुम्हे क्षय रोग बताते थे, जानती हो जीजी ?"

"कभी किसी ने मुझसे आ कर तो कहा नहीं और आता था भी कौन। किन्तु मुझे कुछ कुछ आभास हो गया था। बचने की आशा भी नहीं रही थी। पर भई तेरा और तेरे जेठ का पुण्य प्रताप है।

"हाँ, जेठ जी की बात कहो। मैं तो कुछ भी न कर पाई। खैर अब पूछूँगी बहिन जी से जो कहती थीं—वह क्या कभी ठीक होगी।"

"जाने दो, गुरुजनों के प्रति ऐसे भाव नही रखने चाहिये।" नन्दिनी ने दाँतों तले जीभ दबा कर कहा।

"हाँ, तुम्हारी भक्ति से ही तो उनका दिमाग आसमान पर चढ़ गया है। यह भी कोई बात है कि वह अकारण अत्याचार करे और हम उसे सिर झुका कर बिना ननु नच किये हुए ही सहें।"

"बहिन, सहन करने मे जो माधुर्य है वह सहन न करने में थोड़े ही है।

"तब ही तो तुम चुपचाप बिना एक भी शब्द कहे सहे जा रही थीं। पर उस प्रकार क्या कभी वहाँ स्वस्थ हो पातीं?" स्वयं नन्दिनी को भी वहाँ स्वस्थ होने मे सन्देह न हो सो बात नहीं है, किन्तु उसका मन अत्यन्त उदार था, किसी की निन्दा उसमे समाती ही नहीं थी। उसने सहज भाव से कहा—"बहिन, मृत्यु और जीवन तो नारायण के हाथ हैं। यदि वहाँ पड़ी-पड़ी मर भी जाती तो कौन-सा अन्धेर हो जाता। यह तो उन्हीं के घर का शरीर है, रहे अथवा न रहे?" नलिनी को यह अकारण विनय दीनता-सी जान पड़ती थी। उसने कहा—"क्यों हमारा शरीर क्या केवल उनकी दया माया पर ही निर्भर रहेगा? तुम भले ही ऐसा कह लो जीजी, मैं तो कभी कह पाऊँगी नहीं, यह जान रखना।"

"पर जो सत्य है स्वीकार न करने पर भी तो वह सत्य ही रहेगा।"

"पति के स्नेह का सम्पूर्ण विश्वास ले कर ही ऐसा कह रही हो बहिन, अन्यथा उस अन्याय को सह सकने को पाथेय कहाँ

से पातीं जीजी ?" नलिनी की उत्तेजना और उसके मुख बनाने को देख कर नन्दिनी हँस पड़ी। फिर बहुत देर तक बात चीत करके दोनों नारियाँ सो गईं। कथा में दो ही तो दिन रह गये थे। इधर नलिनी के स्वामी को तो छुट्टी मिली ही नहीं थी, अतः उसे कथा के दूसरे दिन ही लौट जाना था। यूँ भी विचारी को यहाँ आने के दण्ड स्वरूप सास और ननद की ओर से कितने ताने मिलेंगे सो कल्पनातीत था। जो हो सब प्रकार की चिन्ताओं को छोड़ कर दोनो नारियाँ निश्चिन्त हो सो रहीं। दो दिन बाद कथा जो थी।

छूत....कीटाणु

शालिनी सदा से ही स्वतन्त्र प्रकृति की है। उसने न तो कभी दबना ही सीखा और न झुकना ही। फिर न जाने क्यों रह रह कर उसका मन झुकना चाहता है। यूँ ही, किसी विशेष कारण से नहीं। इधर कुछेक दिन से वह अत्यन्त उद्विग्न सी दीख पड़ती है। हस्पताल अब भी जाती है। माँ की उलटी टेढ़ी बातें भी कभी कभी सुन लेती है। पर इधर कुछेक दिन से गिरीश का मुख देख कर उसे जाने कैसा लगने लगता है। उसने यूँ तो निश्चय कर लिया था कि वह गिरीश से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखेगी। हस्पताल भी त्याग देगी। किन्तु हुआ कुछ भी नहीं। हस्पताल भी नहीं छूटा और शालिनी गिरीश की शुष्क दीन मुखाकृति देख कर मन को 'जाने कैसा' हो जाने से किसी प्रकार भी रोक न सकी। सुवीरा भी अत्यन्त चिन्तित थी गिरीश के चिन्तित मुख और गिरते हुए स्वास्थ्य की ओर देख कर। उसने हरीश को लिखा था—"गिरीश भाई का स्वास्थ्य बहुत गिर गया है। उदास और गम्भीर पहले से भी अधिक रहते है। तुम आ सको तो छुट्टी ले कर दो चार दिन को आ जाना!" शालिनी इस ओर ध्यान भी नहीं देना चाहती। उसकी उत्कट इच्छा है कि वह गिरीश की छाया की भी अवहेलना कर दे। किन्तु इस अवहेलना से उदासीन गिरीश पर क्या प्रभाव पड़ेगा सो वह स्वयं ही नहीं जान पाती है। फिर भी उसका मन उसके

वश में थोड़े ही रहता है। मानिनी, दृढ़ और स्वतन्त्र प्रकृति शालिनी चिढ़ उठती है स्वयं अपने आप से। इसीलिए तो जब उस दिन महेश उसे साग्रह अपने घर सान्ध्य भोजन का निमन्त्रण देने आया तो शालिनी उसका यथोचित स्वागत भी न कर सकी और उसके घर भोजन करने का निमन्त्रण भी स्वीकार नहीं कर सकी। महेश को उसके अत्यधिक आग्रह का कोई परिणाम न होते देख कर झुँझलाहट ही नहीं हुई निष्फल क्रोध भी हो आया, किन्तु मानो उस क्रोध का शालिनी के निकट कुछ मूल्य ही नहीं था। शालिनी से तिरस्कृत, अपमानित, झल्लाया हुआ महेश ज्यों ही अपनी सुसराल के द्वार पर पहुँचा, उसे दीख पड़ी कार से उतरती हुई अपनी बड़ी बहिन। महेश अभी तक उनसे मिलने नहीं जा पाया था, नन्दिनी अस्वस्थ जो थी। पत्र भी नहीं लिख पाया था। फिर भी उसे अपनी दीदी से बड़ा स्नेह था। यद्यपि मानसिक अवस्था कुछ वैसी अच्छी नहीं थी फिर भी बहिन को देख कर महेश प्रसन्न हो उठा। उसे पूर्ण विश्वास था कि बहिन पत्र न लिखने और न मिलने पर मान करेगी, क्रोधित होगी, झिड़कियाँ देगी। किन्तु जब यह सब कुछ भी न करके उसकी बहिन ने उसे 'महेश' कह कर गले से लगा लिया, तो महेश की मानसिक ग्लानि बहुत कुछ बह गई। मामी की ओर दृष्टिपात भी न करके बहिन ने भाई से कहा—"अरे यहीं खड़ी रहूँगी क्या? भीतर नहीं ले चलोगे महेश?" बहिन अकेली ही आई थी, माँ किसी प्रकार भी नहीं आईं और बच्चों को आने नहीं दिया गया।

"चलो दीदी, भीतर चलो, यहाँ क्यों खड़ी रहोगी।" एक

साँस में ही महेश कह गया और साथ ही हाथ पकड़ कर बहिन भाई को अन्दर की ओर ले चली। मासी ने अपने आपको बहुत कुछ अपमानित-सा अनुभव किया; फिर भी उस बड़े आदमी की पत्नी की चाल ढाल पर शान्त ही रहने का निश्चय करके पीछे-पीछे भीतर चली आई। नन्दिनी ने जब चरण छू कर बड़ी ननद को प्रणाम करना चाहा तो बहिन जी चार हाथ पीछे हट गई—"अरे रहने दो इस सब की क्या आवश्यकता है ?" नलिनी का साहस चरण छूने का प्रयत्न करने का भी नहीं हुआ। जैसे तैसे बहिन जी एक कमरे मे ठहराई गई और जैसे तैसे कथा तथा रात्रि के भोजन का काम निबटाया गया। इस बीच बहिन भाई के साथ ही बनी रही और किसी काम मे विशेष रुचि भी नहीं दिखा सकी। फिर भी काम समाप्त होना था सो हुआ ही।

आवश्यकता से अधिक नम्र व्यवहार और आदर सत्कार पा कर बहिन जी—नन्दिनी की ननद—का मिज़ाज कुछ शीतल हो गया था। फिर भी उन्होंने भाई को जब नन्दिनी के कमरे की ओर जाते हुए अपने कमरे की चिक के भीतर से देखा तो उनका हृदय अत्यन्त भयभीत हो उठा। सेवा मे नियुक्त दासी को भेज कर भाई को बुलाया गया। बहिन ने भाई को पास बिठा कर बड़े प्यार से कहा—"महेश, तू बहू के पास न जाया कर।"

आश्चर्य से महेश चकित हो गया।

"क्यो, क्या बात है दीदी ?"

"उसे टी० बी० है। तू जानता नहीं है क्या कि टी० बी० कितनी भयंकर छूत की बीमारी है। डाक्टर हो कर भी इतना ज्ञान नहीं।"

महेश डाक्टर था। उसने वैज्ञानिक ढंग पर चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की थी। फिर भी उसे टी० बी० से अत्यधिक भय लगता था। टी० बी० के नाम मात्र से ही वह काँप उठता था। फिर भी उसने अविश्वास से बहिन के मुख की ओर देख कर पूछा—"तुम्हे कहाँ से ज्ञान हुआ? डाक्टर तो उसे कोई भी टी० बी० नही बताते है और अब तो वह बिलकुल ठीक है।"

"इस नगर के डाक्टरो को क्या कुछ समझ है? तुम्हारे बहनोई स्वयं उसे देख भाल कर टी० बी० बता गये थे। रही अच्छे होने की बात, तो तुम तो स्वयं डाक्टर हो; क्षय रोग क्या कभी सदा के लिए बिलकुल ठीक होता है! यह तो यूँ ही दो चार दिन के लिए ठीक होने की बात है। रोग के कीटाणु सदा के लिए तो जाते नहीं।"

"यह तुम कैसी बाते कर रही हो बहिन?"

"भई, मुझे तो अपने भाई प्यारे हैं। भले ही नन्दिनी अपने पति के ही हित के लिए भी उसे अपने से पृथक न रखे, पर बहिन तो भाई का अपनी आँखो से अहित देख नहीं सकती है। भई, मैं तो तुम्हे नरक में जाते न देख सकूँगी इस रोग को गले लगा कर।" स्वयं महेश भी बहुत डर गया था, किन्तु भय प्रकट किये बिना ही कहने लगा—"दीदी, वह मेरी पत्नी है, उसे किस प्रकार रोग की अवस्था मे त्याग दूँ?"

"नहीं, त्यागने को कौन कहता है? सेनेटोरियम भेज दो। खर्च भेज दिया करना। पर तुम यहाँ एक क्षण भी नहीं रह पाओगे सो मैं कह देती हूँ। कही की किसी एक लड़की के पीछे मैं तो अपने भाई का सोने का सा शरीर नहीं गलने दूँगी।"

"पर यह कैसे हो सकता है दीदी ?" बार बार प्रश्न करके महेश स्वयं ही अपने निकट निर्दोष बन कर बहिन की प्रेरणा पर ही समस्त भार लाद देना चाहता था। यही तो मानव स्वभाव है। वह स्वयं जो कुछ करना चाहता है यदि उसे आदर की दृष्टि से नहीं देख पाता है तो अपने उस काम का भार किसी दूसरे की गर्दन पर लाद कर निश्चिन्त हो जाना चाहता है। अपनी ओर आते हुए टी० बी० के कीटाणुओं की कल्पना ने ही महेश के प्राण सुखा दिये थे, पर अभी कुछ कर्तव्यज्ञान शेष था; उसी को समाप्त कर डालने के लिए किसी की कठिन प्रेरणा की आवश्यकता थी न।

"अरे तू तो भोला है महेश। नन्दिनी ने सब कुछ जानते हुए भी तुझे धोखे मे रखा है। यदि वह तुझे सच्चा प्रेम करती, यदि वह पतिव्रता स्त्री होती—अरे हम होते तो स्वयं ही पति को अपने समीप न आने देते और उसकी प्राणरक्षा करते। तू तो भला औषध पानी सब ही कुछ अपने हाथों करता है। हरे राम ! उसे करवाते लज्जा भी नहीं आती। देखने में कैसी भोली लगती है, पर कैसी निर्लज्ज लड़की है यह।"

अब दोनों ओर कहीं कुछ कहने को शेष ही न था। भाई ने बहिन से दो दिन बाद आने की प्रतिज्ञा की और बहिन बिदाई के सौ रुपये मासी से ले कर अपने घर चली गई।

परिवर्तन

मानव जीवन की जिन साधारण दैनिक घटनाओं पर कभी-कभी हमारा ध्यान भी नहीं जाता उन्हीं के बीच कब, कहाँ और कैसे विधाता मुसकरा उठता है यही रहस्य आज तक मानव की तुच्छ बुद्धि में नहीं आया। फिर भी वह सगर्व अपनी बुद्धि को विधि के विधानों को मेट सकने में भी समर्थ मान कर सदैव इतराता रहता है। उस दिन अत्यन्त साधारण भाव से चित्रा ने जब नन्दिनी से कहा था—"नन्दो, तू सुखी रहे यही मेरी एकमात्र आकांक्षा है। किन्तु इतनी अधिक भावुकता ले कर भी कहीं कोई सुखी रह सकता है इसमें मुझे सन्देह है।" तब नन्दिनी ने एक क्षण में विधना की मुसकराहट की आहट न पा कर उत्तर दिया था—"चित्री, मेरे भाग्य से कितनी नारियों के भाग्य की तुलना हो सकती है। सच कहती हूँ, मन का पाप गुप्त ही रख कर क्या करूँगी, एक दिन ऐसा जान पड़ा था कि मेरे जीवन में कहीं कुछ अभाव रह गया है, त्रुटि हो गई है। किन्तु भगवान ने मेरा वह भ्रम मिटा कर मेरी इन दो आँखों के भीतर बसने वाली दो ज्ञानमयी आँखों में अपूर्व आनन्द, अपूर्व प्रकाश भर दिया है। इससे अधिक और कुछ चाहूँ ऐसी दुर्बुद्धि मेरी नहीं है।" चित्रा समझ गई थी कि आजकल भावुक नन्दिनी के मन का प्रेम, श्रद्धा और आदर का स्रोत पति की सेवा पा कर उन्हीं के चरणों में लोट रहा है। किन्तु चित्रा महेश को न जानती हो

सो बात नहीं है । विवाह पर होने वाले नन्दिनी के मानसिक द्वन्द्व से भी वह अपरिचित नहीं थी। कुछ अचकचा कर, कुछ ठहर कर, कुछ झिझकते हुए उसने कहा—"भगवान तेरा सुख सौभाग्य अनन्त कर दे, अजर अमर कर दे, पर फिर भी बहुत अधिक विश्वास ही कभी-कभी विष हो जाता है।" नन्दिनी ने हँस कर कहा—"विधाता ने मेरे जीवन रथ का जिन्हे सारथी नियुक्त करके इस विश्व मे हम दोनो को भेज दिया है उन्हें यदि तू पहचानती होती तो ऐसा न कहती। यदि अब भी अपने भाग्य-विधाता पर अटल विश्वास, अचल भक्ति न कर सकी तो यह नारी जीवन ही व्यर्थ हो जायेगा।" चित्रा के मन में आया कि मुख खोल कर सुना दे उस दिन की कथा जिस दिन आज से वर्षो पूर्व एक दिन अपने मामा की लड़की के विवाह पर छत के एकान्त कोने मे एक नवयुवक ने अपनी दो वर्ष पूर्व की मँगेतर से प्रणय की भिक्षा की थी और फिर उसके प्रणय को मन प्राण से ग्रहण करके भी तनिक से धन के लोभ से उस बालिका के आफिसर पिता की मृत्यु हो जाने पर उसकी माता की गीली आँखों की तनिक भी परवाह न करते हुए माता-पिता के कहने से उस दो वर्ष पूर्व की सगाई को और तीन मास पूर्व के प्रणय-व्यापार को एकबारगी झटका दे कर तोड़ दिया था। फिर एक दिन जब नन्दिनी की उसी व्यक्ति के साथ जीवन-ग्रन्थि बँध गई तो भी चित्रा कुछ कह नहीं पाई। यहाँ तक कि दुःख से रो भी नहीं पाई। उसने केवल नारायण के निकट यही कहा—हे अन्तर्यामी उस भोली बालिका के तुम्हीं सहायक हो। चित्रा कुछ भी न कह सकी। नन्दिनी के घने विश्वास को धक्का

पहुँचाते हुए उसका कोमल हृदय डरता था। थोड़ी-सी और बातचीत करके चित्रा तो चली गई थी, किन्तु नन्दिनी का मन अनजाने ही कुछ उदास हो गया था। महेश कल सारे दिन तो एक कमरे में सोता ही रहा। नन्दिनी ने सोचा कि कथोत्सव का काम करते-करते थक गये हैं, तनिक विश्राम कर लें अतः छेड़ा नहीं। आज प्रातः से ही कहीं गये हुए हैं। इधर कई दिनों से दोनों भोजन साथ ही साथ बैठ कर करते थे। अब तो नन्दिनी भी भोजन के कमरे में जा कर ही भोजन करने लगी थी। प्रातःकाल से गये हुए पति की प्रतीक्षा में ही नन्दिनी ने दोपहर को भोजन का समय टाल दिया। मामी के बहुत कहने-सुनने पर कि असमय में खाने से पित्त बढ़ जायगा अथवा समय पर पथ्य पानी न होने से दुर्बल शरीर स्वस्थ न रह सकेगा नन्दिनी ने मीठी-मीठी बातों से उसका विरोध करके तनिक ठहरने को कहा। दो बज जाने पर तो घर भर को चिन्ता बढ़ गई। माँ और मामी के बहुत कहने-सुनने पर भी नन्दिनी ने एक गिलास दूध तक नहीं पिया, केवल चिन्तित-सी बैठी रही कि कहीं कोई दुर्घटना न हो गई हो। घर के दोनों नौकर दामाद साहब की खोज में भेजे जा चुके थे; किन्तु किसे ज्ञात था कि दामाद साहब उस समय कुमार साहब की बढ़िया सजी कोठी के खाने के कमरे में बैठे हुए शालिनी के साथ भोजन कर रहे हैं; गपशप चल रही है और आनन्द का समुद्र बह रहा है। इधर कोई तीन नारी मूर्तियाँ सूख रही हैं, भूख प्यास और चिन्ता से यह किसे ज्ञात था और जानने पर भी परवाह ही किसे थी। चार बजे के लगभग जब महेश के पैरों की आहट सुन पड़ी तो सब

के प्राण लौट आये। नन्दिनी तो प्रायः अचेतन ही होने लगी थी। मासी ने मीठी सी झिड़की दे कर खाना खाने का अनुरोध किया। महेश ने शुष्क स्वर में सूचित किया कि वह खाना बाहर ही खा चुका है। इसी समय नौकर ने सूचना दी कि नन्दिनी बिटिया बुला रही हैं। मासी ने भी कहा—"हाँ, हाँ, बेटा उसे सान्त्वना दे आओ। सारे दिन की भूखी प्यासी बैठी है, तनिक सा कुछ खा पी ले। तुममें तो जैसे उसके प्राण ही बसते हैं।" स्वयं महेश भी इस सत्य को भली प्रकार जानता था। प्रतिदिन ही तो साथ खाते थे। अपने हाथ से औषध पथ्य आदि दिये बिना महेश को चैन ही नहीं आता था। किन्तु आज नन्दिनी के पास जाने की बात सोचते ही महेश को जान पड़ा कि संसार भर के क्षय-कीटाणु उसके शरीर मे प्रवेश करने लगे हैं। फिर भी अत्यन्त सावधानी से नन्दिनी के कमरे में जा कर कुछ दूर एक कुर्सी पर बैठ गया। इससे पूर्व महेश नन्दिनी के कमरे में जा कर सदा उसके पलँग पर ही बैठा करता था, यहाँ तक कि नन्दिनी के मासी के सम्मुख लज्जित होने अथवा पास बैठने में बाधा डालने पर हँस कर कहा करता था—"वाह, वहाँ बैठने और तुम्हारी सेवा करने का अधिकार मुझसे अधिक और है भी किसको?" नन्दिनी ने इस आकस्मिक परिवर्तन पर लक्ष्य किये बिना ही आकुल कण्ठ से कहा—"यह कैसी बात है आपकी? कुछ मालूम भी है चार बजे है। अब बिना कुछ कहे सुने पहले भोजन कर आइए। देखिए चेहरा कैसा सूख रहा है।"

महेश ने इसका कोई ठीक-ठीक उत्तर न दे कर कहा—"खाना खा लिया था। मैं कल घर जाऊँगा नन्दिनी।"

नन्दिनी मानो आकाश से गिर पड़ी। फिर भी उसने शान्ति-पूर्वक कहा—"अच्छा ही तो है। मैं भी अब स्वस्थ हूँ। चलिये घर भी हो आयें। आपको आये बीस-बाइस दिन हो गये हैं, किन्तु एक-दो दिन और ठहर जाइये, फिर चले चलेंगे।" नन्दिनी के मस्तिष्क में भयंकर पीड़ा होने लगी।

अत्यन्त व्यस्त सा हो कर महेश बोल उठा—"नहीं, नहीं, तुम्हारा स्वास्थ्य अभी ठीक नहीं है। तुम्हें जाना नहीं होगा। तुम यहीं रह कर इलाज करो। मैं कुछ ही दिन में फिर आ जाऊँगा। अब नौकरी पर तो जाना ही नहीं।"

"यदि आपकी ऐसी इच्छा है तो यही सही। पर दो-चार दिन तो ठहर जाइये!" कहते-कहते नन्दिनी को चक्कर आ गया। आँखों के आगे अँधेरा छा रहा था। नन्दिनी ने कठिनाई से कहा—"तनिक अर्क काहज़बान तो देना।" महेश ने वहीं निश्चल बैठे ही मासी को पुकारना आरम्भ कर दिया। तीव्र बुद्धि नन्दिनी को जान पड़ा कि कहीं कुछ भिन्नता अवश्य है। पहले तो मासी के अत्यन्त आग्रह करने पर भी कभी रात को भी महेश उन्हें परिचर्या करने नहीं देता था। यहाँ तक कि दिन और रात की समस्त सेवा स्वयं ही करना चाहता था। पथ्य और पानी तो क्या थूक और वमन से भी उसे घृणा नहीं होती थी···और आज···आज मुझसे क्या अपराध बन पड़ा है। दुर्बल मस्तिष्क और अधिक न सोच सका। नन्दिनी अचेत हो कर विस्तर में लुढ़क गई। महेश सोच रहा था सचमुच ही इन माँ-बेटियों ने मुझे धोखा दिया। मुझे यह बताया ही नहीं कि इसे क्षय रोग है। ओफ़, भला बचा···क्षय रोग···महेश को जान पड़ा

कि नन्दिनी के समस्त शरीर के कीटाणु निकल निकल कर महेश के शरीर में प्रवेश कर रहे हैं। वह मासी के कमरे मे आने की भी प्रतीक्षा न कर सका और कमरे से बाहर हो गया। दूसरे क्षण भीतर आ कर मासी को आश्चर्य हुआ अपनी प्रिय नन्दिनी को अकेले अचेत बिस्तर मे पड़े हुए देख कर। अरे अभी तो यह अपने पति से बातचीत कर रही थी, उन्होंने सोचा।

घृणा

"मैं तुमसे हृदय से घृणा करती हूँ गिरीश।"

"मैंने तो किसी दिन तुम्हारे स्नेह का दावा किया नहीं।"

"सोचती थी तुममें कुछ तो मनुष्यत्व शेष रह गया होगा; किन्तु जान पड़ता है तुम साधारण शिष्टाचार का व्यवहार भी भूल गये हो, सर्वथा बुद्धि का दिवाला ही निकाल चुके हो।" उत्तर में गिरीश ने एक छोटी सी गहरी निश्वास चुपके से छोड़ दी। शालिनी ने देखा नहीं, फिर भी बोल उठी—"इस प्रकार पापा के सम्मुख मुझे अपमानित करने से तुम्हें क्या मिल गया?" इस बार गिरीश के चकराने की बारी थी। "कहाँ? मैंने तुम्हारा अपमान कब किया शालिनी? तुम्हारे निमन्त्रण की मान-रक्षा के लिए ही तो मैं यहाँ चला भी आया, अन्यथा तुम तो जानती हो मैं साधारणतया उत्सवों में जाना ही कहाँ हूँ।"

"न आते तो भी ठीक होता। किन्तु आ कर मुझे यूँ चार जनों में अपमानित करना क्या उचित था?" शालिनी की आँखों से ज्वाला बरस रही थी। इस बार का निष्ठुर अभियोग गिरीश चुपचाप सह न सका, उसने धीरे से कहा—"शालिनी, मैंने तुम्हारे प्रति स्वप्न में भी कोई अपराध नहीं किया है। जितनी श्रद्धा और

जो कुछ स्नेह दे पाता हूँ सो ही तो भेंट करने का सतत प्रयत्न किया करता हूँ।"

"फिर तुमने आज के मेरे नृत्य के प्रस्ताव को क्यों इस तरह निष्ठुरता-पूर्वक ठुकरा दिया और उससे भी बढ़ कर असभ्य, पाशविक व्यवहार था तुम्हारा हरीश के साथ मेरे नृत्य का प्रस्ताव करना। तुम तो साधारण शिष्टाचार भी नहीं जानते।"

गिरीश इस बार सचमुच ही घबरा गया। आज कुमार साहब की कोठी पर उनकी प्रिय पुत्री शालिनी के जन्म दिन का उत्सव था। शालिनी ने स्वयं ही गिरीश को साग्रह निमन्त्रण दिया था और गिरीश ने उस निमन्त्रण की रक्षा भी की थी। किन्तु कुछ ही देर पूर्व जब शालिनी ने उसे नृत्य के लिए आमंत्रित किया तो गिरीश सकुचा गया। यूँ भी उसे नाचने का अभ्यास नहीं था। कालिज के अन्तिम दिनों में दो एक बार शिक्षा ली अवश्य थी किन्तु उसी अधूरी शिक्षा और अनभ्यस्त पगों को ले कर इन चतुर विलायती नृत्य पारंगतों के बीच उससे खड़े होते किसी प्रकार भी न बना। शालिनी ने उसकी मान-रक्षा के लिए कान में कहा—"खड़े हो जाओ, मैं सब ठीक कर लूँगी।" शालिनी भूली नहीं थी कि गिरीश कभी भी नृत्य में सम्मिलित नहीं होता; किन्तु वह उसके साथ नाचने के प्रलोभन का संवरण किसी प्रकार भी न कर सकी। किन्तु गिरीश किसी प्रकार भी न माना। मित्र के आदेश पर मित्र को विपत्ति मुक्त करने के लिए हरीश खड़ा हुआ, सभ्यता के नाते शालिनी को उठना ही पड़ा किन्तु उसका मन-प्राण क्षोभ से भर उठा था। तनिक-सा अवसर

पाते ही वह चुपचाप एक अपेक्षाकृत सूनी अन्धकारमयी मेज़ पर बैठे गिरीश के पास जा कर बैठ गई और उसे तिरस्कृत करने लगी। शालिनी की आज सारी आनन्द-लहरी अकारण ही नष्ट हो गई थी। उसके मन के क्रोध का कहीं अन्त ही नहीं था। उसे लगा कि इस व्यक्ति से घृणा करती है, तीव्र घृणा करती है। उसका जी चाहा कि समस्त लाज हया शर्म और सभ्यता के नियम परे रख कर इसका हाथ पकड़ कर इसे फाटक से बाहर निकाल आये। किन्तु गिरीश सुन कर व्याकुल हो उठा। बड़ी देर तक सिर नीचा किये हुए बैठे रहने के पश्चात् एकाएक गिरीश ने सिर उठा कर शालिनी की ओर अत्यन्त करुण दृष्टि से ताका। शालिनी की जलती हुई दृष्टि इस करुण दृष्टि से मिल कर क्षणेक को बुझ सी गई। उसे जान पड़ा कि कोई अनाथ करुण दृष्टि से उसे ताक रहा है। कुछेक क्षण बीत जाने पर गिरीश ने कहा—"शालिनी, यदि तुम मुझे घृणा कर पाती तो मैं सचमुच ही जी जाता। किन्तु तुम ऐसा नहीं कर पाती हो, यह मैं निष्ठुरता से नहीं वरन घनीभूत वेदना के बीच खड़ा हो कर ही कह रहा हूँ। मै सचमुच ही तुम्हारे योग्य किसी दिन भी नहीं था, आज भी नहीं हो सकूँगा।" कहते-कहते गिरीश रुक गया। शालिनी का सारा मुखमण्डल श्वेत हो गया था। रक्त-रहित उस मुख की ओर ताक कर सहसा गिरीश चुप हो गया। शालिनी हिली-डुली नहीं। इस बार घबरा कर गिरीश ने कहा—

"शालिनी!"

"हाँ, हाँ, कहे चलो, रुको मत!"

"नहीं, और नहीं कहूँगा।"

"नहीं कहोगे तो तुम्हारे निष्ठुर पुरुषत्व की साक्षी बनने के लिए विश्व मे कोई नारी रह कहाँ जायेगी ?' दोनो ही कुछ देर चुप रहे। इस बार नारी की कोमलता पिघल रही थी।

"सचमुच ही तुम्हे घृणा करना चाहती हूँ किन्तु कर पाती नहीं। पत्थर को प्रेम कर सकने योग्य धैर्य मुझ मे नहीं है, किंतु त्याग सकने योग्य क्षमता भी नही है।"

"मेरा अभाग्य।"

"भाग्य की दुहाई क्या पुरुष देते हैं गिरीश।"

"मैंने किसी दिन भी वीरत्व का दावा नहीं किया।"

"तुमने किसी चीज़ का दावा किया है ? किसी पर कभी स्वत्व स्वाधिकार जमाया है ?"

गिरीश ने कहना चाहा—'एक दिन किसी एक पर जमाना चाहा था पर उसने अस्वीकार ही कर दिया। तब से फिर किसी पर दावा जमाने की इच्छा ही नहीं हुई।' पर कह न सका, मुख से निकल गया—"केवल मात्र वेदना पर।"

फिर बड़ी देर तक दोनो ही चुप बैठे रहे। ये लोग बरामदे में बैठे थे। हाल में नाच गान हो रहा था। किंतु यह दोनों ही अशान्त थे, मौन थे और थे व्याकुल। एक तो अपनी कसक से और दूसरा दूसरे की पीड़ा से, विवशता और मानिनी के हत मान से।

"देखो गिरीश, मैंने आज तक कभी किसी के निकट कुछ चाहा नहीं। अयाचित ही सदा बहुत कुछ पाया। किंतु किसी दिन भी उसे कंजूस के धन की नाईं छुपा कर ढक कर रखा

नहीं। रक्षा भी नहीं की, चिन्ता भी नहीं की। फिर भी न जाने क्यों मुझे देश विदेश में मिले हुए इस अयाचित वैभव की अपेक्षा सदा सर्वदा किसी एक के द्वार पर पल्ला पसार कर भिक्षा ग्रहण करने का ही चाव रहा। प्रयत्न भी किया, किन्तु भिक्षा मिली नहीं।" शालिनी का कंठ भर आया। उसने फिर कुछ ठहर कर कहा—"फिर भी न जाने क्यों इस अभिमानिनी नारी की यही इच्छा होती है कि यदि उसे कभी कहीं भीख माँगनी ही पड़े तो वह उसी द्वार का अपमान सह ले, अन्य कोई द्वार खोजने नहीं जाय।"

"तुमने द्वार खोजने में भूल की शालिनी। यह द्वार दाता का नहीं है, यह तो स्वयं ही भिखारी का द्वार है, वह भिक्षा दे तो कैसे दे? वैभवविहीन तो वह स्वयं हो रहा है।" गिरीश के स्वर में रुदन भरा था।

"बस करो, बस करो, मैंने किसी दिन भी द्वार नहीं खोजा था। मुझे आवश्यकता भी नहीं थी। न जाने क्यों उस अनजान घटक ने एक दिन यह द्वार बरबस मेरी दृष्टि के पथ में डाल कर यह दोनो आँखें उस पर स्थिर कर दी। न जाने किसने हाथ पकड़ उस द्वार पर खड़ी कर दिया और न जाने किसने भिक्षा माँगने की प्रवृत्ति दे दी। जो हो, बस अब आज और नहीं। किन्तु यह कहे रखती हूँ कि जिस दिन सचमुच ही दाता की हाथ उठा कर देने की इच्छा होगी उस दिन यह अभिमानिनी भिखारिणी कहीं दूर न होगी. किन्तु उससे पूर्व नहीं।" झपट कर शालिनी उठ खड़ी हुई और चली गई हाल के भीतर। जाने से पूर्व शालिनी ने ज्यों ही गिरीश की ओर से पीठ फेरी गिरीश

ने स्पष्ट ही देखा कि शालिनी चुपचाप रुमाल में आँखों की कई बूँदे जल की चुन रही थी। गिरीश के पास कहने को कुछ भी शेष रह नहीं गया था, सान्त्वना के दो शब्द भी नहीं। शालिनी स्वतन्त्र थी, मानिनी थी, दृढ़ थी, लापरवाह थी, और थी विचित्र बन्धनहीन। किन्तु दूसरे दिन देर तक दिन ढलने पर आँखें खुलते ही उसे जान पड़ा कि वह चारों ओर से किसी बन्धन से कस कर जकड़ दी गई है। उसके नेत्रों के सम्मुख अनेकानेक चित्र उदय हो गये—मिस्टर हैरीसन, मिस्टर डेविड, डाक्टर टामस. मेजर निसार अहमद, महेश, रविदत्त और न जाने कितने और और। पर उसे जान पड़ा कि वह सब बौने हैं, ठिगने हैं। एक व्यक्ति, केवल एक व्यक्ति, जो इन सबसे दूर पर खड़ा हुआ है, वही लम्बा है, ऊँचा है और है तेजस्वी। इतना विनम्र है कि उसे उसके शत्रु भी अभिमानी नहीं कह सकते हैं। इतना सरल है कि उसे सहज ही अजातशत्रु कहा जा सकता है। किन्तु कितना विरक्त है कितना निर्लेप है और है कितना परे! कितना भिन्न औरों से! कितना पृथक् हम सब से। शालिनी को गत रात्रि की समस्त घटना स्मरण आ गई और साथ ही स्मृति मे चमक उठा गिरीश का सकरुण दृष्टि लिये हुए मुख और उसकी अपनी बातें। एक-एक बात उसकी स्मृति में जलने लगी। उसे, उस अत्यन्त प्रगल्भा नारी को, स्वयं अपने ऊपर लज्जा आने लगी। ओह, वह गई थी उपयाचिका बन कर और उसे एक मुट्ठी भर स्नेह का दान भी नहीं मिला। वह लौट आई उपेक्षिता बन कर। ऐसा अनुभव तो उसे जीवन मे इससे पूर्व कभी हुआ नहीं था। उसकी इच्छा फिर एक बार हुई कि वह गिरीश को

घृणा कर सके, उसे ठेल टाल कर अपने जीवन से परे करके अपने जीवन को व्यर्थ होने से बचावे; पर जान पड़ा यह सब प्रयत्न व्यर्थ है, निष्प्रयोजन है, वही सत्य है जो उसने कल कहा था। वही सत्य है जो उसके प्राणों में स्वयंभू रूप से बह रहा है और सम्भवतः बहता रहेगा। उसकी घृणा मिथ्या है, छल है, विडम्बना है, सत्य तो वही है जो उसकी नस-नस में तरंगित हो रहा है। शान्ति ने आँखें बन्द कर ली।

— — —

कंगालिन

नारी अपने अतुलनीय वैभव की व्याख्या स्थान-स्थान पर करती फिरती हो सो बात नहीं है। स्वामी के स्नेह को नारी ढक सँभाल कर रखती है। फिर भी उसकी आभा जब स्वयमेव उसके मुख पर, उसकी हँसी मे, उसके कार व्यवहार से, उसकी बात-चीत में, फूट कर निकलती है, तो उसे वह छिपाना नहीं चाहती, वरन इधर उधर से कुरेद कर सब को दिखा देना चाहती है। यदि न भी दिखा पाये तो भी उसे वेदना नहीं होती और दिखा पाने पर उसकी गर्वभरी सलज्ज मुसकान उसके वैभव की सोदर दृश्य को मोहकता के साथ दर्शकों के हृदय पर लगा देती है। पर किसी कारण से भी हो, कंगाल हो जाने पर, वैभव के लुट जाने पर, नारी को अत्यन्त सावधान रहना पड़ता है। वह किसी प्रकार भी लुटे हुए वैभव के भग्न चिह्न किसी की दृष्टि तले पड़ने देना नहीं चाहती। किसी को भी अपनी दीनता का परिचय पाने नहीं देना चाहती। यहाँ तक कि लुटे वैभव के टुकड़े जोड़-तोड़ कर ही अपनी नग्नावस्था को ढक कर सब की दृष्टि से बच कर निकल जाना चाहती है। नग्नता की लज्जा से किसी प्रकार उसकी रक्षा हो जाये यही उसके सन्तोष के लिए पर्याप्त है। पर नन्दिनी के भाग्य में यह नहीं लिखा था। स्वामी के मन को स्पष्ट ही पढ़ पाने वाली नन्दिनी उस दिन भी जब उसका पति उससे विदा लेने आया यह कह कर कि वह माता-पिता से मिलने घर जा रहा है,

उसके मन को न पढ़ पाई हो सो बात नहीं है, किन्तु अपनी उस दीनता को, झोली की रिक्तता को, वह किसी प्रकार भी माँ और मासी के निकट अप्रकट ही रहने देना चाहती थी। तब ही तो मन के भीतर भारी व्यथा दबा कर होंठों पर ऊपरी मुसकान ला कर ही विदा दी थी। वह जानती थी कि यह उसका चिरकाल का निर्वासन है। किन्तु उसे प्रकट कर वह स्वामी की प्रशंसा में कमी आना कैसे देख पाती। अतः सब कुछ पूर्ववत् चलता रहा। नन्दिनी ने चित्रा को भी पत्र नहीं लिखा। नलिनी के दोनों पत्रों में से एक का भी उत्तर नहीं दिया। पहले वह वैभव की आशा लगाये 'लाटरी डाले' बैठी हुई थी अतः पीड़ा उतनी अधिक नहीं थी। और फिर तो वह विजयिनी थी, उसे 'लाटरी' का धन मिल गया था। आज सब कुछ लुट जाने के पश्चात् कौन-सी आशा ले कर खड़ी हो यह वह नहीं जानती थी। उसका ज्वर उत्तरोत्तर बढ़ने लगा था, किन्तु मासी के स्वामी को बुला लाने के प्रस्ताव पर वह दृढ़तापूर्वक विरोध करती हुई कहती थी कि वे अब ही तो गये हैं माता के पास। उन्हें बुलाना नहीं होगा। किन्तु भीतर ही भीतर लज्जा थी। आना अस्वीकार करने की कल्पित लज्जा से वह दबी जा रही थी। किन्तु उसकी वह लज्जा भी नग्न कर दी गई। कल उसके स्वामी का पत्र आया। उसके पास नहीं, मासी के पास। कहाँ रही उसकी निरर्थक लज्जा? कहाँ गई उसकी दीनता को ढक रखने की आशा? उसके स्वामी ने तो स्पष्ट रूप से लिख दिया कि वह क्षयरोग की रोगिणी को ले कर इहलोक का काम काज नहीं चला सकेंगे। नन्दिनी परलोक तो क्या पुनर्जन्म तक भी

प्रतीक्षा करने को तत्पर थी। किन्तु उसकी माँ और मासी में उतना धैर्य नहीं था ? वेदना से तड़फती हुई लड़की की व्यथा से विवश हो कर जब अत्यधिक आत्माभिमानिनी मासी ने नन्दिनी की सुसराल जा कर दामाद को समझाने का प्रस्ताव किया तो नन्दिनी—सुकोमल भोली नन्दिनी—ने बची-खुची लज्जा को समेट कर मासी से स्पष्ट रूप से कह दिया—"माँ, अपमान की ज्वाला और अधिक प्रज्वलित करने से अधिक जलन ही हाथ लगेगी। अभी तक तो क्षयरोग मुझे नहीं था। किन्तु अब होते और अधिक विलम्ब न होगा। तुम जा कर उनकी शान्ति और अपनी दृढ़ता भंग न करो। यदि किसी दिन तुमने मुझसे छिपा कर इसका प्रयत्न भी किया तो मैं गले मे रस्सी बाँध कर स्वयं मर जाऊँगी।" मासी अपनी लड़की को पहचानती थीं। उन्होंने स्वयं ही उसे गढ़ कर तैयार किया था। आज भी वह बदली नहीं है, यह मासी की दृष्टि से ओट नहीं हो गया था। पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया गया। पहले मास के अन्त में जब नन्दिनी के पति ने पचास रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजे तो नन्दिनी ने स्वयं ही अपने हाथो "अस्वीकृत" लिख कर लौटा दिये। उस दिन नन्दिनी की आँखों मे एक बूँद भर भी जल नहीं था। उसका यथापूर्व स्नान भोजन आदि भी हुआ। किन्तु रात्रि के अन्धकार मे सब की दृष्टि से परे नन्दिनी का, कंगालिनी का, करुण रुदन सुना केवल उन्होंने जिन्होंने एक दिन उसके कपाल में इतना अधिक दुःख, इतनी अधिक बिडम्बना और इतनी अधिक अवहेलना लिख दी थी। नन्दिनी का ज्वर बढ़ता ही जा रहा था, दुर्बलता भी अधिक हो गई थी।

परिस्थिति की गुरुता समझ कर इस बार परिवार के हितचिन्तक पुराने चिकित्सक नन्दिनी के पति को बुलवा देने की बात भी न कह सके। चित्रा को भी आभास तो मिल ही गया। नन्दिनी के कुछ भी स्वीकार न करने पर भी चित्रा ने मन ही मन भगवान से कहा—"हे सृष्टिनियन्ता, वह तो भावुक है। वह इतना कष्ट नहीं सह पायेगी। एक दिन तुमसे प्रार्थना की थी उसे सुख देने के लिए। वह तो तुमने सुनी नहीं। आज कहती हूं, जगदीश्वर उसे शीघ्र ही मृत्यु प्राप्त हो। इस प्रार्थना को सुनने में अधिक विलम्ब करके उसे कष्ट और अधिक न देना।"

नलिनी ने ससुराल में ही सब कुछ सुन लिया था। जेठ से वह बोलती नहीं थी। अपने पति से उसने कहा—"महाराज! यह क्या अन्याय तुम्हारे ही घर में हो रहा है, तुम तनिक जेठ जी को समझाओ ना।"

"तुम तो यूँ ही दुनियाँ भर की मुसीबतों में मुझे ही ढकेलती फिरती हो, मानो मैं ही सर्वाधिक व्यर्थ व्यक्ति हूँ। न हो इस बार तुम्हीं प्रयत्न कर लो?"

"जाने दो। यह क्या हँसी का समय है। इस बार जीजी सचमुच ही नहीं बचेंगी। वह बड़ी ही भावुक और आत्माभिमानिनी है।

"न बचेंगी तो दूसरी पत्नी आ जायेगी भाई साहब की। चिन्ता क्या है?"

"तुम्हे सचमुच ही क्या लज्जा नहीं है? इतनी भारी लज्जा की बात तुम लोग कैसी सरलता से कह पाते हो यही मैं देखती रह जाती हूँ।"

"भाई साहब को लज्जा कहाँ है ? पत्नी रोगशय्या पर पड़ी है और वह कोई एक डा० शालिनी कुमार है उसके पीछे-पीछे मारे-मारे फिर रहे है । तो भला बताओ मैं लज्जा किस बात की करूँ ? घर तीन ही दिन ठहर कर वहीं जा पहुँचे। वहाँ प्रैक्टिस करेंगे डा० कुमार के साथ ।"

"पर यह सब क्या उचित हो रहा है ?

"नहीं हो रहा है। पर मैं तुम्हारी तरह पराये झगड़ों मे नहीं पड़ता। ऐसा मेरा स्वभाव ही नहीं है ?"

"हाँ मैं तो पराये झगड़ों मे ही पड़ती रहती हूँ। जीजी तुम्हारे लिए भले ही पराई हो मेरे लिए तो पराई हैं नहीं। और फिर इतनी बड़ी हत्या करके तुम्हारा परिवार क्या प्रायश्चित्त करने से बच जायेगा। नारायण के दरबार मे कर्मों का फल तो सब को पाना ही पड़ता है। वहाँ देर अवश्य है, किंतु अन्धेर नहीं है देवता स्वरूप !"

"तब कर लेना। तुम्हारे प्रायश्चित्त करने से ही सब का कल्याण हो जायेगा, यह ध्रुव निश्चय समझो।

विनय, मान, क्रोध, किसी प्रकार से भी नलिनी पति को जेठ को समझाने के लिए मना नहीं पाई। उसका हृदय श्वशुर-कुल के प्रति भयंकर क्रोध और घृणा से भर उठा। जो व्यक्ति मानव हो कर भी मानव का यथार्थ मूल्य नहीं लगा पाते हैं, कभी भी नलिनी उन्हे क्षमा नहीं कर सकेगी। भले ही वह अपने ही क्यों न हो, नलिनी उन्हें आदर की, स्नेह की दृष्टि से नहीं देखेगी, देख सकेगी ही नहीं, प्रयत्न करके भी नहीं।

इच्छा मृत्यु

कमरे के प्रवेश द्वार पर प्रथम पग धरते ही चित्रा ने भीतर पलँग पर लेटी हुई अपनी सहपाठिका प्रिय सखी नन्दिनी के मुख पर जो मृत्यु समाच्छन्न स्याही रेखाएँ देखी उनसे वह भीतर और बाहर के सन्धिस्थल पर खड़ी खड़ी सी काँप उठी। उसे ज्ञात पड़ा कि इस कोमल बालिका के अतीव कोमल हृदय के चारों ओर कोई निष्ठुर गहन कृत्रिम प्रणय, घने विश्वासघात और कठिन अपमान के आघातों से निरन्तर चोट पर चोट किये जा रहा है। उससे हृदय विदीर्ण तो हो ही गया, साथ ही साथ शरीर का समस्त रक्त भी मानो कहीं उड़ गया अथवा बूँद-बूँद कर के तिल-तिल कर के, तप्त बालू पर पड़ी हुई जल की बूँद की भाँति अन्तर्धान हो गया। चतुर शिल्पी के सुचतुर हाथों द्वारा रचित संगमरमर की उज्ज्वल श्वेत प्रतिमा की भाँति नन्दिनी द्वार की ओर मुख किये हुए लेटी थी। उसकी नील कमल जैसी आँखों का जल सूख कर चिता गया था। रह गई थी केवल तप्त जलन। होठों पर मानो जले हुए हृदय की ज्वालाएँ छा कर उसे सर्वथा मरुभूमि ही बना गई थीं। वह आज सर्वथा शुष्क काष्ठ हो गई थी। वहाँ न था आवाहन और न स्वागत। यहाँ तक कि सुस्निग्ध वाणी भी लुप्तप्राय हो गई थी। नन्दिनी ने फटी फटी सी आँखों से आगन्तुका को देखा और देख कर भी नहीं देखा। पद-ध्वनि सुनी और सुन कर भी नहीं सुनी। इन दिनों वह

किसी से बोलती चालती नहीं थी। कभी-कभी तो किसी परिचित मित्र को देख कर आँखें ही बन्द कर लिया करती थी। बातचीत तो वह कितने ही दिनों से करना त्याग चुकी थी। कुछ भी संकेत न पा कर भी चित्रा भीतर आ गई। नन्दिनी ने इस बार देखा तो, पर बोली कुछ भी नहीं। पास ही एक छोटी सी चौकी पर मासी बैठी थीं, उनकी भी मुखाकृति घबराई हुई सी ही थी। उन्होंने "आओ बेटी" कह कर अभ्यर्थना की और साथ ही एक कुर्सी की ओर संकेत कर दिया। चित्रा ने कुर्सी नन्दिनी के निकट खींच ली और फिर बैठ गई।

"क्यों मासी, नन्दिनी का जी अब कैसा है ?"

"बेटी शरीर की अवस्था जानते हैं डाक्टर और मन की केवल भगवान! किसी से बोलती चालती भी तो नहीं। सर्वथा मौन साधा हुआ है। सो मैं, बताओ तुम्हें क्या बता दूँ ?"

चित्रा को फिर एक बार जान पड़ा कि नन्दिनी चारों दिशाओं से भाग्य के कुदेवता के चंगुल में परिवेष्टित वेदना से कराह रही है। उसके चारों ओर एक काली गहरी दुर्भाग्य की अदृश्य रेखा खिंची हुई है जो उत्तरोत्तर अधिकाधिक काली और गहरी ही होती जा रही है। उसकी दोनों आँखें, खुली हुई आँखें, चित्रा को ठीक प्रस्तर-प्रतिमा की आँखों सी निर्जीव जान पड़ीं।

"अब तो कुछ ठीक जान पड़ती है मासी, तुम घबरा कर उसे और भी घबरा देती हो। वह बिलकुल ठीक तो है। कुछ दुर्बलता है सो ठीक हो जायेगी।" कहते हुए चित्रा का कण्ठ स्वर दो बार काँप उठा। वह स्वयं ही अपने तथ्य की निस्सारता न जानती हो सो बात नहीं, किन्तु दुर्भाग्य द्वारा पीड़ित वृद्धा नारी

की व्याकुल आत्मा को धैर्य देने का अन्य उपाय भी तो कोई था नहीं।

"लो बेटी, तुम ज़रा बैठो, तुम से ही कुछ कहे सुने। मैं तब तक और सात पाँच काम देख आऊँ।" कह कर मासी कमरे से बाहर चली गई।

चित्रा ने सहज भाव से कहा—"नन्दो, मुझसे भी न बोलेगी क्या?"

"किससे नहीं बोलती हूँ? यह लोग तो बहुत अधिक बोलना चाहते हैं, और मेरे पास बोलने योग्य कुछ रह गया ही नहीं है। अतः मौन ही रह जाती हूँ।"

चित्रा को नन्दिनी की तूष्णींशीलता के विषय में ज्ञात न हो सो तो नहीं था, किंतु उसने विरोध नहीं किया।

शरीर की पीड़ा दबाने से बढ़ती भी है किंतु कई बार दबाना ही आराम देने का साधन होता है। किंतु मन का व्यापार कुछ और ही है। मन की वेदना को ज्यों-ज्यों मन की ही भीतरी तह में दबा दबू के रखा जाये वह अत्यधिक कष्टकर होती है, किंतु यदि किसी भी उपाय से उसे मुख द्वारा शब्द-जाल में विस्तृत कर के वायुमंडल में फैला दिया जाये तो उसका भार कुछ कम अवश्य ही हो जाता है। इसी भाव से चित्रा आज नंदिनी की पीड़ा को उभारने—मुख द्वारा निकलवा कर उसके हृदय का भार हलका करने—आई थी। उसने मन के दुखते स्थान पर हाथ रख कर तनिक-सा दबा दिया।

"महेश तो आजकल यहीं पर हैं।"

"हाँ हैं तो।" नन्दिनी चिढ़-सी गई, स्वर में भी झुँझलाहट

थी। किंतु चित्रा को तो किसी प्रकार उसके हृदय का भार हलका करना ही था, भले ही नन्दिनी क्रोधित हो उठे। डाक्टरों का कहना था कि क्रोध भी जड़ता से अच्छा है। उसमें जीवन का चिह्न तो है। किंतु नन्दिनी की यह एकान्त उदासीनता अतिशय भयंकर थी। उससे ही उसे खींच कर बाहर लाना था। "यहाँ तो नहीं आते। देख, मैं तो पहले भी यही कहती थी न। पर तू मानती ही कब थी।" चोट सीधी थी, किंतु नन्दिनी ने इतने दिनों में सहन करने का स्वभाव बना लिया था। उसने अत्यन्त घने मान के साथ कहा—"उनका यहाँ न आना ही उचित है चित्रा, मुझे क्षय रोग जो है।" बड़े साहस का परिचय दे कर नन्दिनी ने कह डाला, किंतु साहस तो साथ ही साथ चुक गया। हृदय की हीनता रो उठी। बरबस आँखों के खारे पानी को नन्दिनी ने दाँतों से नीचे का होंठ बुरी तरह दबा कर रोका। किंतु इस परिश्रम से, प्रयत्न से, सारा चेहरा एकबारगी शव की भाँति श्वेत पीत हो उठा। चित्रा इसके लिए तैयार नहीं थी, वह घबरा उठी। उसने उठ कर नन्दिनी का सिर अपनी गोद में रख लिया। तुरंत ही नन्दिनी ने सँभल कर कहा—"चित्रा मुझे क्षय रोग है, मेरे पास न बैठ, उधर जा कर कुर्सी पर बैठ अथवा चली जा।"

इस बार झिड़क कर चित्रा ने कहा—"जा, जा, रहने दे अपनी शिक्षा। मैं क्या कुछ लोभी हीन-प्रकृति महेश हूँ जो कीटाणु उड़ कर मुझे चिपक जायेंगे।"

किसी ने पिछले दो मास से नन्दिनी की नयन-कोरों में जल नहीं देखा था। पर आज न जाने क्यों नन्दिनी ने यह वाक्य

सहन न कर पाया, वह रो उठी। चित्रा सफल हुई। वह यही तो चाहती थी कि नन्दिनी साधारण नारी की भाँति रो-धो कर अपनी व्यथा कह कर मन का भार हलका कर ले। चित्रा ने उसे कुछ देर रोने दिया फिर धीरे-धीरे उसका सिर सहलाने लगी। रो चुकने पर नन्दिनी कुछ हलकी हो गई। उसने धीमे स्वर में कहा—"तू मेरी मित्र है अथवा शत्रु? जिस पीड़ा को मै इतने दिनो से हृदय मे छिपाये चली आ रही थी उसे ही तुमने बरबस आवरण उतार कर नग्न कर दिया बहिन।"

"वेदना को एकान्त रूप मे हृदय में बन्द करके तरह तरह के अवगुण्ठनो से ढक कर तुझे क्या मिलेगा नन्दो?"

"मिलेगी पीड़ा, वेदना और कसक, वही जो भाग्य मे लिखा है। पर तू उन्हें दोष न दिया कर चित्रा। उन्होंने तो वही किया जो उन्हें इस अवस्था मे करना चाहिये। मै पापिन तो उन्हे जान कर मृत्यु के मुख मे ढकेल रही थी स्वार्थवश।"

"खूब उचित किया। पहले तो एक कुसुम कोमल नन्ही बालिका के हृदय पर पत्र पर पत्र लिख-लिख कर आघात पहुँचा कर उसे रोग-शय्या पर डाल दिया और फिर तनिक-सा सचेत होते ही उठा कर कुल्हाड़ी सिर पर दे मारी।" चित्रा का हृदय धू-धू करके ईर्षा मे जल रहा था, पर नन्दिनी से उसे अकृत्रिम स्नेह था, सच्ची सहानुभूति थी और थी ममता।

"नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है चित्रा। उन्होंने तो कुछ भी नहीं किया।" नन्दिनी स्वयं पति को दोष दे सकती थी एकांत मे, मन ही मन उनसे रूठ भी लेती थी, किन्तु किसी दूसरे के मुख से वह पति की निंदा कैसे सुन सकती थी। स्वयं विधाता

के सम्मुख भी पति को दोषी मानने से पूर्व ही वह कोटि-कोटि नरक वास करना पसन्द कर लेती। उनकी निंदा उसके कानों मे पड़ कर हृदय तक जा ही नहीं पाती थी न।

बड़ी देर तक दोनों सखियाँ बातचीत करती रहीं। नन्दिनी का हृदय कुछ हलका तो हो गया किंतु चित्रा को सांत्वना नहीं हुई, आश्वासन नहीं मिला। उसने जाने से पूर्व नन्दिनी से कहा—"तो यह तेरी इच्छा मृत्यु है नन्दो ?" नन्दिनी ने उत्तर दिया—"इतनी बड़ी बात मत कहो बहिन, अपराध होगा। किन्तु अब जीवित रहने की ओर इच्छा शेष रह नहीं गई है। बता किस लिए जीऊँ, अपमान, तिरस्कार और पीड़ा ओढ़ कर परित्यक्ता कहलाने के लिए ?" चित्रा के मुख मे उत्तर आया अत्यंत कर्ण-कठोर कटु उत्तर, किन्तु उसने कहा नहीं। कुछ ठहर कर केवल यही कहा—"नारी का जीवन क्या केवल एक पुरुष के चरण कमलों पर, उसकी इच्छा पर, उसकी सनक पर, न्योछावर हो जाने योग्य वस्तु है। उसका अपना निजी अस्तित्व क्या कहीं है ही नहीं ?" चित्रा उत्तेजित हो उठी थी।

नन्दिनी ने साधारण से स्वर में कहा—"सो सब मैं नहीं जानती। बड़ी बातें हैं। मैं तो यही जानती हूँ कि उनका स्नेह का वरदान, जो एक दिन मुक्त हस्त हो उन्होंने दान किया था और झोली पसार कर मैंने ग्रहण किया था। मैंने किसी दिन उनसे माँगा तो था नहीं, पर उसे पा कर मैं राजरानी बन गई थी। आज उसे खो कर जो भिखारिणी हो गई हूँ उसकी दीनता उठा कर मैं विश्व में चार लोगों को मुख ही न दिखा सकूँगी। जिन्हे एक दिन मुकुटधारी मस्तक दिखाया है उन्हीं के सम्मुख

आज धूल भरे मस्तक को ले कर कैसे निकल सकूँगी चित्रा! मुझे मृत्यु शीघ्र ही इस शरीर से मुक्ति दे दे, अब यही प्रार्थना तू मेरे लिए भगवान के निकट करना मेरी रानी बहिन।"

चित्रा इस बार खिलखिला कर हँस पड़ी।

"कैसी पगली लड़की है तू भी। मैं तब ही तो तुझ से कहती थी कि इतनी भावुकता अच्छी नहीं होती। कहाँ, मुझे तो तेरे मस्तक पर कहीं धूलि का चिह्न भी दीख नहीं पड़ता है। खूब गोरा उज्ज्वल मस्तक है, पहले से भी अधिक प्रशस्त।"

"तू यह बात नहीं समझेगी।"

"कैसे समझूँगी, मूर्खता का ठेका जो विश्व भर का मैंने ले रखा है। जो हो, मैं फिर आऊँगी और तुझे इस तरह तिल तिल करके इच्छा मृत्यु का वरण नहीं करने दूँगी।"

चित्रा चली गई। किन्तु आकाश के किसी एक कोने में छिपा हुआ कोई अदृष्ट नन्दिनी का भाग्य तारा चुपके से मुसकरा उठा चित्रा की नन्दिनी को मृत्यु का वरण न करने देने की प्रतिज्ञा पर। पलँग पर लेटी नन्दिनी भी मुसकरा उठी चित्रा की स्नेहमयी प्रतिज्ञा को सुन कर।

एकाकी

"रविदत्त, सम्भवतः मानव जीवन में है ही निहित पीड़ा, आच्छन्न वेदना और दबी हुई अथवा दबाई हुई कसक।"

"यह आप कह रही हैं शालिनी ?"

"रविदत्त, देखो तुम मेरे मित्र हो। न तो मैं तुम्हारी स्वामिनी हूँ और न गुरुजन। मुझे आप कह कर लज्जित न किया करो।

"न जाने क्यों इधर कुछ दिनों से आपपर श्रद्धा होने लगी है।"

"सो क्यों ? तुम लोगों का दल तो सदैव ही हरीश के नेतृत्व में मेरे नारीत्व को ले कर की गई उद्दण्डता को अश्रद्धा की दृष्टि से देखना ही सिखाता था। अब यह अचानक ही श्रद्धा की लहर क्यों ?

"सचमुच ही किसी दिन आपको अश्रद्धा की दृष्टि से न देख पाया होऊँ सो बात नहीं है। प्रयत्न करता रहा अवश्य, किन्तु हाथ लगी केवल मात्र आत्म-प्रवंचना और आज स्पष्टतया ही देख पाता हूँ कि वह असत्य था और सत्य है मेरी यह अकारण ही की जाने वाली श्रद्धा।"

"रवि, मैं अभिमानिनी हूँ। बाल्यकाल से ही कभी श्रद्धा करना, सहन करना, सेवा करना, सीखा ही नहीं। सीखा था केवल मात्र आज्ञा करना, ठुकराना, दबाना और धमकाना। मेरी इसी छलना को ले कर तुम लोगों में से कोई मुझे अपनी, अपने

हृदय को, असह्य घृणा, कटु आलोचना, तीव्र निन्दा और अश्रद्धा से ढक देना चाहते हैं और अन्य मुझे अपने से उच्च अत्युच्च, दूर, परे समझ कर श्रद्धा के कुछेक कणों में मिला कर देने की चेष्टा करते हैं। किन्तु दोनों ही दलों के प्राणियों में से कोई भी मेरे एकाकी मन की दीनता पढ़ पाता नहीं।"

"यह आप क्या कह रही हैं?"

"टोको मत, सुन लो। ठीक ही कह रही हूँ। वही कह रही हूँ जो केवल एक व्यक्ति सुनने का अधिकारी था। किन्तु उसे सुना पाई नहीं, तुम सुनते जाओ।" कह कर शालिनी स्वयं रुक गई, कुछ कह नहीं पाई। जिसे सुनने का आदेश हुआ था वह मुख उठा कर शालिनी की ओर सुनने की इच्छा से देखने लगा, किन्तु शालिनी ने कुछ कहा नहीं, केवल सामने तिपाई पर रखा हुआ शरबत का गिलास उठा कर दो चार घूँट पी लिये। फिर धीरे-धीरे, जैसे स्वयं अपने से ही कह रही हो, कहना आरम्भ किया—"मैं नग्न नहीं होना चाहती पर साथ ही साथ तुम्हारा भ्रम भी अधिक देर तक सहन नहीं कर सकूँगी। सचमुच ही मैं जानती हूँ कि वस्तुतः मेरे भीतर कुछ भी श्रद्धेय नहीं है, कुछ भी सुन्दर नहीं है। फिर भी सौन्दर्य का जो कृत्रिम भार मैं लिये फिरती हूँ, अहर्निश उससे मुझे श्रद्धा तो नहीं मिलती, मिलती है केवल वासनापूर्ण लोलुप दृष्टि। देखने वाले समझते हैं कि उस दृष्टि को पाने के लिए ही मैं विक्षिप्त हो रही हूँ। किन्तु वह दृष्टि, सच मानना, मुझे सहन ही नहीं होती है। मैं उसे छोड़ तो पाती नहीं, क्योंकि वह मेरे नन्हे से मन का टूटा हुआ खिलौना है। मेरा मन उससे खेल कर तिक्तता से भर उठता है, फिर भी

उसे एक बारगी फेंक नहीं पाता है। सँभाल कर रखने की आवश्यकता न होने से ही उसे लापरवाही से इधर-उधर फेंक देता है और फिर खेलने की इच्छा होने पर उठा लेता है। बिलकुल नहीं फेंक पाता।" शालिनी कुछ देर ठहर कर कहने लगी—"क्यों यह सब कुछ एक और व्यक्ति से न कह कर तुमसे कह रही हूँ सो नहीं जानती; पर कहने से मन का भार हलका होगा इसलिए किसी एक व्यक्ति से कहना ही चाहिये, यही सोच कर तुम्हें अपना एकान्त श्रोता बनाया है।"

"आपको जीवन मे किसी प्रकार का अभाव तो है नहीं, शरीर के लिए भी नहीं और मन के लिए भी नहीं। फिर भी आपको सन्तप्त पा कर मन बैठ सा जाता है।" रविदत्त ने साहस कर के कहा।

"यही तो विधि की सर्वाधिक कठोर बिडम्बना है कि मानव अभाव को ही वेदना का कारण समझता रहता है। किन्तु यह नहीं जानता कि कभी-कभी वस्तुओं का प्रचुर मात्रा में होना भी दुःख का कारण हो सकता है।"

"सो कैसे ?"

"सो ही तो। जिसे किसी वस्तु के अभाव में आँखों का पानी सचमुच ही बहाना नहीं पड़ता उसकी आँखों का पानी सर्वथा सूख कर जम कर कठोर से पत्थर के रूप में स्वयं उसके ही हृदय पर जा पड़ता है। उससे सचमुच का सुख नीचे दब कर मर जाता है।"

"यह आपकी दार्शनिकतापूर्ण बातें हैं।" रवि के नेत्रो के सम्मुख जीवनव्यापी दरिद्रता, अभाव, नाच उठे। कहाँ उनमें

सुख कहाँ था ? उनमें तो सुख का नाम भी नहीं था। थे केवल मात्र असह्य दुःख, घनी पीड़ा और तीव्र वेदना। वह शालिनी के कथन को कैसे सत्य मानेगा।

"दार्शनिकतापूर्ण बातें भी जीवन से ही उत्पन्न होती हैं रवि! विश्व के प्रथम दार्शनिक ने बहुत ही अधिक दुःख पा कर कहा होगा—'सत्य ब्रह्म जगत मिथ्या'। यदि ऐसा न होता तो वह जगत मिथ्या कह कर सत्य ब्रह्म को हृदय में स्थापित कर पाता ही नहीं।"

"हो सकता है ऐसा ही हो।"

"ऐसा ही है, सचमुच ही ऐसा है। इसे तुम लोग समझ नहीं पाते हो। तब ही तो धनाभाव से पीड़ित मानवधारियों के करुण रुदन से जन के मन-प्राण भर देना चाहते हो। किन्तु उससे परे भी दुःख की कोई व्याख्या हो सकती है यह जान बूझ कर भुला देते हो।"

"ऐसा ?"

"हाँ ऐसा ही है। तुमने डाक्टरी पढ़ी है। मानव-शरीर को चीर फाड़ कर फिर सी देते हो। किन्तु जानते हो मानव-मन को चीर फाड़ कर उसकी एनाटमी पढ़ पाना भी अत्यन्त आवश्यक है।"

"लोग तो समझते हैं कि आप अत्यन्त चंचल, चपल, केवल मात्र स्तर पर रह कर आनन्द करने वाली ही हैं। मानव मन की इस गम्भीर तली में पहुँच कर भी आपने उसका अध्ययन किया है इसे सम्भवतः कोई भी नहीं जानता।"

"जानती तो मैं स्वयं भी नहीं हूँ और लोग जो कुछ जानते हैं वह भी ठीक है। मैं उनके सामने तो और ही रूप में आती हूँ

ना। शरीर की भाँति मन भी तो सदा सर्वदा आवरण से भूषित रहना ही चाहता है। किन्तु तुम इस ओर ध्यान न देना। यह तो मेरे मन का एक उबाल था सो बहा डाला। अब शान्ति हो गई। जो हो, तुम मेरे मित्र हो रविदत्त। सहज भाव से मित्रता का व्यवहार ही मुझे रुचिकर होगा।" सुन कर रविदत्त काँप उठा। "क्या मैं भी इस रमणी का एक नया खिलौना हूँ जिसे वह सँभाल कर नही रखेगी, टूट जाने पर खिड़की के बाहर सड़क पर भी नहीं फेंक देगी, केवल उपेक्षा से अनादर से इधर उधर कहीं डाल देगी और आवश्यकता पड़ने पर यदा कदा उठा कर फिर खेल लेगी।" किन्तु न जाने क्यों रविदत्त के मन में यह बात पैठी नहीं। शालिनी ने कुछ देर शान्त रह कर कहा—"रवि, तुम देखते हो गिरीश कैसा हुआ जा रहा है दिन दिन।" जान पड़ता था शालिनी ने अत्यन्त कष्ट से बहुत संघर्ष के बाद यह बात मुख से निकाली है। वह कभी गिरीश के सम्बन्ध मे कोई बात किसी से नहीं करती थी। यहाँ तक कि और किसी के कहने पर भी उपेक्षा से मुख फेर लेती थी। उसे ही अत्यन्त संकोच से गिरीश के स्वास्थ्य की बात कहते हुए देख कर रविदत्त को आश्चर्य हुआ। फिर भी उत्तर तो देना ही पड़ेगा।

"कुछ रोगी से जान पड़ते है। हँसते तो पहले भी यदा कदा ही थे, पर अब तो बातचीत भी नहीं करते। तनिक सा समय पाते ही वेदान्त की पुस्तकें पढ़ने लगते है।" रविदत्त को ज्ञात नहीं था कि वेदना कहाँ है। इस लिए उसने अनजाने ही शालिनी के मर्मस्थल पर ही चोट की। वह कहता गया—"ईश्वर जाने कैसे आदमी है, न विवाह करते हैं और न किसी नारी के प्रति

आकर्षित ही होते हैं, उधर धीरे-धीरे घुलते जा रहे हैं। उनकी माता तो कहती है कि बिना विवाह के इसका स्वास्थ्य सुधरेगा नहीं अतः बड़े प्रयत्न से विवाह की तैयारी हो रही है।"

शालिनी तैयारी का अर्थ जानते हुए भी नहीं समझ पाई। फिर भी मुख खोल कर यह भी न पूछ सकी कि क्या गिरीश ने स्वीकार कर लिया है। फिर भी उसकी दृष्टि धुँधली सी पड़ गई क्षणेक को। जान पड़ा कमरा सब वस्तुओं को लिये दिये हो घूम रहा है। तुरंत ही शालिनी सँभल गई। सीधे सादे रविदत्त ने यह परिवर्तन देखा भी नहीं, बूझा भी नहीं।

आज ही तो दिन में वह हस्पताल में गिरीश से मिली थी। उसने गिरीश से अत्यन्त करुण स्वर में कहा था—"गिरीश, यह शरीर सुखा कर किसे दण्ड दे रहे हो? अपराध तो किसी का कुछ जान पड़ता नहीं।" गिरीश ने ठीक-ठीक बात न समझ कर कहा था—"शालिनी, कोई किसी को दण्ड नहीं देता। सब अपने अपने कर्मों का यथापूर्वमकल्पयत् फल भोग ही कर रहे हैं।" शालिनी भी अर्थ ठीक नहीं समझी। गिरीश ने अपने कर्मो पर दोष लादा था और शालिनी संकेत अपने कर्मो की ओर समझ कर बोली—"तो फिर आज्ञा करो, क्या तुम्हारे धर्म-शास्त्रों में ऐसे छोटे मोटे पापों के लिए कोई भयंकर प्रायश्चित्त की व्यवस्था नहीं दी गई है?"

अब गिरीश समझ गया कि कहाँ की बात कहाँ आ पड़ी है, किंतु सँभालना क्या कुछ सरल था! फिर भी उसने स्वर में यथासम्भव स्वाभाविकता का रंग भरते हुए कहा—"जिस दिन

अपने कर्मों का स्वरूप पहचान पाऊँगा उसी दिन प्रायश्चित्त की व्यवस्था भी खोजूँगा।"

दोपहर का समय था। सब लोग अपने अपने काम में लगे हुए थे। जिनका काम नहीं था वह जा चुके थे। गिरीश को कभी भी घर जाने की वैसी उत्सुकता होती भी नहीं है, तिस पर आज उसके कमरे में शालिनी आ बैठी थी। सभ्यता के नाते वह उठ भी न सका। शालिनी ने इसी समय बिना सोचे समझे एकाएक अत्यन्त करुणाविगलित हो गिरीश का बायाँ हाथ जो कि उसकी ही ओर था, पकड़ लिया—"देखो, तुम भी तो मनुष्य हो। अपने दुख सुख का भार एकाकी ही क्यों ढोये चले जा रहे हो। किसी दूसरे को उसका भागी बना कर तनिक निश्चिन्त क्यों नहीं हो जाते गिरीश ?" आकुल प्रश्न कण्ठ मे लिये इस गर्वीली रमणी का आकुल मुख गिरीश के मुख के निकट ही था। गिरीश ने हाथ छुड़ाया भी नहीं और कुछ बोला भी नहीं। फिर वह मानो शालिनी की वेदना नस-नस से अनुभव कर रहा था। उसे आश्चर्य हुआ शालिनी के मन की विपरीत दशा पर। उसकी परिकल्पना मे खेल उठी मेडिकल कालिज की उद्दण्ड, चंचल, धनी बालिका छात्रा शालिनी कुमार और फिर क्लब की सर्वश्रेष्ठ तितली शालिनी कुमार, किंतु उसका कण्ठ तो आकुल नहीं था। उसके स्वर मे तो वेदना का कहीं लेश मात्र भी नहीं था। तो यह वह शालिनी नहीं है। यह तो वह चंचल नारी नहीं है। यह तो वह प्रगल्भ रमणी नहीं है। यह तो है गंभीर सुख दुख की समस्या लिये हुए करुणामयी, ममतामयी नारी। गिरीश के अशान्त मन को तनिक सी शांति प्राप्त हुई। उसकी इच्छा हुई

कि इस स्वेच्छा से सर्वस्व स्वाहा करने तक को उद्यत रमणी के कम्पित हाथ को अपने हाथों में उठा कर एक बार अपने संतप्त होठों तक ले जाये। किन्तु उसी समय गिरीश के मन में उदित हो गई एक छोटी सी बालिका प्रतिमा मंच पर खड़ी हुई खादी की साड़ी में लिपटी लिपटाई कविता पाठ करती हुई। मोह दूर हो गया। अत्यधिक करुणा से गिरीश ने अपना हाथ शालिनी के हाथ से निकालते हुए कहा—"शालिनी सचमुच ही यदि कभी विश्व भर में किसी साझीदार की आवश्यकता हुई दुख सुख का यह तुच्छ भार ढोने के लिए, तो उस समय तुम्हारे ही मन का आश्रय लूँगा, यह निश्चित समझो। किन्तु वह समय इस जीवन मे आयेगा इसकी कोई आशा ही नहीं है।"

शालिनी ने हाथ छोड दिया। फिर बोली "मैं उस समय की प्रतीक्षा करूँगी!"

"नहीं, इस जन्म मे नहीं अयेगा यह ध्रुव निश्चय है।" सब ही जानते थे कि शालिनी को पुनर्जन्म में विश्वास नहीं है। वह आज मुख खोल कर गिरीश के सम्मुख भी नहीं कह पाई साहस से "तो मैं दूसरे जन्म तक प्रतीक्षा करूँगी।" संकोच से उसका कण्ठ जड़ित हो गया। शालिनी अपनी इस गिरीश के निकट हो जाने वाली दुर्बलता से परिचित थी। उसे यह बिलकुल भी पसन्द नहीं था, किन्तु किया क्या जा सकता है। वह स्वयं विवश थी। गिरीश को भी अपने ऊपर बहुत अधिक विश्वास संभवतः नहीं रहा होगा। वह तुरन्त ही शालिनी के निकट से चला जाना चाहता था, वहाँ जहाँ शालिनी का सामीप्य न हो। उसने खड़े हो कर कहा—"बहुत विलम्ब हो गया है शालिनी,

अच्छा कल फिर मिलेंगे।" गिरीश चला गया। दूसरे दिन प्रातःकाल से ही शालिनी का मन और शरीर दोनों ही अस्वस्थ थे। शरीर की उसे विशेष चिन्ता नहीं थी, किन्तु मन की अस्व-स्थता उसे व्याकुल किये हुए थी। उसने हस्पताल टेलीफोन किया। दूसरे छोर पर सुना उसकी बात को डा० रविदत्त ने। शालिनी ने अस्वस्थता की सूचना गिरीश को देने के लिए कहते हुए यह भी कहा कि वह बहुत ही बेचैन है अतः रविदत्त सन्ध्या समय अवश्य आये उसे देखने। रविदत्त उसके आदेश के उत्तर में सन्ध्या समय सशरीर उपस्थित हो गया था। साधारणतः शालिनी मन की बात कभी किसी के निकट भी प्रकट नहीं करती है। किन्तु आज मन की अत्यधिक अस्वस्थता के क्षण में वह रविदत्त से किसी प्रकार भी मन के आवरण को बचा कर न रख सकी। उसने स्वयं ही आवरण फाड़ कर मन का यथार्थ रूप रविदत्त को दिखा दिया।

शालिनी ने फिर दो चार घूँट शरबत के पिये और सोफे पर ही कुशन सिरहाने रख कर लेट गई। रविदत्त निकट ही एक कुर्सी पर बैठा था। उसने और समीप आ कर शालिनी से सिर दबाने की अनुमति माँगी। शालिनी के सिर में सचमुच ही भयंकर रूप से पीड़ा हो रही है यह शालिनी को रविदत्त के प्रश्न करने पर जान पड़ा। उसने रविदत्त को सिर दबाने की अनुमति दे दी। रविदत्त धीरे धीरे सिर दबाने लगा। शालिनी को पीड़ा कुछ कम जान पड़ी, फिर भी वह चुपचाप पड़ी रही। थोड़ी देर बाद शालिनी ने रविदत्त का बाँया हाथ उठा कर अपने दोनों हाथों में ले लिया। शालिनो ने आँखें मूँद कर कल्पना

करनी चाही कि वह गिरीश का वही बायाँ हाथ है जिसका कि उसे कल प्रातःकाल प्रथम बार ही स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। रविदत्त काँप रहा था। शालिनी ने स्वेच्छा से उसका हाथ पकड़ा था। इस हाथ पकड़ने का अर्थ क्या है, खिलौना बनाना अथवा और कुछ? यही रविदत्त सोच रहा था। पर रात भर की जगी दिन भर की पीड़ाग्रस्त नारी कुछ ही देर से रविदत्त का हाथ पकड़े हुए शान्ति से सो गई। शालिनी की माँ उस दिन भी स्वामी के साथ क्लब में बैठी हुई थी। रोगी लड़की के पास नर्स जो थी और लड़की के मित्रगण तो हैं ही।

पुरुष

"बहिन जी, ऐसा अनर्थ तो भगवान भी नहीं सहेंगे।"

"जान पड़ता है भगवान से केवल तुम्हारी ही मित्रता है छोटी बहू। हम सब तो मानो नितान्त मूर्ख ही हैं।"

"सो कह कर अपना ओछापन तो प्रकट नहीं करूँगी बहिन जी! किन्तु यह भी नहीं मान सकती कि जेठ जी को अब दूसरी बार मौर बाँध कर विवाह करने जाना चाहिये?"

"क्यों नहीं जाना चाहिये? एक अधमरी मरणासन्न स्त्री के पीछे क्या महेश लोक संसार छोड़ कर सन्यासी ही हो जाये। पुरुष है, युवा है। अभी संसार उसके सामने अपने समस्त सौंदर्य को लिये हुए फैला हुआ है। वह विवाह क्यों न करे? कैसी विचित्र बुद्धि है तुम्हारी बहू?"

"बहिन जी, यह तो सोचिये कि जीजी क्या रोगिणी व्याह कर इस घर में लाई गई थीं। जब इस ही घर में आ कर उन्हें रोग हुआ तो उसका प्रतिकार······।"

बात काट कर क्रोध से बहिन जी जल उठीं। आँखें फैला कर हाथ नचा कर उन्होंने बड़े ही तीखे स्वर में कहा—"सो विद्या बहूरानी, न हो अपने घर वालों को ही पढ़ाना। हो तो अभागी न! न कोई भाई, न कोई बहिन। भला भाई बहिनों का सम्बन्ध कैसे समझोगी? मैं तो भई अपने भाई का घर उजड़ा, मुख उदास और जीवन नष्ट होते नहीं देख सकती।"

नलिनी लोक-लाज का बंधन तोड़ चुकी थी। पति के साथ नौकरी पर परदेश जाने से पूर्व इसी परिवार में एक वर्ष रह कर उस माता-पिता की एकमात्र प्रिय संतान ने बहुत से दुःख भोगे थे। सास और ननद के अत्याचार भी सहे थे किंतु एक शब्द भी कभी मुख से नहीं निकाला था। स्वभाव से ही नलिनी तेजस्विनी थी। अन्याय उसे किसी प्रकार भी सहन नहीं होता था। किंतु अपने लिए एक शब्द भी कह पाना उसे कठिन जान पड़ता था, मुख से निकलता ही नहीं था। किंतु जिठानी की रोगावस्था में होने वाली दुर्दशा का उसने खुला विरोध किया था। पति की सलाह सम्मति, सास की झिड़कियाँ और ननद की डाँट फटकार की उपेक्षा करते हुए उसने नन्दिनी की सेवा की थी। किंतु उस समय भी अपने शरीर से ही जो कुछ कर पाई किया। सास और ननद के साथ झगड़ा करते, वाद विवाद करते, उत्तर-प्रत्युत्तर करते उसके कण्ठ को एक संकोच आ कर जकड़ लेता था। किंतु इस बार जब जेठ के दूसरे विवाह की चर्चा चलने लगी तो नलिनी और अधिक सहन नहीं कर सकी। इस बार पति को किसी प्रकार मना कर वह ससुराल चली आई अन्याय का प्रतिकार करने। उसे इन दिनों नन्दिनी के पत्र नहीं मिलते थे। मासी का लिखा हुआ संक्षिप्त सा पोस्टकार्ड कभी कभी नन्दिनी की अवस्था की सूचना दे देता था। फिर भी उसे आशा थी कि देवदूत की भाँति किसी एक दिन उसके जेठ अपनी भ्रम भ्रांति को समझ कर नन्दिनी के चरणों पर गिर कर क्षमा माँगेंगे और नन्दिनी की प्राण-रक्षा हो जायेगी तथा वह सम्मान-पूर्वक इस घर में आ जायेगी। इसी एक दुराशा को ले कर वह

पति को अकेला छोड़ कर कुछेक दिन को यह दूसरी सगाई रुकवाने आ पहुँची थी। इधर कुछ दिन से सुसराल में नलिनी का विशेष आदर नहीं होता था। पहले तो बड़े घर की लड़की होते हुए भी वह काम काज अच्छी तरह करती थी, इसीलिए उसका खूब आदर यत्न था। किंतु जिठानी के पीछे सास ननद से लड़ने वाली बहू कितनी भी कर्मण्य क्यों न हो आदर की पात्र नहीं हो सकती है। अतः उसे देखते ही सब की त्योरियाँ चढ़ गई। नलिनी तो यह सब कुछ जान कर ही आई थी। उसने समस्त अनादर उपेक्षा और चिढ़न जलन कटन को सिर पर ओढ़ कर घर मे अपना डेरा जमाया। नलिनी के आगमन के तीसरे दिन ही विवाह का प्रश्न फिर उठ खड़ा हुआ। इस बार घर वालों का लक्ष्य थी जज साहब की एकमात्र पुत्री डा० शालिनी कुमार। पिता की अतुल धनराशि पुत्री को ही मिलेगी यह सब निश्चयपूर्वक जानते थे। घर भर में यदि किसी को विरोध था तो वह विद्रोहिनी छोटी बहू नलिनी को। इसीलिए इन दिनों बहिन जी भी आई थीं नलिनी को तर्क और कर्म दोनों ही क्षेत्रों में परास्त करके बुरी तरह दण्ड देने को। किंतु अदृष्ट देवता कुछ इस प्रकार मान जाते हों तो विश्व मे दुःख कहने योग्य रह ही क्या जाता। ननद ने भाभी पर अपना सब से तीखा तीर तरकश से निकाल कर छोड़ा था! नलिनी भ्रातृ-सुख वंचित थी न। किंतु सुन कर भी नलिनी अप्रतिभ नहीं हुई। वह संघर्ष करने आई थी, कुछ रणक्षेत्र त्याग कर भागने के लिए नहीं। उसने शांति-पूर्वक सहज स्वर से उत्तर दिया। भाई की बात जाने दीजिये, पर जान पड़ता है बहिन के कष्ट की बात मैं

आपकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह सोच पाती हूँ। जेठ जी के सुख की बात तो आपने सोची। भला जिठानी जी की बात भी तो सोच देखिए। आप तो स्त्री हैं बहिन जी, तनिक-सा ही प्रयत्न करके नारी के कष्ट की बात जान लेंगी।"

बहिन जी भरी कढ़ाई में पड़े बैंगन की तरह जल भुन गईं। इस बार उन्होंने कुछ अधिक तीव्र स्वर में कहा—"वह अभागी तो न जाने मायके से ही कौन-कौन से रोग ले कर इस घर का सर्वनाश करने आई थी। यह तो भला हुआ कि उन्होंने समय से जान लिया, नहीं तो राक्षसी मेरे भैया के प्राण ही ले कर छोड़ती, अभागी कहीं की। उसे तो अब त्याग ही दिया है महेश ने। फिर भला दूसरे विवाह में कौन-सा अन्याय है।" बकझक चल ही रही थी कि महेश स्वयं आँगन में आ कर खड़ा हो गया। गर्मियों के दिन थे। बाहर आँगन में ही सुबह-सुबह ननद भाभी बैठी थीं। पास ही आया बहिन जी की लड़की को नहला रही थी और बहिनजी बीच-बीच में स्वयं भी आज्ञा-पत्र निकालती जाती थीं बालिका-स्नान की विधि-सम्बन्धी। नलिनी जेठ के सम्मुख नहीं होती थी। घर की अन्य बहुएँ प्रायः बाहर ही रहती थीं अपने अपने स्वामी के साथ। यूँ पर्दा तो न था पर नलिनी को कभी महेश के सामने होने का अवसर ही नहीं मिला था। आवश्यकता भी नहीं हुई। पर इस बार महेश को देख कर उसने उठ कर चले जाने की चेष्टा भी नहीं की, उसी प्रकार चौकी पर बैठी रही। बहिनजी ने एक बार भस्म करने वाली दृष्टि से नलिनी की ओर देखा, पर वह हिली भी नहीं। महेश आ कर कुर्सी पर बैठ गया। बहिनजी ने बिना किसी भूमिका

के ही कहना आरम्भ किया—"महेश भैया, मेरा विचार है कि तुम्हारे विवाह की बातचीत डा० शालिनी कुमार के साथ की जाये। क्यो तुम्हारी क्या सम्मति है?" नलिनी बड़ा प्रयत्न करने लगी कुछ कहने को, किन्तु शब्द मुख से निकलते ही नहीं थे। महेश एकटक नलिनी की ओर देख रहा था और नलिनी धरती की ओर देख रही थी। नन्दिनी सुन्दर थी, अतीव सुन्दरी नारी प्रतिमा थी; किन्तु उसके सौन्दर्य मे चंचलता तनिक-सी भी नहीं थी। केवल मात्र थी अमर शान्ति, एक प्रकार का शीतल आशीर्वाद। नलिनी सुन्दरी है, अनन्त सुन्दरी है, उसके रूप में है क्रान्ति, उथल-पुथल मचा डालने वाली विद्रोहिनी का-सा सौंदर्य।

महेश ने अन्यमनस्कता से उत्तर दिया—"किन्तु नन्दिनी तो अभी जीवित है बहिन जी।"

नलिनी प्रसन्न हो उठी। उसका विश्वास जी उठा। इस बार उसने श्रद्धा से जेठ की ओर देखा। वह उसी की ओर देख रहे थे। दृष्टि मिल गई। अचानक नलिनी लाज से मर गई। उसका शरीर पसीने-पसीने हो गया। बहिनजी ने चिढ़ कर कहा—"देखो भला भैया की बातें। नन्दिनी क्या कुछ बचेगी। उसकी बचने वाली अवस्था ही नहीं है। और बच ही जाये तो क्या कभी वह तुम्हारे साथ रह सकेगी? मैं ही क्यों रहने दूँगी? मेरा भाई क्या कुछ कहीं से पड़ा गिरा मिल गया था। इधर माँ की अवस्था ठीक नहीं रहती है। अब तुम चुपचाप डा० शालिनी कुमार से विवाह कर लो। घर में एक बहू के डाक्टर होने से सुविधा ही होगी।"

महेश मन ही मन प्रसन्न हो उठा। उसे टी० बी० से बड़ा भय होता था, और फिर शालिनी उसकी पत्नी होगी यह विचार ही बड़ा मधुर था। उसका अन्तर आनन्द से भर गया। किन्तु भय भी हुआ, यदि शालिनी अस्वीकार कर दे यह सम्बन्ध। किन्तु वह मुझे प्रेम तो करती है। बनाती भी है, फिर भी...नहीं, नहीं, शालिनी मेरी है, एक मात्र मेरी है, उसे मेरी पत्नी बनना ही पड़ेगा। आनन्द के उच्छ्वास को दबा कर महेश ने कहा—

"यदि माँ की सुविधा और तुम लोगों की प्रसन्नता इसी में हो तो ऐसा ही करो।" कह कर महेश उठने लगा। नलिनी इस बार सिर से पैर तक जल उठी—जैसी बहिन है वैसा ही भाई है। उसने उठ कर जेठ के चरण बिना किसी प्रकार के संकोच के छू कर कहा—"आप बुद्धिमान हैं, सोचिये तो जीजी की इस समाचार से क्या दशा होगी?"

महेश को नलिनी का स्वर बड़ा ही मीठा लगा। किन्तु उसके उत्तर देने से पूर्व ही बहिन जी गरज उठीं—"यह सब नीच कुलोत्पन्न स्त्रियों के से ढंग हमारे घर में नहीं चलेंगे बहू। जेठ के पास हम लोगों की इच्छा के विरुद्ध अपील करके वकालत करने स्वयं मुख खोल कर जा खड़ी होगी यह तो हमने कल्पना भी कभी नहीं की थी। अच्छी निर्लज्ज लड़की हो तुम।" इसके पश्चात् की कथा संक्षिप्त तो नहीं है किन्तु रोचक भी नहीं है। बड़ी देर तक बकझक डाँट फटकार सुन चुकने पर नलिनी ने जेठ की ओर मुख करके केवल इतना ही कहा—"आप जिस रत्न को जानबूझ कर नष्ट कर रहे हैं वह आपको प्रदीप ले कर खोजने पर भी विश्व में दुबारा कहीं मिलेगा नहीं, जिस दिन

इस सत्य पर विश्वास हो सके उस दिन इस अपनी मूर्खा छोटी बहिन को स्मरण कर लीजियेगा।" इसके बाद भी बहिन जी की अनर्गल वाणी सुनने को नलिनी खड़ी नहीं रही। सास ननद के कटु वाक्यों और अभिशापो का कठिन भार सिर पर ले कर दूसरे दिन प्रातःकाल ही नलिनी पति के पास अकेली अनाद्दत निरस्कृत हो कर ही चल दी। किन्तु सतत प्रयत्न करके भी बहिन जी भाई का विवाह डा० शालिनी कुमार से नहीं कर पाई। वह तो कहती है कि उनके भाई ने डा० शालिनी कुमार को पसन्द नहीं किया, किन्तु चित्रगुप्त के मोटे खाते में स्पष्ट ही घटना-क्रम से लिखा हुआ मिला कि शालिनी ने यह सम्बन्ध किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया।

———

नारी

"मैंने तो किसी दिन भी तुमसे कोई शिकायत की नहीं, व्यर्थ में अपने आपको यन्त्रणा क्यों देते हो ?"

"शिकायत नहीं की यही तो सबसे बड़ी शिकायत है नन्दो।"

"नहीं, मुझे किसी से कुछ भी कहना शेष नहीं रह गया है इसीलिए तुमसे भी कभी कुछ कहा नहीं, और कोई कारण नहीं है ?"

"मुझ से भी कुछ कह सुन डालना शेष नहीं है क्या ?"

"नहीं, किसी से भी नहीं।" कह कर नन्दिनी शान्ति से आँखे बन्द करके लेटी रही।

"आँखें खोलो नन्दो, मैं अधिक समय तक यहाँ नहीं रहूँगा। जितनी देर हूँ उतनी देर तो मेरी बात सुन लो ?"

"कहिये, सुनती तो हूँ।" नन्दिनी आँखे खोलना ही नहीं चाहती थी। आँखें ही तो उसकी दुर्बलता का, दीनता का, इतिहास सबके सम्मुख खोल देती हैं। उन और सब लोगों की बात तो और है, पर किसी प्रकार भी नन्दिनी पति के सम्मुख उपयाचिका बन कर खड़ी नहीं हो सकेगी। उसे मरना है, वह मर जायेगी बिना पाये हुए, बिना ग्रहण किये हुए। अतृप्ति की ज्वाला भले ही उसके दोनों लोक बिगाड़ दे, पर स्वयं अपनी ही विशाल अट्टालिका के प्रांगण में नितान्त निःस्वत्व रिक्ता भिखारिनी हो कर वह भिक्षा की झोली नहीं पसार पायेगी।

माँ अत्यन्त प्रसन्न थी कि दामाद अचानक अनिमन्त्रित ही आ गया है। मासी तनिक शंकित थी और नन्दिनी थी अशान्त, अस्थिर। किन्तु तीनों ही ऊपर से शान्त थीं।

"डाक्टर क्या कहते है, तुम कब तक ठीक हो जाओगी ?"

नन्दिनी तनिक-सी दुर्बल-सी हँसी हँस दी।

"जिसकी समस्त परिचर्या का भार यमराज ही ले चुके हो उसके विषय में डाक्टर वैद्य क्या कहेंगे, या क्या कहते हैं यह सब सुन कर आप क्या कीजियेगा ?"

"यह तो अत्यन्त मानभरी बात है नन्दो।"

"सो ही समझ लीजिये। किन्तु अब मेरा विश्राम करने का समय है, क्षयरोग की रोगिणी हूँ न। माँ और मासी समय से ही सब काम कराती हैं।" नन्दिनी पति को समीप देखना नहीं चाहती थी। उसकी इच्छा थी कि उसका पति तुरन्त चला जाये। महेश उठा नहीं। उसने फिर कहा—"सैनेटोरियम क्यों नहीं भेज देती यह लोग ? वहाँ शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगी।"

नन्दिनी से घर की आर्थिक अवस्था छिपी हुई नहीं थी। मासी ने लड़की के लिए अच्छा घर वर पा कर अपनी शक्ति से अधिक धन विवाह पर व्यय कर दिया था। अब जब कि दोनों विधवा तपस्विनी बहिनें साधारणतया शान्ति से जीवन व्यतीत कर रही थीं थोड़े से बचे-खुचे धन का आश्रय ले कर तथा भाई से कुछ थोड़ी-सी आर्थिक सहायता पा कर, तो इसी

यदि जीवित रखा जा सके तो वही करने के अतिरिक्त अब उनके पास और उपाय भी क्या था। व्यय भी आशातीत अधिक हो रहा था। बरबस नौकर भी रखने पड़े थे औषध पथ्य की व्यवस्था करने के लिए। और धनाभाव में फिर सब ओर से व्यय कम करके केवल मात्र लड़की पर ही धनव्यय करने की व्यवस्था भी नन्दिनी की आँखों से बचा कर की तो गई थी पर नन्दिनी की चतुर दृष्टि यह सब कुछ चुपचाप जान चुकी थी। कुछ कटु उत्तर न दे कर नन्दिनी ने कहा—"यही ठीक है।" संक्षिप्त-सा उत्तर महेश के कान तक पहुँच सका भी अथवा नहीं, पर महेश ने वह बात उड़ा कर कहा—"नन्दो, तुम्हारे पास एक हीरे का सेट था आभूषणों का। तुम्हारी माँ ने दिया था।"

"हाँ तो फिर?" आश्चर्य से नन्दिनी ने पति की ओर देखने की चेष्टा की।

"वह कहाँ है? जरा उसका नमूना बहिन जी देखना चाहती थीं। उन्होंने मुझसे कहा था कि तुम से ला दूँ।"

नन्दिनी के मस्तिष्क के भीतर एक साथ जान पड़ा कि किसी चीनी के मिल के सारे ही यन्त्र एक साथ सशब्द चलने लगे। क्षणेक अचेतन रह कर नन्दिनी सब ही कुछ समझ गई। किंतु यह छल क्यों? मैंने तो कभी इनसे किसी बात की शिकायत भी नहीं की, किसी बात का विरोध भी नहीं किया। यदि यह दूसरा विवाह करना ही चाहते हैं तो मुझसे यह छल क्यों? यह धोखा क्यों? इसकी आवश्यकता ही क्या थी। पर पति के धोखे को विवस्त्र करके देखने और दिखाने की भी उसकी इच्छा नहीं हुई। केवल मात्र हुई अपने आप से घृणा और इस

ऐश्वर्य से घृणा जो मानव-मन को इतना छोटा कर देता है। महेश को जान पड़ा कि नन्दिनी आभूषण देगी नहीं, किंतु वह तो लेने ही पड़ेंगे। नन्दिनी तो बचेगी नहीं। फिर उसके आभूषण, साठ सत्तर हज़ार के आभूषण, उसकी माँ और मासी के पास ही चले जायेंगे। नहीं, नहीं, यह अन्याय है। न्यायतः वह मेरी पत्नी है, मैं उसका पति हूँ। उसका धन मुझे ही मिलना चाहिये। महेश के हृदय की आशंका बढ़ती ही गई। उससे बिलम्ब सहन नहीं हुआ। उसने कहा—

"चिंता न करो, मैं ला दूँगा और तुम तो पहनती कभी हो नहीं।" आज एक वर्ष पश्चात् पति की इस प्रतारणा से नंदिनी जल उठी। क्या मैं वैसी ओछी हूँ? क्या मैं इनकी अत्यन्त घृणित लज्जा और निज आत्मा के अपमान से भरी माँग की उपेक्षा करके इन्हें और भी अधिक नैतिक पतन के गड्ढे में स्वयं अपने हाथों ही न ढकेल दूँगी। अत्यन्त कष्ट से उसने शीघ्रतापूर्वक कहा, ताकि महेश कुछ और ही समझ कर कुछ और न कह बैठे—"तुम्हें तो ज्ञात ही है सब आभूषण और मूल्यवान वस्त्र बैंक के लौकर में रखे हैं। यह लो चाबी, जा कर निकाल लेना।" कह कर नन्दिनी ने लाकिट में पड़ी हुई एक ताली महेश के फैले हुए हाथों पर रख दी। उसी क्षण उसे जान पड़ा कि उसने इस लौकिक सम्बन्ध से सब प्रकार से मुक्ति प्राप्त कर ली। कुछ देर और बैठ कर महेश धीरे-धीरे बिदा ले कर चला गया। माँ और मासी ने यह जाना भी नहीं कि आज दामाद लड़की को वह यन्त्रणा, वह भीषण मानसिक पीड़ा दे गया है जिसका उपचार विश्व भर में कहीं खोजे भी नहीं मिलेगा।

रोगिणी पत्नी के आभूषण हथिया कर ले जाने वाला पुरुष कितना नीच हो सकता है इसकी कल्पना मन में उदय होने पर ही नन्दिनी की इच्छा हुई कि उस मन को ही कहीं निकाल कर फेंक दे। इन्हीं आभूषणों द्वारा धनाभाव दूर करने का प्रस्ताव करते ही एक दिन मासी ने कानों पर हाथ रख कर कहा था— "ना बेटी, सुनने से भी पाप होता है। वह तेरी आनन्द की, शृंगार की, वस्तुएँ हैं। उन्हें दान कर चुकी हूँ। अब छू भी नहीं सकती। तू स्वस्थ हो कर पतिगृह जा कर उन्हें पहनना। मैं अपना स्वयं सँभाल लूँगी और यहाँ तो कोई अभाव है नहीं। भैया तो रुपये भेजते ही रहते हैं, तू क्यों चिन्ता करती है।" और दूसरे दिन से मासी और भी अधिक सावधानी से चलने लगीं। यहाँ तक कि रात को धो कर इस्तिरी करके सदैव स्वच्छ वस्त्र पहने ही नन्दिनी के सम्मुख जातीं। यह भी धोखा है। किन्तु कितना अन्तर है मासी के घर की यथार्थ कंगाली छिपा कर रोगिणी लड़की के सम्मुख अपनी दुश्चिन्ता को निश्चिन्तता में परिवर्तित करने का छल करने में और स्वामी के स्त्री के सम्मुख, रोगिणी पत्नी के निकट, मिथ्या का आश्रय ले कर आभूषण ठग ले जाने के धोखे में? एक में है मधुरता और दूसरे में कुटिलता, एक में है स्नेह का आश्वासन और दूसरे में है आत्म-प्रवंचना की ज्वाला।

नन्दिनी ज्वाला में तड़पने लगी। ओह कितने नीच हैं यह! कितने छोटे हैं यह! यही मेरे आराध्य देव हैं! मेरी इहलोक और परलोक की नगरी के स्वामी हैं! पर कितने छोटे हैं यह! दुःख की इस निविड़ निशा में, अन्धकार के घने जाल के बीच

चारों ओर से निराशा के तिमिराच्छन्न हृदय में नन्दिनी को हलकी सी चमक दीख पड़ी एक अतिशय पुण्यात्मा प्रतिमा की। हृदय मन्दिर के एक कोने में अनादृत भग्न पड़ी हुई यह मूर्ति मानो उसके भग्न हृदय के कण-कण में छा जाना चाहती थी। एक दिन स्वयं उसी ने तो इसे इच्छापूर्वक छिन्न भिन्न कर डाला था। किन्तु आज इसका उपयोग ही क्या था। फिर भी नन्दिनी इस बार उस मूर्ति को अनादर से परे न ठेल सकी। कितना महान था वह व्यक्ति! वह एक व्यक्ति!

सैनेटोरियम

मानव की छाती के भीतर हृदय की भाँति सुरक्षित दो फेफड़ों में कब, कैसे, क्यों और किस प्रकार क्षय रोग के अत्यधिक सूक्ष्म कीटाणु घुस जाते हैं यह सृष्टि रचना के प्रधान आधार विधाता के अतिरिक्त और कौन बता सकता है? कहा जाता है कि इस रोग के रोगी को पुष्टिकारक भोजन पाने के अतिरिक्त जिस वस्तु की अत्यधिक आवश्यकता है वह है चित्त की निश्चिन्तता। किन्तु इस देश के अभागे क्षय रोग के रोगग्रस्त दुःखी प्राणियों को न तो सुमिष्ट पुष्टिकर भोजन की ही उतनी सुविधा होती है और न मन की प्रसन्नता और निश्चिन्तता की ही। जो हो जैसे तैसे इस देश के अधिकांश रोगी भयंकर यन्त्रणा, कठिन क्लेश और प्रबल व्यथा का आलिंगन कर एक दिन इस लोक की लीला किसी तरह समाप्त कर एक विधवा नारी और अनेकों छोटे बड़े प्राणियों को अनाथ एवं आश्रय-रहित करके परलोक की लीला का आस्वादन करने सहर्ष लाल लाल ज्वालामयी चिता पर चढ़ कर उस लोक को प्रयाण कर जाते हैं जहाँ न तो क्षय रोग है न क्षय रोग के रोगी और न सैनेटोरियम। इसी प्रकार के दृश्य देख कर चकित थकित नन्दिनी उस दिन चुपचाप आकाश के उस तनिक से भाग की ओर देख रही थी जो कि उसके सिरहाने की ओर की खिड़की में से दीख पड़ता है। कहीं से उड़ता हुआ एक पक्षी चला जा रहा था। नन्दिनी को जान पड़ा कि पक्षी अपने घर

लौट कर जा रहा है। वहाँ उसकी विहगी नीड़ मे उसकी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही है ; वहाँ उसके दो तीन नन्हे बच्चे चोंच फैलाये पिता के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं और यह पक्षी शीघ्रातिशीघ्र उड़ कर वहीं पहुँच जाना चाहता है। भले ही मार्ग मे व्याध की गोली इसे यहीं निज-जन-हीन मार्ग मे ही सदा के लिए निःशब्द कर दे। कल्पना से ही नन्दिनी के नयनो मे जल भर आया। उसे जान पड़ा कि सचमुच ही वह पक्षी व्याध के हाथों प्राण दे चुका है और उसकी विहगी उसकी वियोग-व्यथा से व्याकुल हो उठी है। नन्दिनी ने नयन मूँद लिये। एक और तकिया उठा कर सिर के नीचे रखा और पड़ी रही। न जाने कितनी देर वह इसी प्रकार और पड़ी रहती कि उसके कर्ण-कुहरों में एक अत्यन्त शिष्ट मीठी पर अपरिचित स्वर-लहरी गूँज उठी—"कैसा चित्त है अब आपका ?" इस प्रकार तो उसे कभी कोई सम्बोधित नहीं करता है। सन्ध्या के इस धुँधले अंधकार-पूर्ण समय मे तो डाक्टर भी नहीं आते हैं और स्वर भी डाक्टर का नहीं है। उसके स्वर में इतनी कोमलता भी नहीं है। नन्दिनी ने उत्सुकता और अनिच्छा से नेत्र खोल दिये। यह क्या ! नन्दिनी ने आश्चर्य से देखा कि अस्त होते सूर्य के क्षीण लालिमा भरे प्रकाश से सद्यःस्नात एक सुन्दर किन्तु उदास युवक खादी के स्वच्छ वस्त्र पहने मासी के साथ द्वार के निकट ही खड़ा है। उसका सिर खुला है और बाल तनिक अस्तव्यस्त से माथे पर भी पड़े हैं। आँखों पर सुनहरे फ्रेम की ऐनक है। पर ऐनक के दोनों शीशों के भीतर से दो उदास किन्तु उज्ज्वल आँखें उसकी ही ओर देखती हुई झाँक रही हैं। नन्दिनी को जान पड़ा

कोई देवदूत उसे लेने के लिए आया है। उसने अचानक विना सोचे विचारे दोनो हाथ उठा कर प्रणाम किया।

"आओ बेटा, अन्दर बैठ जाओ, कुछ विचार न करो तो ?"

"मासी आप कहती क्या हैं ?" कह कर युवक भीतर आ कर एक कुर्सी पर बैठ गया। अब नन्दिनी के स्मृति-मन्दिर के पट खुल गये। ओह! आज! आज यह क्यो आये ? इतनी देर मे! अब तो मेरे पास कुछ भी नहीं रह गया है; तनिक सा भी देना-पावना शेष नहीं है। जब सारा हिसाब-किताब समाप्त करके आज दुकानदारी उठा ही रही हूँ तो यह पुराना अति प्राचीन निराश व्यापारी यहाँ आया ही क्यो है ? क्या यह आगमन सर्वथा निस्स्वार्थ है ? सर्वथा निस्सार भी ! फिर भी नन्दिनी का हृदय श्रद्धा से भर उठा। उसने जीवन मे प्रथम बार गिरीश को सम्मुख पा कर कहा कोमल से स्वर से कॉपती हुई सी स्वर-धारा से—"आपने बड़ा कष्ट किया।" अल्पभाषी गिरीश ने मन ही मन कहा—"कष्ट ! तुम्हारे लिए ? क्या इससे भी अधिक कुछ विश्व मे दिया नही जा सकता है किसी को तुम्हारे लिए ?"

मासी की ऑखो मे ऑसू भरे आ रहे थे। वह सोच रही थी कि विधाता के किस दुर्घट चक्र ने उस समय उनकी दोनो ऑखों पर धूल डाल कर उन्हें एकबारगी पत्थर कर दिया था, जिससे कि वह किसी प्रकार भी इस अमूल्य रत्न को सॅभाल न सकीं, इसे हाथ के निकट पा कर भी उन्होंने पैर से ठेल दिया और जो कुछ अत्यन्त मूल्यवान समझ कर हाथ मे उठा कर हृदय पर धारण किया चाव से, वह निकला केवल मात्र बबूल

का काँटा। किसने उन्हे ऐसी दुष्ट बुद्धि दे डाली, बस यही एक बात वह जान नहीं पाई। पश्चात्ताप से उनका हृदय जल रहा था। जिस समय गिरीश ने उनके सम्मुख जा कर स्पष्ट स्वर से संकोच-रहित वाणी में कहा—"मासी, मैं नन्दिनी को देखने आया हूँ, एक दृष्टि भर देखने दोगी क्या ?" तो मासी को जान पड़ा कि नन्दिनी का यथार्थ अधिकारी आ गया है। तुरन्त सँभल कर अपराधी की भाँति सहम कर मासी ने कहा—"आओ बेटा, जान पड़ता है उमेशचन्द्र के भाई हो। है न ? बूढ़ी आँखो से ठीक दीख भी नहीं पड़ता है। आओ।" गिरीश ने कहा—"हाँ, नन्दिनी को देख सकूँगा क्या ?"

"क्यो नहीं भाई, आओ, ले चलूँ" कह कर मासी का जी चाहा कि अपने अपराध की स्मृति को ले कर छाती फाड़ कर रो उठें, पर वैसा कर नहीं पाईं। उसे नन्दिनी के पास ले आईं।

नन्दिनी को जान पड़ा महात्मा बुद्ध के से रूपवान, उपगुप्त के से करुणामय यह कोई देव पुरुप उसके अन्तिम समय उसका उद्धार करने के लिए आये हैं। उसने अत्यन्त प्रसन्न हो कर कहा, न जाने कैसे वह इतना कह पाई आज तीन मास पश्चात्—"सचमुच ही आपके आने से मैं सुखी हुई; किन्तु आपने इतना कष्ट क्यों किया ? मैं तो अब बचूँगी नहीं। यह तो अन्तिम वेला है।" मासी को जान पड़ा कि यह कोरा शिष्टाचार तो है नहीं, उससे कुछ अधिक है। पर तुरन्त ही नन्दिनी सँभल गई। उसे हार्दिक आनन्द उच्छ्वास भी प्रकट करने का अधिकार कहाँ है ! वह तो पत्नी है, एक पुरुप की धर्मपत्नी है। अग्नि को साक्षी करके एक दिन उसका विवाह उस व्यक्ति के साथ हुआ था जो

आज इस दुर्दिन में उसके साथ ज्वालाजिह्वामयी चिता तक जाने भी नहीं आयेगा; जिसका उसके साथ समस्त देना-पावना निश्शेष हो गया है। और यह कौन है जो आज उसकी उठी हुई दुकान में अशेष धन राशि ले कर व्यवसाय करने आया है, सो भी ऐसी कुबेला मे।

गिरीश परिस्थिति को सहज बना डालना चाहता था। इन वर्षों के व्यवधान को फाड़ कर एकबारगी स्वाभाविक रूप से ही इन दुःखिनी नारियों के सम्मुख खड़ा होना चाहता था। उसने तनिक साहस कर कहा—"आप निराश न हों, जीवन इतना सहज अप्रलोभनीय तो है नहीं। तिस पर डाक्टर कहते हैं कि आप शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेंगी।"

इस बार नंदिनी ने परम आत्मीय की भाँति गिरीश से कहा—"सो सब माँ से कहियेगा। वही प्रसन्न हो उठेंगी यह सब कुछ सुन कर। मुझे इससे हर्ष नहीं होगा। मेरा निःशेष दान तो चुक गया है, अब शेष रह गई है अन्तिम यात्रा. महाप्रयाण।" गिरीश मन ही मन काँप रहा था इस बालिका की जीवन के प्रति घनी उदासीनता देख कर। किन्तु मासी प्रसन्न थीं। नंदिनी ने भला किसी से खुल कर बात तो की। भले ही पराया लड़का हो। पर नन्दिनी कुछ बोली तो सही। नंदिनी की आँखें गहरे गड्ढों में धँस गई थीं। मुख का चमड़ा पीला हो गया था। दोनों होंठ नीचे पड़ गये थे और मुख पर हड्डियाँ उभर आई थीं। फिर भी दो गहरी काली आँखे सजीव थीं। पीला मुख कभी कभी तमतमा उठता था और सूखे हाथ हिल उठते थे। कुछ देर और बैठ कर गिरीश दूसरे दिन फिर आने का निश्चय कर के चला

गया। नन्दिनी उस दिन कुछ प्रसन्न सी दीख पड़ी, पर उसे जान पड़ा कि कहीं कुछ त्रुटि रह गई है, कहीं कुछ न पकड़ाई देनेवाली बाधा सी आ कर खड़ी हो गई है। हाथ बढ़ा कर वह उसे पकड़ नहीं पाती है फिर भी वह बाधा सजीव है, सत्य है और है जाग्रत। गिरीश ने न जाने किस सहज उपाय से मासी को प्रसन्न कर के नन्दिनी की सेवा का समस्त भार अपने ऊपर ले लेने का प्रयत्न किया। मासी ने भी बहुत कुछ स्वीकार कर लिया। किंतु इस सब के बीच गिरीश ने भी और मासी ने भी एक पतला व्यवधान मान लिया, स्वीकार कर लिया, जिसके दूसरी ओर रह कर ही अज्ञात रूप से गिरीश उनकी यथेष्ट सहायता करने लगा। पर उस प्रथम परिचय के पश्चात् फिर किसी दिन भी नंदिनी प्रसन्न नहीं दीख पड़ी। गिरीश को कुछ आभास सा हुआ कि नंदिनी उसके दृष्टिपथ की छाया से भी घबराती है, बच जाना चाहती है। आभास पा कर ही गिरीश ने वहाँ आना बन्द कर दिया, किंतु सेवा मे कमी नहीं हुई। दोनो समय डाक्टर के निकट आ कर ही वह नंदिनी का समाचार ज्ञात कर जाता था। इसी प्रकार और दस दिन बीत गये। नंदिनी की विचित्र अवस्था थी। वह मन ही मन देवता की भाँति गिरीश की भक्ति करती थी किन्तु उसे देखना नहीं चाहती थी। दृष्टि-पथ की इन लौकिक धाराओं से ही नही कल्पना से भी उसकी मूर्ति को मिटा कर वह केवल मात्र महेश की ही भग्नमूर्ति की पुनर्स्थापना करना चाहती थी। पर होता कहाँ था? इसी मान-सिक संघर्ष में नंदिनी और भी घुलने लगी। फिर भी मासी के हृदय की प्रतारणा किसी प्रकार भी कम नहीं होती थी। नन्दिनी

किसी प्रकार भी गिरीश की सेवा स्वीकार नहीं कर पाती थी। उसका इस पर अधिकार ही क्या था और वह आत्मगौरवमयी रमणी अनधिकार चेष्टा करे ही क्यों, तथा किसी की दया का भार भी क्यों ले? स्नेह पाने का द्वार तो उसके लिए पहले ही दृढ़ता से बन्द किया जा चुका था, उसे खोलने का कोई भी उपाय विश्व भर में शेष रह ही कहाँ गया था? डाक्टर की चेष्टाएँ नन्दिनी को स्वस्थ कर डालने के लिए बढ़ रही थीं, किन्तु नन्दिनी की तीव्र इच्छा उसे उत्तरोत्तर मृत्यु की ओर घसीटे लिये जा रही थी। वह नित्य प्रातःकाल भगवान के निकट प्रार्थना करती थी—"नारायण मेरी अब इस लोक की लीला समाप्त कर दो। अब कोई भी सुख देने की चेष्टा न करना। न हो तो उसे दूसरे जन्म के लिए उठा रक्खो जहाँ उनको पा सकूँ जिनका जीवन मेरी तुच्छ सेवा से सार्थक हो सके।"

निर्मम

"सचमुच ही तुम्हें लज्जा भी नहीं आती महेश ?"

"शालिनी, तुम्हे विश्वास क्यों नहीं होता ?"

"इसीलिए कि जो चमकता दीख पड़ता है वह सब स्वर्ण नहीं होता, जानते हो ? जो मुख से कह कर प्रकट करने की प्रतीक्षा करता हुआ जीवित रहता है वह प्रेम नहीं होता, गम्भीर स्नेह नहीं होता, वह होती है छिछली वासना..."

"बड़ी ज्ञानी बन गई हो शालिनी। पहले तो यह सब धर्म-ज्ञान तुम्हे नहीं था। अब किसने सिखा दिया, गिरीश ने या रविदत्त ने ?"

"कितने निर्मम हो तुम। पर सम्भवतः सशब्द प्रेम की निस्सारता का ज्ञान तो मुझे तुम्हीं ने दिया है। अब जाओ उस देवी की सेवा करो जो आज भी धन-जन-हीन एकान्त भाव से सैनेटोरियम में पड़ी मृत्यु की घड़ियाँ गिन रही है।"

"सुना जाता है आजकल तो वहाँ गिरीश के साथ आनन्द मनाया जा रहा है।"

"छी, कितने ओछे ही तुम! वह तपस्वी निस्वार्थ भाव से तुम्हारी दुःखिनी सती लक्ष्मी पतिव्रता पत्नी की सेवा करते हैं और तुम उसे स्वीकार भी मुक्त हृदय से नहीं कर पाते हो।"

"शायद यही हो। यह सब धर्मज्ञान मुझे नहीं हुआ है। मैं यही नहीं सोच पाता कि कोई भी साधु पुरुप किसी भी कारण

क्यों पर-स्त्री की धन और शरीर से सेवा करे और वह पर-स्त्री ही उसे ऐसा क्यों करने दे?"

शालिनी का हृदय क्षोभ से भर उठा। वह उत्तर दे सकती थी किन्तु घृणा से संकुचित हुआ उसका मन उत्तर दे कर अपने आपको छोटा कर देने में लज्जा का अनुभव करने लगा। उसने यही कहा—"इसका उत्तर जिस दिन तुम्हें भगवान दया करके समझा देंगे उस दिन तुम्हें जी भर कर रोने की सुविधा भी नहीं होगी, यह भूल न जाना।"

"सो ही सही, खूब याद रखूँगा। पर तुम्हारा धर्म-ज्ञान इधर खूब बढ़ रहा है, सो ही देख रहा हूँ।

"ईश्वर तुम्हें भी सुबुद्धि दे महेश।" कह कर शालिनी उठ खड़ी हुई। आज कल वह बहुत व्यस्त रहती है। सुवाग ने एक पुत्र को जन्म दिया है, गिरीश भुवाली गये हुए हैं, डा० रविदत्त और शालिनी ही उस विस्तृत हस्पताल को सँभाले हुए हैं। इसी बीच शालिनी के पिता की मृत्यु भी अचानक 'हार्ट फेल' हो जाने से हो गई, अतः उसे घर का भी काम काज देखना पड़ता है। पिता के वैभव का अधिकांश पिता की इच्छानुसार उसे ही मिला है, अतः उसकी देख सँभाल भी तो करनी पड़ती है। फिर भी अधिकांश समय शालिनी हस्पताल में ही लगाती है। न जाने क्यों उसे धन शृङ्गार और मित्रों सब ही से अरुचि सी हो गई है। अपने रोगियों को ले कर उनके सुख दुख को ही ले कर व्यस्त शालिनी का एक भिन्न-सा व्यक्तित्व ही जान पड़ता है। अब भी वह क्लब जाती है, सुन्दर बँगलौरी अथवा मुर्शिदाबादी अथवा बनारसी सिल्क की अथवा जार्जेट करेब

आदि की साड़ियाँ भी पहनती है, किन्तु मुख की ओर दृष्टि जाते ही पुराने परिचित सहज ही पढ़ लेते है कि यह शालिनी का एक नवीन ही परिचय है, नवीन ही व्यक्तित्व है, और है नवीन ही-सा ढाँचा। पुराने मित्र निराश हो जाते है, किन्तु रोगी एवं रोगियो के कुटुम्बी शालिनी की देवता की भाँति भक्ति करने लगते है। शालिनी ने रूप के प्रशंसको की प्रशंसा का आस्वादन किया था, उससे आनन्दित भी हुई थी, तज्जनित प्रलोभन भी पहचान चुकी थी। किन्तु रोगी, दुखी, दीन, दरिद्रों की कृतज्ञता-भरी मूक दृष्टि और सशब्द अनेकानेक आशीर्वादो का स्वाद शालिनी के लिए नवीन होते हुए भी अत्यन्त रुचिकर सिद्ध हुआ। शालिनी उसमे लवलीन हो कर दूसरी प्रशंसा का स्वाद भी क्रमशः भूलने लगी थी। इसी बीच पुराने जीवन के भग्नदूत की भाँति एक दिन महेश उसके जीवन के पथ मे आ खड़ा हुआ। महेश उससे क्या चाहता है यह शालिनी जानती थी, फिर भी पहले की भाँति हाथ उठा कर स्वागत भी नहीं कर सकी और स्नेह का सहज वरदान भी नहीं दे सकी; केवल किसी तरह बिठा भर लिया। इससे महेश को अधिक सुविधा तो नहीं हुई किन्तु एक ही जीवन सूत्र मे बँध जाने के प्रस्ताव के उत्तर मे शालिनी ने महेश की बहिन को एक बार दिया हुआ उत्तर जब दोहरा दिया तो महेश के धैर्य के बाँध सहसा टूट गये। व्यंग और कटु वचनों पर उतर आने पर भी जब शालिनी शान्त ही रही तो महेश समझ गया कि शालिनी में सचमुच क्या परिवर्तन हो गया है। निष्ठुर तो वह सदा की ही थी अब निर्मम भी हो गई है। शालिनी ने महेश को और अधिक सोचने का अवसर

नहीं दिया। वह उठ खड़ी हुई। उसने मेज़ पर रक्खा हुआ अपना धूप का चश्मा उठा कर कहा—"महेश, अब मुझे समय नहीं है। हस्पताल जाना होगा और फिर संध्या तक लौटने का अवकाश नहीं मिलेगा। तुम भविष्य में कभी मुझे मिलने की चेष्टा न करना, कारण वह चेष्टा व्यर्थ ही होगी और असम्भव नहीं कि परिणाम कोई अपरिकल्पित एवं अप्रिय घटना हो।"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही शालिनी बाहर निकल गई। महेश भी उठ कर बाहर आया। किन्तु महेश के बरामदे की सीढ़ियों से उतरने के पूर्व ही शालिनी कार चला कर फाटक से बाहर निकल गई थी। हताश-सा बाहर आ कर महेश कुछ देर खड़ा रहा, फिर धीरे से अपनी कार में जा कर बैठ गया। मार्ग भर वह सोचता जा रहा था कि यह क्या हुआ? शालिनी में इतना गहरा परिवर्तन कैसे और क्यों हो गया? यह परिवर्तन तो शरीर का, वेश-भूषा का, यहाँ तक कि भाषा का परिवर्तन नहीं जान पड़ता। यह तो जान पड़ता है कि मन प्राण का आमूल परिवर्तन है; एक बारगी परिवर्तन है।

शालिनी सोच रही थी कि यह किसका मोह है, मेरे शरीर का, मेरे मन का अथवा मेरे अतुलनीय धन का जो महेश को इस प्रकार बार-बार तिरस्कृत होने पर भी फिर-फिर मेरे पास ही जुटा लाता है? क्या यह मोह सत्य है? यदि नहीं, तो फिर यह कैसे ठहर पाता है मानव-मन में, मानव-प्राणों में? रविदत्त इन दिनों हर समय शालिनी की आकुल दृष्टि से प्रतीक्षा किया करता है। उसने पहुँचते ही शालिनी से कहा—"आप आज

बहुत उदास दीख पड़ती है शालिनी, ओह, फिर भूल गया तुम कहना।"

"तुमसे सदा ही भूल हो जाती है रवि।"

"अब नहीं होगी; पर आप इतनी उदास क्यों हैं?"

"सोचती हूँ मानव का मन किस प्रकार उच्च और निम्न स्तर पर घूमता रहता है। इन्हीं मानव-प्राणियों में देवता भी दीख पड़ते हैं और राक्षस भी। किन्तु देवता और राक्षस के बीच की जो एक कोटि है मानव की, वही क्यों इतनी कम दीख पड़ती है विश्व में।" शालिनी का स्वर कोमल तो था किन्तु विचार-पूर्ण भी था। "मानव होना कठिन है शालिनी। मन्दिर का देवता अकर्मण्य हो कर संसार के समस्त प्रलोभनों से दूर, परे, एकान्त भाव से विश्व भर की पूजा ग्रहण करना भर ही जानता है। उसे पूजा के साधन जुटाने नहीं पड़ते, इसी लिए तो निर्लेप है। राक्षस ध्वंस करता है, नष्ट करता है, उत्पन्न नहीं करता। उत्पादन-शक्ति उपार्जित करने के लिए उसे कुछ भी श्रम, कुछ भी संचय, नहीं करना पड़ता; इसीलिए वह सरल है।" सदा का अल्पभाषी रविदत्त कहता गया—"किन्तु मानव, हे भगवान, उसे तो अहर्निश प्रलोभनों के बीच एड़ी से चोटी तक डूबे रह कर भी उनसे बच निकलना सीखना पड़ता है। कितना कठिन है यह व्यापार।"

तब ही तो मानव का स्थान भी सर्वोच्च है। यथार्थ मानव बन पाने का प्रलोभन तो तुम्हारे देवता भी नहीं सँभाल पाते हैं। सुना जाता है कि हिन्दू धर्म शास्त्रों में ऐसा लिखा है।"

"पर सब तो मानव भी नहीं बन पाते हैं और दानव भी

नहीं। मानव दानव और देवता के बीच झूलता हुआ ही निरन्तर अपना स्थान खोजता रहता है।"

"पर वह स्थान मिलता ही कितने लोगों को है और जिन्हें मिल जाता है उनका मूल्य क्या कभी विश्व जान पाता है?"

"जान कर होगा भी क्या? वह तो स्वतःपूर्ण है। [illegible] उन्हें पूर्ण कर पायेगी यह कल्पना भी हास्यास्पद है।" रविदत्त ने धीरे से कहा। शालिनी ने सारे सत्य भाव से उसे ग्रहण करना चाहा। शालिनी ने गिरीश के निकट बहुत कुछ सीखा था और सीख रही थी। किन्तु रविदत्त ने गिरीश के निकट नहीं तो अब तक सीखा था जो उसकी जिह्वा ने आज कुछ रूप से शालिनी के निकट उन्मुक्त कर डाला।

इसी समय गिरीश एक कोने में जलस्रोत के निकट सुशान्ति में खड़ा सोच रहा था—"मानव कितना दुर्बल है? कितना तुच्छ और कितना अपदार्थ? फिर भी वह अपने साथ कितना अधिक छल करता है स्वमहत्त्व को ले कर!"

मृत मातृत्व

"तुम्हारी चरण-धूलि दिलाने के लिए ही इसे यहाँ ले आई हूँ जीजी।"

"अच्छा अच्छा, चरण-धूलि तो अब ले ली न। इसे जाने दो बहिन बाहर, जा कर तनिक सो ले।" नलिनी ने बच्चे को आया की गोदी में दे दिया। बच्चे को ले कर आया तुरन्त ही घर चली गई। नलिनी नन्दिनी को देखने आई थी और साथ अपने चार मास के पुत्र को भी ले आई थी। नंदिनी स्वयं ही किसी को अपने निकट नहीं आने देती थी, किसी पर अपनी छाया भी नहीं पड़ने देती थी। नलिनी के हृष्ट-पुष्ट सुन्दर बालक को देख कर नंदिनी के हृदय में स्नेह का स्रोत उमड़ पड़ा। मातृत्व की सुकोमल भावना जाग्रत हो उठी। उसे जान पड़ा कि यही सुन्दर बालक उसकी युग-युग की तृषा का तृप्ति स्थल है। इसे गोद में ले कर, प्यार कर के ही वह स्थायी तृप्ति प्राप्त कर सकेगी। उसकी इच्छा हुई कि नलिनी के पुत्र को गोद में ले कर प्यार कर ले। बाँहें कुछ आगे बढ़ गई किंतु तुरन्त ही हाथ पीछे हट गये। उसे एकबारगी अपने शरीर से निकल कर उड़ते हुए कीटाणु बालक के कोमल शरीर में जाते हुए जान पड़े। उसने अत्यन्त व्याकुल हो कर लगभग चीखने के से स्वर से कहा—"यह क्या नीलू, इस नन्हे से जीव को इस भयंकर नरक द्वार में क्यो ले आई? कैसी बुद्धि है तुम्हारी बहिन?"

बरबस बालक को बिदा कर के नन्दिनी कुछ थकित से मन से चुप हो लुढ़क रही अपने बिस्तर पर। कहने सुनने को शेष रह ही क्या गया था। उसकी आँखें न जाने क्यों भर आईं अचानक ही। उसके हृदय का सुप्त मृत मातृत्व सहस्र धाराओं में चेतन हो कर, जीवित हो कर, अश्रु-लहरियों के साथ हृदय-रक्त-मिश्रित बहने लगा नेत्र द्वारों से। नलिनी ने सदा की मधुर मुसकान से कहा—"जीजी, उदास क्यों हो जाती हो? क्या विश्व-ब्रह्माण्ड में एक पति-प्रेम ही सत्य है और सब कुछ मिथ्या! क्या नारी-जीवन की सार्थकता केवल मात्र एक पुरुष की प्रसन्नता में ही है? क्या यही नारीत्व का अन्तिम लक्ष्य, सर्वोच्च आदर्श है।"

नन्दिनी ने वर्षों से वाद-विवाद करना त्याग दिया था। इधर तो कितने ही मासों से वह बोलती भी बहुत ही कम थी। बीच बीच में चित्रा आ कर इसी तरह उत्पात करती, उसे बरबस तर्क में घसीट कर उसका मन हलका करने का प्रयत्न करती रहती थी। किन्तु नन्दिनी को अब वह भी रुचिकर नहीं होता था। नलिनी दो वर्ष पश्चात् बिना सूचना दिये, बिना किसी पत्र के उत्तर में दो पंक्तियाँ भी पाये, आज उसे देखने आई थी। अतः नन्दिनी को कुछ कहना ही होगा। उसने डूबते हुए से स्वर में कहा—

"नहीं, यह सब मैं नहीं मानती। किन्तु व्यर्थ आत्म-निवेदन की निष्फल ज्वाला कितनी पीड़ादायक होती है इसका तुम्हें अनुभव ही कहाँ है नीलू।" सचमुच ही नलिनी को त्याज्य घोषित किये जाने की पीड़ा का, लज्जा का और जलन का अनुभव नहीं था। फिर भी वह नारी थी और थी पूर्ण नारी। नन्दिनी के

हृदय में किस स्थल पर सबसे अधिक पीड़ा हो रही है, वह जानती थी, किन्तु अब उपाय रह गया ही कहाँ था। डाक्टर, वैद्य निराश हो चुके थे। सैनेटोरियम के डाक्टरों को आश्चर्य था कि नवीन वैज्ञानिकों के मस्तिष्क की उपज इतने सारे सफल साधन भी नन्दिनी के शरीर पर टकरा कर निष्फल हो गिरते थे। चित्रा उनके आश्चर्य पर मन ही मन हँस देती थी। उसे पूर्णतया विश्वास था कि सृष्टि भर का कोई भी उपचार, कोई भी औषध, उस व्यक्ति को तनिक भी रोग-मुक्त कर नहीं सकती जिसने स्वयं ही जीवित रहने की इच्छा का त्याग कर दिया हो। नन्दिनी अत्यन्त भावुक थी, नारी थी, युवती भी थी। उसकी जीवन के प्रति उदासीनता वैराग्य नहीं था, थी केवल निराशा, निष्फल आत्म-निवेदन की ज्वाला। उसका मातृत्व सुन्दरता से विश्व-सन्तान को स्नेह में डुबा देने की भावना से ओतप्रोत यथार्थ अलौकिक मातृत्व नहीं था, था केवल बरबस गला घोंट कर मार डाला गया मातृत्व। नन्दिनी की क्षण भर के लिए मातृत्व की भावना जाग उठी, क्षणेक को उसने अपनी निजी रक्त मांस की सन्तान नहीं, विश्व भर के दुखी पीड़ित जनों की सन्तान बनने का सुन्दर स्वप्न देखने का प्रयत्न किया। किन्तु स्वप्न का आधार निद्रा भी कहाँ थी उसके पास? यथार्थ की ओर से सो पाने का भी उपाय कहाँ था? पथ सम्मुख तो था पर तिमिरमय था; प्रशस्त तो था, परन्तु कंटकाकीर्ण था। और फिर कौन सा पाथेय ले कर वह उस पथ पर अग्रसर होती। फिर देर भी तो बहुत हो गई थी। नहीं, नहीं, वह मातृत्व को ले कर भी जीवित किस प्रकार रहेगी? यह टूटा हुआ शरीर, थकित आशंकित मन

और धू-धू जलता हुआ हृदय! नहीं किसी प्रकार भी उसकी जीवित रहने की इच्छा लौटेगी नहीं। डाक्टर कहते हैं कि उसे प्रसन्न रहना चाहिये। चित्रा कहती है कि उसे जीवित रहने की इच्छा को मन के किसी कोने में सुरक्षित कर डालना चाहिये और यह नील् कहती है नारीत्व की सफलता केवल मात्र निराश प्रेम की ज्वालाओं में जलते रहने में ही नहीं है। पर क्या वह अब नारी रह गई है? वर्षों से वह तो अपने आप को केवल मात्र रोगिणी ही जानती है। वह युवती है, सुन्दरी है, नारी है. यह सब कुछ तो वह वर्षों पूर्व ही विस्मरण कर चुकी है। फिर आज त्रणेक में एक सुन्दर बालक के दर्शन क्या उसके सुप्त नारीत्व के उस आदर्श मातृत्व को जगा पायेंगे?।

नलिनी बहुत देर तक इधर उधर की बहुत सी बातें करती रही। नन्दिनी अधिकांश चुपचाप सुनती रही. किन्तु उसके मन मे एक अक्षर भी पैठ नहीं सका। कभी कभी यूँ ही नलिनी को निराश न करने की भावना से हाँ-ना भी कर देती थी, किन्तु इससे अधिक कुछ भी नहीं। नलिनी बहुत देर तक नन्दिनी के पास बैठ कर उसकी सोने की इच्छा प्रकट करने पर मासी के पास आ बैठी। मासी इधर दो-तीन से बहुत ही चिन्तित थी। एक एक करके घर के कुछेक मामूली से आभूषणों से ले कर साधारण वर्तन तक विक गये थे। यहाँ तक कि सैनेटोरियम का व्यय चलाना भी कठिन था। गिरीश आर्थिक सहायता दे सकता था। ज्यों त्यों थोड़ी बहुत कर भी पाता था। किन्तु एक बार जो सर्वे सर्वा होता उसकी वस्तु को अपनी असावधानी से नष्ट-प्राय कर के अब उसकी मरम्मत के लिए उसके यथार्थ, पर

अन्याय छल द्वारा वंचित किये गये, स्वामी के पास हाथ फैलाते मासी न जाने किस अज्ञात, अकल्पित, अचिन्त्य अपराध की लज्जा से भर उठती थीं। वैसा उनसे करते ही न बनता था। किसी प्रकार भी वह गिरीश के किसी छोटे मोटे अहसान को भी सहज और सह्य नहीं बना पाती थीं। और फिर अभी उस दिन, जिस दिन महेश ने दो वर्षों के पश्चात् नन्दिनी को एक कठोर पत्र लिखा था, तब से तो मासी गिरीश के सम्मुख भी नहीं पड़ी थीं। महेश ने पतित्व का पूर्ण अधिकार जमाते हुए नन्दिनी को निर्लज्जा की भाँति गिरीश से मिलने-जुलने की अकारण अपराध-भ्रान्ति से रँग कर लाञ्छित कर डाला था। उससे स्वयं महेश कितना छोटा हो गया नन्दिनी की दृष्टि से, सो तो वह स्वयं भी नहीं जानती, किन्तु ऐसे आराध्य देव की उपासिका बरबस बनाई जाने की अपमान और लज्जा की ज्वाला उसके भीतर ही भीतर और भी अधिक कटु हो उठी। उसकी शारीरिक अवस्था भी और अधिक बिगड़ने लगी। इधर मासी नन्दिनी की शारीरिक अवस्था और अपनी आर्थिक चिन्ता को ले कर अत्यधिक चिन्तित हो उठी थीं। कहीं कूल किनारा भी तो दीख पड़ता नहीं था। नन्दिनी की देवरानी नलिनी का स्नेहपूर्ण सुन्दर मुख देख कर तीन वर्ष पूर्व की अपनी नन्दिनी के मुख को कल्पना मे देख कर और भी अधिक दुखी हो उठीं। नलिनी ने सरलता से मासी के निकट बैठ कर कहा—"मासी, मैं तो तुम्हारी लड़की हूँ न, यदि तुम्हारे पास यहीं दो दिन रह कर तुम्हारी व्यथा का भार कुछ हलका कर सकूँ तो कैसा हो?" प्रश्न कर के आकुल दृष्टि से उत्तर पाने की प्रतीक्षा में नलिनी सगी लड़की की

भाँति मामी की ओर देखने लगी। मामी की आँखों का जल किसी भाँति रुकता ही नहीं था। ठीक यही बात गिरीश ने कही थी, किन्तु नहीं कही तो उस व्यक्ति ने जो विश्व भर में मामी के निकट सबसे अधिक अपना था, जिसे मामी ने अपना हृदय रत्न दिया था भेंट में। कुछ स्वस्थ हो कर मामी ने कहा—"तुम तो पराई लड़की हो बेटी, नन्दिनी भी तुम्हारी बिलकुल अपनी नहीं है। फिर भी तुम्हारा स्नेह कभी भूल न सकूँगी बेटी। तुम्हारा बच्चा छोटा है, यहाँ तुम्हारा रहना ठीक नहीं है। और भी कुछ देर हठ कर करा के वह पराई लड़की मामी के हृदय के मातृत्व को परितृप्त कर चली गई। किन्तु मामी के लिए पीछे छोड़ गई अश्रुमालिका की अविरल धाराएँ। मामी ने सोचा—मेरी नन्दिनी भी तो एक दिन ऐसी ही थी, किन्तु आज! धुँधले अन्धकार में बाहर डाक्टर के साथ खड़ी हुई मूर्ति गिरीश की थी। अब वह भीतर नहीं आया करता था। नन्दिनी ने एक दिन मना जो कर दिया था। किन्तु बाहर से ही इलाज की यथा-सम्भव व्यवस्था कर दिया करता था। वही डाक्टर को अब भीतर भेज कर स्वयं बाहर से ही लौट रहा था। मामी को जान पड़ा कि सन्ध्या का घना अन्धकार चिल्ला कर कह रहा है कि इस तपस्वी युवक के अभिशाप ने, इसके प्रति किये गये तुम्हारे अपराध ने, तुम्हें भस्म कर डाला है।

उसी समय गमले में रक्खे एक छोटे से तुलसी के पौधे के निकट दीपक रख कर मामी ने गले में आँचल डाल कर कहा—"नारायण, मैंने अनजाने में ही उस देवता का नैवेद्य किसी और को दे कर जुठला दिया। किन्तु इसमें मेरा कितना अपराध है सो

तुम जानते हो, हे अन्तर्यामी। फिर भी यदि मेरे अपराध की गुरुता बहुत ही अधिक हो तो उसका गुरुतम दण्ड भी मुझे ही देना। इस बिचारी निरपराध बालिका को क्यों दण्डित कर रहे हो प्रभु।" बड़ी देर तक मासी तुलसी चौरे पर ही सिर टेके रोती रहीं। न जाने भगवान ने उनकी प्रार्थना सुनी अथवा नहीं किन्तु जागती हुई नन्दिनी ने खिड़की की तनिक-सी सन्धि से जो कुछ सुना उसे सुन कर उसने कानों पर हाथ रख कर कहा—"यह क्या खेल है प्रभु? मासी क्या कह रही हैं? मेरे हृदय में, जब से उस बालक को देखा है, क्या हो रहा है? आज मृत्यु देव का हस्त दक्षिण पकड़ कर भी यह जीवन की इच्छा कैसी? यह क्या तुम केवल मेरी हँसी ही कर रहे हो? कैसी कटु करुण हँसी है यह जगदीश्वर? नहीं, नहीं, यह सब कुछ नहीं होगा। नहीं होगा।" बाहर की ओर की खुली खिड़की से उसने गिरीश को जाते हुए देखा। नन्दिनी घने अँधेरे में भी इस मूर्ति को पहचानना सीख गई थी। फिर भी उसने आँखें बन्द कर ली और मन ही मन कहा—"नारायण, अब और यह सब प्रलोभन क्या होंगे? क्या होंगे? मैं तो एक बार स्वयं ही द्वार बन्द कर चुकी हूँ इन सब का? फिर यह क्यों? यही क्यों यहाँ से चले नहीं जाते? इतने अपमानित हो कर भी क्यों यहाँ पड़े हुए हैं? मैं इनकी कौन हूँ? मैंने किसी दिन भी इन्हें दिया ही क्या है जो आज व्याज सहित चुका रहे हैं। और एक हैं वह जो मेरे इस लोक की यात्रा के साथी हैं, मेरे स्वामी हैं, मेरी नौका के नाविक हैं। किन्तु कहाँ हैं वह आज्ञा देने वाले मेरे स्वामी? यह नलिनी ही मेरी कौन है? यह क्यों आई है? यहाँ

क्यों आई थी मेरे पास मुझे देखने ? क्यों ले आई साथ में अपने बालक को भी ? यह सब गोरखधन्धा क्या है ? नहीं, नहीं, यह सब मिथ्या है, असत्य है। स्वामी का कीटाणु भय, ननद की अकारण घबराहट तो मैं किसी प्रकार सहन कर गई, किन्तु नलिनी का स्नेह, चित्रा का सरल प्रेम और गिरीश की अकारण सेवा ही मैं सहन नहीं कर पाती। इन्हें ही तो मैं सरलता से ग्रहण नहीं कर पाती। अपमान सहना कुछ कठिन नहीं है, किन्तु कठिन है अयाचित अकारण दयाजनित उपकार का भार सहना। जो अपना पावना नहीं है, जो कभी दिया नहीं गया है, उसे ही हाथ पसार कर ग्रहण करते न जाने मन कैसा होने लगता है।" नन्दिनी को ज्ञात होने लगा कि उसका मस्तिष्क विकृत होता जा रहा है। उसका दुर्बल शरीर इतनी अधिक विचार-भाराक्रान्त कल्पनाओं को सहने में सर्वथा असमर्थ है। वह विक्षिप्त होती जा रही है। उसका मस्तिष्क फटता जा रहा है। प्रातःकाल नन्दिनी को एक वमन हुआ और साथ ही बहुत सा रक्त भी आया। सासो ने घबरा कर डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने देखा, औषध दी, किन्तु निश्चेष्ट पड़ी हुई नन्दिनी मन ही मन कहने लगी—"अब और औषध दे कर क्या होगा ? अब तो उस लोक की ओर जाना चाहती हूँ जहाँ कि न औषध है और न रोग, जहाँ न शोक है और न दम्भ, जहाँ न अपमान है और न मान। बस वहीं शीघ्र ही बुला लो नारायण ! अब यही तुम्हारे निकट मन प्राण से प्रार्थना है, निवेदन है।"

मधुर भार

"भाग्य किसी दिन हमें इस प्रकार एकत्र कर देगा इसकी कल्पना भी किसे थी गिरीश ?"

"तुमने व्यर्थ में ही अपने सिर झंझट मोल ले लिया। भाभी को एक तार दे देने से ही तुम्हे छुट्टी मिल सकती थी।"

"छुट्टी तो अब भी ले लेना चाहती हूँ, किन्तु प्रजापति ही जब किसी एक का भार बरबस दूसरे के सिर पर लाद देते हैं तो फिर किसी प्रकार भी उस भार को उतार फेंकने का उपाय नहीं हो पाता है।

"सो ही तो सोचता हूँ, पर अब तो मैं स्वस्थ हूँ। भाभी को एक तार दे कर बुला लो और तुम्हारी छुट्टी हो जायेगी।"

"छुट्टी! तो क्या काम ही मैं कोई आवेदन पत्र दे कर करने गई थी? भाग्य की बातें देखो, कुछ विश्राम पाने के लिए तुम्हे तार दे कर, हस्पताल का भार रवि एवं सुवीरा को तुम्हारे आने तक सावधानी से वहन करने के लिए सौंप कर, तनिक सा विश्राम पाने के लिए, शिमला जा रही थी। कौन जानता था कि अंबाला स्टेशन पर स्नान करके तनिक स्वस्थ होने के उद्देश्य से वेटिंग रूम में जाते ही दीख पड़ेगा एक भार, एक मानव का एक सौ पाँच ज्वर में अचेतन पड़ा हुआ शरीर। फिर वही भार मुझे, विश्राम के उद्देश्य से जाने वाले व्यक्ति को, बरबस अपने सिर पर लाद कर दो सप्ताह तक ढोना पड़ेगा दूर देश में...।"

"सो ही तो कहता हूँ। अब तुम भाभी को बुला दो और फिर शिमला चली जाओ।"

"हाँ, आज तुम्हें भाभी को सौंप कर शिमला चली जाऊँ!

किन्तु उस दिन निराश्रय अचेत व्यक्ति को किसे सौंप कर शिमला चली जाती ? रहने दो, रहने दो, तुम्हें अकारण व्यस्त होने की आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने इस रोगी का भार मेरे मस्तक पर लादा है वही जब उतारेंगे तब उतर सकेगा, यूँ नहीं।" कह कर शालिनी कमरे से बाहर हो गई। गिरीश को अभी ज्वर आता था। परन्तु एक सौ दो से अधिक नहीं जाता था। शालिनी ने जिस रत्न को वेटिंग रूम में अचेत पाया था उसी की पन्द्रह दिन से रात-दिन एकनिष्ठ मन से चिन्ता सेवा कर रही है। इससे पूर्व जीवन में शालिनी ने कभी किसी की परिचर्या नहीं की थी। उसे किसी की सेवा करने का चाव भी तो नहीं था। घर दास-दासियों से भरा पड़ा था, कभी इसकी आवश्यकता भी नहीं हुई थी। किन्तु जीवन मे पहली वार शालिनी को जान पड़ा कि संगी-साथी-हीन परदेश मे एकमात्र नौकर को ले कर हस्पताल के एक किराये के कमरे मे यह भार कितना मधुर हो उठा है। शालिनी की इच्छा शिमले जाने की नहीं रही थी। घर लौट कर जाने की कल्पना भी उसे मधुर नहीं लगती थी। मीठी लगती थी यह अथक अनवरत सेवा। इसी को ले कर वह निरन्तर जीवन नौका खेती जाना चाहती थी। पर कहाँ ! वह भार तो स्वयं कुलवुला कर उतर जाना चाहता था ; किसी प्रकार भी सिर पर रहना चाहता ही न था। तनिक सी देर मे गर्म दूध का गिलास लिये शालिनी फिर लौट आई ! उसने हाथ का सहारा दे कर गिरीश को विठा दिया। गिरीश फीडिंग कप मे लेटे-लेटे दूध पीना ही नहीं चाहता था। दूध पी कर गिलास शालिनी ने गिरीश के हाथ से ले कर नौकर को दे दिया। भली प्रकार लेट कर गिरीश ने

कहा—"शालिनी, तुम्हें कष्ट देते हुए अत्यन्त संकुचित हो उठता हूँ।" शालिनी ने सहज भाव से कहा—"कष्ट कुछ तुमने तो दिया ही नहीं है, तुम तो कभी कोई मेरी साधारण सेवा भी ग्रहण नहीं करना चाहते थे। यह तो बरबस मुझ पर सेवा का भार लाद कर नारायण ने ही तुम्हारा अभिमान चूर-चूर कर दिया है। अब कभी ऐसा अभिमान न करना, समझे?" गिरीश क्या समझा सो जानने की चिन्ता न कर के चतुर गृहिणी की भाँति शालिनी चटपट कमरे से बाहर चली गई।

गिरीश सोचने लगा—"कैसी है यह विधि की विडम्बना! यह नारी अयाचित सेवा के भार से मुझे ढक देना चाहती है और मैं इच्छा कर के भी उसे हाथ पसार कर ग्रहण नहीं कर सकता। दूसरी ओर जिसका सेवा-यत्न मैं अधिकार से, प्रसन्नता से ग्रहण कर सकता था उसे वह अधिकार ही कहाँ रह गया है और वह चाहती भी कहाँ है वह अधिकार लेना। वह तो मुझे बरबस ठेल-ढकेल कर अपने से परे ही कर देना चाहती है। ठीक ही तो है। वह विवाहिता है, पर-नारी है। मैं भी कैसा मूर्ख हूँ, उसकी परिस्थिति भी नहीं समझ पाया। ओह, कितना मूर्ख हूँ मैं।"

इसी समय शालिनी ने कमरे में आ कर कहा—"देखो एक काम कर आई हूँ, उसके लिए तुम्हारी आज्ञा की आवश्यकता है। मुँह न बना सकोगे, शान्त मन से अनुमति दे देना।"

"शालिनी, मैं तो तुम्हारा अभिभावक भी नहीं हूँ और गुरु-जन भी नहीं। केवल पथ के कुछेक क्षणों भर ही तो···।"

बात काट कर शालिनी ने कहा—"सो सब अब मत कहो—इस क्षण मेरी बात सुन लो। तुम्हे मेरा अभिभावक बनना होगा

सो तो मैंने कहा नहीं है। केवल अनुमति माँगती हूँ, सो ही दे दो। इससे अधिक और कुछ भी नहीं माँगूँगी।" शालिनी चुप हो गई। गिरीश ने कहा वे मन से—"कहो, क्या कहती हो ?"

"तुम्हे तो ज्ञात नहीं, तुम भुवाली मे थे। गत मास की दूसरी तिथि को मेरी माँ भी स्वर्गलोक सिधार गई।" गिरीश को दुःख हुआ, उसने शालिनी के मुख की ओर ताका ही था कि शालिनी ने रोक कर कहा—"सुन लो, अभी कुछ भी न कहो। उनकी मृत्यु के पश्चात् ही मन की व्याकुलता में मै शिमला जी बहलाने जा रही थी और मार्ग में मिल गये अकल्पित ढंग से तुम। अब सोचती हूँ जिस समय भगवान किसी के पथ-प्रदर्शक बनते हैं तो वह स्वयं आँखो मे अँगुली डाल कर पथ दिखा देते है। और फिर मनुष्य कहता है अरे कैसा अन्धा था मैं, पथ तो सामने ही है, मै भला इतने दिन क्यो भटकता रहा ?"

कुछ भी न समझ कर गिरीश ने कहा—"फिर ?"

"फिर मुझे मेरा पथ मिल गया। मैंने एक सप्ताह हुआ अपने एटर्नी को बुला कर अपनी समस्त सम्पत्ति स्थायी और अस्थायी तुम्हारे हस्पताल के नाम कर दी है।"

गिरीश ने बीच में ही रोक कर कहा—"पर मैं वह लूँगा नहीं शालिनी।"

"छिः, कैसा छोटा मन है तुम्हारा। मैं क्या तुम्हे कुछ दे सकती हूँ। किस अधिकार से दूँगी भला और तुम्हीं हाथ पसार कर किस प्रकार ले सकोगे ? वैसे आदमी तुम नहीं हो। यदि होते तो शालिनी इस प्रकार तुम्हारे निकट भिखारिणी बन कर आ सकती थी कभी ? हस्पताल मेरा है, जनता का है, दीन

दुःखियों का है। उसमे मेरे पिता की न्याय अन्याय से उपार्जित सम्पत्ति लगे यही उचित भी है। इसी के लिए तुम्हारी अनुमति चाहती हूँ।"

"अपना निर्वाह कैसे करोगी? तुम तो हस्पताल से कुछ लेती नहीं हो।" चिन्ता से गिरीश ने कहा।

"अपने निर्वाह के लिए मेरे पास बहुत कुछ शेप है। न होने पर हस्पताल के स्वामी के निकट तो हाथ न पसार सकूँगी, पर तुम्हारे निकट हाथ पसारते लज्जा नहीं आयेगी, यह निश्चय है।"

गिरीश समझ नहीं पाया नारी का यह पहलू। चंचला, चपला, पाश्चात्य सभ्यता की भक्त यह रमणी कैसे संन्यासिनी बन गई, यही गिरीश के लिए पहेली मात्र रह गई।

"गिरीश, मेरी विशाल कोठी मे एक मातृ-मन्दिर खुलवा दो। मै अब उसी मे वही रह कर काम करूँगी। हस्पताल का काम सुवीरा भली प्रकार सँभाल लेगी।"

गिरीश और भी अधिक चकित हो उठा। यह तो वासना की आकांक्षा नहीं है। यह तो मानो शान्ति का, त्याग का और स्वाहा का सन्देश है, पूर्णाहुति का निश्चय है। फिर भी गिरीश को प्रसन्नता ही हुई। शालिनी को कूल किनारा मिल गया है, अब उसके डूबने का भय नहीं है। अब गिरीश उसके निकट निर्भय भाव से आत्म-समर्पण कर सकता है। उसे वासना की ज्वाला में झुलस जाने के भय से सिकुड़ जाना नहीं होगा। गिरीश ने परितृप्ति की लम्बी सी एक निश्वास छोड़ दी।

"तो तुम्हारी अनुमति है?" शालिनी ने पूछा।

"शालिनी, मुझे आशीर्वाद देना सचमुच ही नहीं आता।

यदि आता होता और यदि मेरे आशीर्वाद में कुछ भी बल होता तो मैं आज तुम्हें यही आशीर्वाद देता कि तुम्हारी निष्ठा बलवती हो, तुम्हारी तपस्या सफल हो।"

शालिनी गिरीश के अतिशय गम्भीरता-पूर्वक कहे गये वाक्य-विन्यास पर खिलखिला कर हँस पड़ी। यह उसकी वही पूर्ववत् मुक्त चंचल और मधुर हँसी थी। हँसते-हँसते उसने कहा—"तपस्या की ही कहाँ है? यदि करती तो अवश्य आगामी जन्म में उसकी सफलता होती, यह कहे रखती हूँ।" गिरीश भी इस बार हँस दिया। उसने हँसी के से लहजे में कहा—"यह सब कुछ कहाँ से सीखा शालिनी! विलायत में तो शायद यह सब कुछ सिखाया नहीं जाता है।" गिरीश का चित्त कुछ प्रसन्न था। "यह वहाँ से सीखा है जहाँ से कुछ सीखना शेष नहीं रह जाता है। जहाँ कान पकड़ कर घुटने टेक कर अनिच्छा से भी बहुत कुछ सीखना पड़ता है महाशय। यदि कभी उस पाठशाला तक पहुँच सकोगे तो मेरी बात का अर्थ समझोगे।" कह कर शालिनी गम्भीर हो गई। इस बार गिरीश भी न समझ पाया हो सो बात नहीं है, किन्तु इस बार उसकी आँखें भर आईं। उसने आँसू छिपाने के लिए मुख खिड़की की ओर फेर लिया। शालिनी सम्भवतः हृदय की दुर्बलता छिपाने के लिए ही अन्यत्र चली गई। एक सप्ताह बाद गिरीश और शालिनी लौट आये घर। इस बार शालिनी प्रसन्न थी, खूब प्रसन्न थी, भरी-भरी थी। किन्तु गिरीश वही सदा का शान्त निरीह-सा व्यक्ति था। शालिनी को पथ प्राप्त हो गया था किन्तु गिरीश तो अतिशय दुःखित थकित निराश और पथभ्रष्ट हो कर ही आया था।

इधर नन्दिनी का समाचार पाने का भी कोई उपाय शेष नहीं रह गया था। स्वयं गिरीश भी अब सम्भव अथवा असम्भव किसी भी उपाय की कल्पना करके नन्दिनी के निकट नहीं पहुँचेगा। उसे नन्दिनी के शब्द स्मरण हो आये—"डाक्टर साहब, आप क्या इस मरणासन्न नारी को व्यर्थ का कलंक देने के लिए ही आये हैं? उससे आपको क्या मिलेगा? किन्तु मेरी मृत्यु की घड़ियाँ अधिकतर कटु और दुःसह हो उठेंगी, सम्भवतः आप नहीं जानते।" गिरीश फिर उस ओर भी नहीं गया। वह नन्दिनी की वेदना को घटाने की अपेक्षा बढ़ा ही अधिक रहा है यह जान कर उसके प्राण सूख गये। डाक्टर को बहुत कुछ कह सुन कर मासी से मिले बिना ही मन पर असह्य वेदना का भार लिये हुए गिरीश लौटना चाहता था। पर मन तो ज्वाला-मुखी बना हुआ था। ऐसे ही समय वह कब अंबाला के वेटिंग रूम में आ पड़ा और कब भीषण ज्वर ने उसे अचेतन कर दिया और शालिनी ने आ कर उसका भार बिना कहे ही अपने ऊपर ले लिया सो सब उसे याद नहीं। इधर हस्पताल के काम में भी उसका चित्त विशेष नहीं लगता है किन्तु शालिनी उसे बरबस लगाये ही तो रखती है। भीतर घाव पकता जाता है, किन्तु ऊपर से उसके चिह्न दिख जाने पर गिरीश की लज्जा की सीमा ही नहीं रहेगी इसीलिए गिरीश उसे भली प्रकार अन्तर में ही दबे ढके सावधानी से छिपाये रखता है। शालिनी का भार मधुर है इसलिए वह उसे प्रसन्नता से ढो सकती है। किन्तु गिरीश का भार कठिन है इसी से वह पिस कर चूर हुआ जा रहा है।

बस अन्त

नन्दिनी में न तो समाचार पत्र पढ़ने की शक्ति ही शेष रह गई थी और न दृष्टि में ज्योति ही। संसार से सम्बन्धित समाचार जानने में उसकी रुचि भी नहीं थी। फिर भी हस्पताल के डाक्टर उसके सिरहाने प्रतिदिन समाचार-पत्र रख जाते थे। डाक्टर बहुत ही सज्जन व्यक्ति थे। नन्दिनी पर उसका सहज वात्सल्य भाव था और उसकी विधवा माँ और भाभी से असीम सहानुभूति। दुःख के, आर्थिक कठिनाई के दिनों की ज्वाला बहुत कुछ डाक्टर के कोमल और सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार से कम हो गई थी। उस दिन भी डाक्टर ने प्रातःकाल देखने के समय आ कर फूलों का एक गुच्छा और समाचार-पत्र नन्दिनी के सिरहाने रख दिया। नन्दिनी का मन आज कुछ प्रसन्न था, उसने हँस कर डाक्टर से कहा—"डाक्टर साहब, इस यन्त्रणा का अन्त कब होगा ?"

"बेटी, इतना व्याकुल क्यों होती हो ? तुम शीघ्र ही अच्छी हो जाओगी।"

डाक्टर के जाने के पश्चात् ही नलिनी का पत्र आया। समाचार के पश्चात् उसने लिखा था "तुम्हारा बेटा अब मासी कहने लगा है। उसे अपने अनुरूप ही बनने का आशीर्वाद देना।" नन्दिनी ने मन ही मन कहा—जिस देवता के अनुरूप बनने का आशीर्वाद मैं देना चाहती हूँ उसका नाम भी तो मुख

से निकाल पाती नहीं। उन्हें तो मैंने सदा वेदना ही दी है, और कुछ भी नहीं। कुछ दे सकती भी नहीं। आज उसकी ननद भी आई उसे देखने दूर से बैठ कर। नन्दिनी ने पलंग पर पड़े ही पड़े कहा—"बहिन जी, क्षमा करें आपके चरण न छू सकी।" बहिन जी की आँखें भी आज न जाने क्यों इस दीन दुर्बल रोगिणी की ओर देख कर भर आईं। उन्हें रोग से भय लगता था। स्वयं मृत्यु की कल्पना, चिता की परिकल्पना से ही घबरा जाती थीं, किन्तु हृदय से इतनी अधम नहीं थीं। रोग के भय से दो वर्ष तक नन्दिनी को देखने भी नहीं आईं किन्तु अब जब आ गईं तो आँखें सूखी न रख सकीं, पर निकट आने का साहस भी न कर सकीं। फिर भी यथासम्भव कण्ठ-स्वर को स्नेह-सिक्त करके उन्हें कहा—"सो कोई बात नहीं है भाभी। तुम अच्छी हो जाओगी तो तुमसे सारा पावना पूरा-पूरा भर लूँगी।" कह कर स्वयं ही सकुचा गईं। उन्हें स्वयं अपनी बात अपने ही कानों में अत्यन्त कर्णकटु जान पड़ी और असम्भव तो था ही। नन्दिनी ने इस सम्बन्ध में कोई भी दुराशा हृदय में नहीं पाली हुई थी अतः वह यथापूर्व मुसकरा कर बोली—"बहिन जी, आप लोगों का देना ही निश्शेष हुआ, पावना तो आपको प्राप्त हुआ ही नहीं, और इस जन्म में होगा सो आशा भी नहीं है।" कुछ देर बद बहिन जी चली गईं किन्तु नन्दिनी की दयनीय मूर्त्ति ने उन्हें भाई को तार दे कर बुला लेने के लिए विवश कर दिया। महेश को बहिन ने भली प्रकार सावधान तथा दूर रहने का आदेश दे कर मृतप्राय पत्नी को देख आने की आज्ञा दे दी। महेश नन्दिनी से मिलने को कुछ विशेष उत्सुक नहीं था,

उसकी दो वर्ष पूर्व की स्नेह-भावना में कुछ इतना बल तो था नहीं कि वह दो वर्ष तक दबी पड़ी रह कर भी जीवित रह जाती। फिर भी उसने बहिन की आज्ञा मान कर दूसरे दिन ही नन्दिनी को देख आने का निश्चय किया।

ननद के चले जाने बाद नन्दिनी ने तनिक सा अंगूर का रस मासी के बहुत कहने-सुनने पर पी लिया। पी कर कुछ शक्ति भीतर आई जान पड़ी। लेटे ही लेटे नन्दिनी ने समाचार-पत्र आँखों के सम्मुख खोल लिया। पहला पृष्ठ उलटते ही चित्र दीख पड़ा शालिनी का और नीचे दिया हुआ था उसके दान का विवरण। नन्दिनी उसे न भी देखती, किन्तु शीर्षक था "डा० गिरीश का क्लीनिक।" नन्दिनी के नेत्रों मे विशेष ज्योति नहीं रह गई थी, फिर भी गिरीश शब्द पढ़ कर उसकी उत्सुकता बढ़ गई, बढ़ती गई, उसने दो दिन परिश्रम करके वह चौथाई कालम पढ़ डाला। पढ़ कर भी समाचार-पत्र लौटाया नहीं। उसमे गिरीश और शालिनी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की गई थी और नन्दिनी उसे बार-बार पढ़ना चाहती थी। समाचार-पत्र सिरहाने रखा ही रहा। एक बार चित्रा से पढ़वा कर भी नन्दिनी ने पूरा समाचार सुना था। पढ़ कर चित्रा ने कहा था—"शालिनी कुछ भी कर ले गिरीश को प्रसन्न करने के लिए, किन्तु डा० गिरीश वैसा व्यक्ति ही नहीं है यह शालिनी क्या समझेगी।"

"बहिन, किसी की शुभ-कामनाओं पर क्यों सन्देह करती हो? यह भी तो हो सकता है कि शालिनी स्वयं ही सदाशया हो और डा० गिरीश की निष्काम सहायता ही उनका उद्देश्य हो।" नन्दिनी के होंठ गिरीश कहने से पूर्व कई बार काँपे, यह चित्रा ने

लक्ष्य किया। बात टालने की दृष्टि से उसने उसी तरह कह डाला—"हाँ, यह भी हो सकता है। हो क्यों नहीं सकती।"

उसी दिन सन्ध्या समय अचानक दो वर्ष बाद दामाद को आँगन में देख कर मासी चौंक पड़ीं। वह यह भी न जान पाईं कि वह नन्दिनी को देखने आया है। अतः उसे अपने कमरे की ओर बुला भी न सकीं। जो हो जब वह आ कर सामने ही खड़ा हो गया तो "आओ बेटा" कह कर भरे हुए मन से अभ्यर्थना करनी ही पड़ी। और नन्दिनी को देखने की इच्छा प्रकट करने पर उधर ले जाना भी पड़ा।

नन्दिनी ने महेश को आज देख कर भी न देखा। वह आ कर सम्मुख बैठ गया। सामने बैठा देख कर भी जब नन्दिनी शान्त हो पड़ी रही तो महेश ने सिर से पैर तक जल कर कहा—"मैं महेश हूँ तुम्हारा पति, गिरीश नहीं हूँ। और शायद उसके सामने तो यह अविचल शान्ति नहीं दिखाई जाती है न ?" मासी चली गई हैं, यह जान कर नन्दिनी को तनिक सा सन्तोष हुआ कि उन्होंने सुना नहीं। किन्तु कोई व्यक्ति अपनी निरीह मरणासन्न पत्नी को सुना कर इतना निष्ठुर व्यंग भी कर सकता है, यह नन्दिनी सोच भी नहीं सकती थी। कुछ कहने की प्रवृत्ति भी नहीं हुई। वैसे ही चुपचाप पड़ी रही। कुछ कह कर अपने ही निकट अपने को छोटा कर डालना उसका किसी दिन भी स्वभाव नहीं था। परन्तु महेश जला-भुना था गिरीश से। वही शालिनी, जो महेश के स्नेह को, उसके सादर निमन्त्रण को, उसकी विकल प्रार्थना को ठुकरा सकती है, गिरीश के न जाने किस गुण पर रीझ कर उसके चरणों तले लोटने को व्याकुल हो

उठी है। यह घटना महेश के मन प्राण में ईर्ष्या की अग्नि भर देने को पर्याप्त थी। वह उन दिनों जल रहा था। और अपनी जलन से, तपिश से, आसपास के सब ही लोगों को भस्म कर डालना चाहता था। तिस पर नन्दिनी पर तो उनका और भी अधिक क्रोध था, क्योंकि गिरीश नन्दिनी की सेवा करने आया था। और महेश इसके लिए गिरीश को तो दण्ड दे सकता ही नहीं था। किन्तु नन्दिनी को किसी प्रकार भी क्षमा नहीं करना चाहता था। गिरीश पर का क्रोध, क्षोभ, झुँझलाहट नन्दिनी पर निकालने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय भी नहीं था। अतः उसने फिर छेड़ कर कहा—"गिरीश तुम्हारा कौन लगता है? वह यहाँ क्या करने आया था? इन्हीं सब प्रश्नों का उत्तर लेने मैं यहाँ आया हूँ।" बात सचमुच ही मिथ्या थी, स्वयं महेश का भी उस पर विश्वास नहीं था। फिर भी वह कह गया। नन्दिनी का तन मन तार और भी अधिक जल उठा—तो यह मुझे देखने नहीं, मृत्यु शय्या की अन्तिम घड़ियाँ मधुर बनाने नहीं, उन्हें और भी अधिक कटु कर डालने के लिए आये हैं! ओह, कितना ओछा हृदय है इस व्यक्ति का जिसे जन्म जन्मान्तर तक पति रूप में प्राप्त करने के लिए नन्दिनी करवा चौथ का व्रत किया करती थी, जिसे एक दिन उसने निर्भय भाव से आत्म समर्पण कर दिया था, जिसे उसने इह काल और इहलोक का समस्त भार दे कर निश्चिन्त हो जाना चाहा था। वही व्यक्ति उसके जीवन का रस-स्रोत सुखा कर, उसके संसार की लौकिक आनन्द-धाराएँ जड़-मूल से मिटा कर, अब उसका परलोक-गमन का मार्ग भी कठिन करने आया है। इस बार फिर उसने कठिन स्वर में

कहा—"उत्तर न देने की भी कसम खा ली है गिरीश से? या सचमुच बोलने की शक्ति ही नहीं रही है?" इस बार नन्दिनी मौन न रह सकी। उसने धीमे स्वर में कहा—"जिसे स्वयं मन-प्राण से अनृत करके ही जानते हो, जिसे तुम स्वयं सत्य कह कर विश्वास नहीं कर पाते हो, उसी को झूठ मूठ मुख से सत्य कह कर क्यों छोटा बनते हो?" महेश और भी अधिक चिढ़ गया।

"यह तो मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं है।"

"तुम्हारे प्रश्नो का कोई भी उत्तर मेरे पास नहीं है।"

"तुम्हे उत्तर देना ही पड़ेगा।"

"दूँगी, और अवश्य दूँगी। किन्तु तुम्हे न दे कर धर्मराज को ही दूँगी, जब आवश्यकता होगी।"

"किन्तु इस समय तो मुझे ही आवश्वकता है। मैं ही उत्तर ले कर रहूँगा।" कहने को तो महेश कह गया किन्तु वह स्वयं नहीं जान पाया कि वह क्या कहलाना चाहता है नन्दिनी के मुख से, और उस उत्तर का उपयोग भी उसके निकट क्या होगा। किन्तु हठ से महेश का मन भरा हुआ था। नन्दिनी ने शान्त रहने का बहुत ही अधिक प्रयत्न किया पर इस संघर्ष में उसका दुर्बल शरीर मन की खींचातानी न सह सका। नन्दिनी ने बड़े कष्ट से कहा—"आज तुम्हारा कोई भी दावा अस्वीकार करूँ, ऐसी प्रवृत्ति नहीं होती है। किन्तु तुम स्वयं किसी दिन सोच देखना कि उस दावे की आधारभित्ति कितनी क्षीण है।"

महेश इस बार उठ खड़ा हुआ। उसने ऊँचे स्वर से कहा—"यह सब कुछ यहाँ नहीं चलेगा, जानती हो?" क्या नहीं चलेगा और क्या उसे जानना चाहिये यह नन्दिनी तो क्या बाहर माँ

मासी और हस्पताल के अन्य रोगी तक नहीं जान सके, सुनी केवल कर्ण-कटु शब्द-ध्वनि बस। महेश कमरे से बाहर चला गया था किन्तु मासी ने आ कर देखा कि नन्दिनी रक्त वमन कर रही है। इस बार रक्त की मात्रा बहुत अधिक थी। मासी देख कर घबरा गई। तुरन्त ही डाक्टर बुलाया गया। डाक्टर ने आ कर इंजेक्शन भी दिया और और औषधि भी, स्वयं पास बैठ भी गया, किन्तु नन्दिनी को चेत नहीं आया। डाक्टर ने हताश से स्वर में कहा—

"जान पड़ता है अचानक कोई हृदय को धक्का लगा है।" मासी जानती थी। उन्होंने दामाद का कठोर कण्ठ-स्वर सुना था; पर डाक्टर से कुछ कहने का साहस ही नहीं हुआ।

आधे घंटे पश्चात् माँ, मासी और डाक्टर की उपस्थिति में ही नन्दिनी को एक और रक्त-वमन हुआ और साथ ही उसकी दृष्टि फैल गई। जान पड़ा कि उसकी मूक दृष्टि अत्यधिक व्यथा का भार ढोती जा रही है। कुछ चेत भी हुआ। उसने सम्भवतः कुछ कहना चाहा, पर समय कहाँ था? व्यथा का असीम भार लिये दिये नन्दिनी के प्राण तृतीय रक्त-वमन के साथ ही साथ पति-दर्शन के एक घंटे पश्चात् ही उस लोक की ओर उड़ गये जहाँ न व्यथा है और न पीड़ा।

समाचार पा कर चित्रा ने कहा—"आश्चर्य है वह इतनी पीड़ा, इतनी कठिन यन्त्रणा, ले कर भी अब तक किस लिए जीवित थी।" नलिनी ने सुन कर सिर झुका कर कहा—"नारायण, अपनी इतनी बड़ी सृष्टि में से चुन कर तुमने इस भावुक नारी को क्या केवल तुम्हारी सृष्टि रचना के कण-कण

में भरी हुई वेदना का परिचय लेने के लिए ही इस विश्व में भेजा था।" शालिनी ने पुरानी सहपाठिनी की मृत्यु के समाचार पर आँसू पोंछ लिये दो-चार, हृदय के प्रेम के प्रतीक। किन्तु गिरीश ने सुन कर न तो कुछ कहा ही और न एक बूँद भर भी खारा जल धरती पर गिराया। जान पड़ा मानो चिर दुःखिनी नन्दिनी की अन्तरात्मा गिरीश की आत्मा में मिल कर एकाकार हो गई और गिरीश अपनी आत्मा मे लीन उस आत्मा को मन-प्राण से ग्रहण कर पाया।